जनवरी, 2023

I.S.S.N. 2457-0494

उच्चतम न्यायालय
निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

संपादक-मंडल

डा. रीटा वशिष्ट,
सचिव, विधायी विभाग

श्री के. बिस्वाल,
विशेष सचिव, विधायी विभाग,
(विभागाध्यक्ष) वि.सा.प्र.

डा. अनुराग दीप, एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. आर्येन्दु द्विवेदी,
प्राचार्य, मां वैष्णों देवी ला कालेज
फैजाबाद रोड, चिनहट, लखनऊ, उ.प्र.

श्री कुलदीप चौहान,
चेयरमैन, एस.आर.सी. ला कालेज
129, सेक्टर-1, मंगल पाण्डेय नगर,
मेरठ, उ.प्र.

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री दयाल चन्द ग्रोवर,
सेवानिवृत्त उप-संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री कमला कान्त,
प्रधान संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

श्री असलम खान,
संपादक

श्री पुण्डरीक शर्मा,
संपादक

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह, जसवन्त सिंह, जाहन्वी शेखर शर्मा और अमर्त्य हेम विप्र पाण्डेय

ISSN 2457-0494

कीमत : **डाक-व्यय सहित**

एक प्रति : ₹ 195/-

वार्षिक : ₹ 2,100/-

© 2023 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0494

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

जनवरी, 2023 अंक - 1

प्रधान संपादक

कमला कान्त

संपादक

अविनाश शुक्ला

[2023] 1 उम. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on

Website → https://bharatkosh.gov.in/product/product

विक्रय कार्यालय : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001. दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित प्रतिवेद्य निर्णय, जो न्यायाधीशों, अधिवक्ताओं, विधि छात्रों और अकादमीशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपनी पत्रिका की गुणवत्ता सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराते रहें और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

इस अंक के माध्यम से हमने आपके अवलोकनार्थ माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **नीरज दत्ता** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार**, [2023] 1 उम. नि. प. 1 वाले मामले में तारीख 15 दिसंबर, 2022 को पारित निर्णय का प्राधिकृत हिंदी पाठ प्रस्तुत किया है । यह मामला भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7, 13(1)(घ) और 13(2) के अधीन लोक सेवक द्वारा अवैध परितोषण की मांग और प्रतिग्रहण से संबंधित है । शिकायतकर्ता की विचारण के पूर्व मृत्यु हो गई और इस कारणवश वह प्रत्यक्ष या प्राथमिक साक्ष्य के प्रयोजनार्थ उपलब्ध नहीं हो सका । अभियुक्त लोक सेवक की दोषिता को साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ अभियोजन पक्ष को प्रथमत: अवैध परितोषण की मांग और तत्पश्चात् उसके प्रतिग्रहण को साबित करना चाहिए था, किंतु जहां शिकायतकर्ता की मृत्यु हो गई हो या वह विचारण के दौरान अपना साक्ष्य देने के लिए उपलब्ध न हो या पक्षद्रोही हो जाए, तो उसके मौखिक साक्ष्य के अभाव में अवैध परितोषण की मांग को किसी अन्य साक्षी के मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य और साथ ही पारिस्थितिक साक्ष्य द्वारा भी साबित किया जा सकता है और यदि अवैध परितोषण की मांग और प्रतिग्रहण के बुनियादी तथ्यों से ऐसे साक्ष्य की संपुष्टि हो जाती है, तो न्यायालय लोक सेवक की अपराधिता का निष्कर्ष निकाल सकता है । इसी अधिनियम की धारा 20 के अधीन यदि लोक सेवक द्वारा वैध पारिश्रमिक से भिन्न अवैध परितोषण की मांग

की जाती है, तो न्यायालय 'उपधारणा करेगा' अभिव्यक्ति, जो एक विधिक या अनिवार्य उपधारणा है, के अंतर्गत यह उपधारणा करेगा कि लोक सेवक ने अपना पदीय कृत्य करने या करने से प्रवृत्त रहने के प्रयोजनार्थ हेतु या ईनाम के रूप में अवैध परितोषण प्रतिगृहीत किया था । इस धारा में यह उपबंधित नहीं है कि इन शर्तों का प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा समाधान निकाला जाना चाहिए बल्कि मात्र यह अपेक्षित है कि यह साबित किया जाना चाहिए कि अभियुक्त ने अवैध परितोषण प्रतिगृहीत किया था या प्रतिग्रहण के लिए सहमत हुआ था ।

इस अंक में सूचना प्रदाता संरक्षण अधिनियम, 2011 को भी ज्ञानार्थ प्रकाशित किया जा रहा है । इस संपूर्ण अंक का परिशीलन करने के पश्चात् आपकी बहुमूल्य प्रतिक्रियाएं ईप्सित हैं ।

अविनाश शुक्ला
संपादक

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

जनवरी, 2023

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
कोटक महिन्द्रा बैंक लि. **बनाम** गिरनार कोरुगेटर्स प्रा. लि. और अन्य	79
नईम अहमद **बनाम** राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली)	128
नीरज दत्ता **बनाम** राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार)	1
बोबी **बनाम** केरल राज्य	100

संसद् के अधिनियम

सूचना प्रदाता संरक्षण अधिनियम, 2011 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 – 25

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 302/34, 364, 395 और 201 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27] – अपहरण और हत्या – पारिस्थितिक साक्ष्य – मृतक को अभियुक्त के साथ अंतिम बार देखे जाने का सिद्धांत – दोषसिद्धि – अंतिम बार देखे जाने का सिद्धांत वहां लागू होता है जहां अभियुक्त के साथ मृतक को अंतिम बार जीवित देखे जाने के सुसंगत समय और मृतक के मृत पाए जाने के समय के बीच अंतराल इतना थोड़ा हो कि अपराध कारित करने में अभियुक्त के सिवाय किसी अन्य व्यक्ति की संभावना न हो और यदि यह समय अंतराल अधिक हो तो किसी अन्य व्यक्ति के बीच में आने की संभाव्यता से इनकार नहीं किया जा सकता, इसलिए जहां अभियोजन पक्ष अभियुक्त को अपराध में आलिप्त करने वाली परिस्थितियों की ऐसी श्रृंखला को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करने में असफल रहा हो जिससे अभियुक्त की दोषिता के सिवाय कोई अन्य निष्कर्ष न निकलता हो, वहां केवल मृतक को अंतिम बार अभियुक्त के साथ देखे जाने के वृत्तांत के आधार पर उसे दोषसिद्ध करना उचित नहीं होगा ।

बोबी बनाम **केरल राज्य** 100

– धारा 375 और 376 – बलात्संग – विवाहित अभियोक्त्री और विवाहित अभियुक्त के बीच मित्रतापूर्ण संबंध स्थापित हो जाना – अभियुक्त द्वारा उससे विवाह करने का वचन देते हुए उससे लैंगिक संबंध बनाया जाना – अभियुक्त द्वारा बाद में उससे विवाह करने से इनकार

पृष्ठ संख्या

कर देना – मिथ्या वचन और वचन भंग करने के बीच फर्क – मिथ्या वचन की दशा में अभियुक्त का आरंभ से ही अभियोक्त्री के साथ विवाह करने का आशय नहीं होता है और केवल अपनी वासना की पूर्ति के लिए उससे विवाह करने का मिथ्या वचन देकर उससे छल और धोखा करेगा, तथापि, वचन भंग की दशा में इस संभाव्यता से इनकार नहीं किया जा सकता कि अभियुक्त द्वारा अभियोक्त्री के साथ लैंगिक संबंध बनाने से पूर्व उससे बाद में विवाह करने का वचन पूरी गंभीरता से दिया गया हो किंतु बाद में उसके समक्ष कुछ अनपेक्षित या उसके नियंत्रण से बाहर की परिस्थितियां आ गई होंगी जिनके कारण वह अपना वचन पूरा करने में असमर्थ रहा होगा इसलिए वचन भंग के हर मामले पर विवाह करने के मिथ्या वचन के मामले की तरह विचार करना और किसी व्यक्ति को धारा 376 के अधीन अपराध के लिए अभियोजित करना मूर्खता होगी तथा हर मामला न्यायालय के समक्ष उसके साबित तथ्यों पर निर्भर करेगा ।

नईम अहमद बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली)** 128

– धारा 375, 376 और 90 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114क] – बलात्संग – उपधारणा – तथ्य के भ्रम के अधीन सम्मति – दोषसिद्धि – विवाहित अभियोक्त्री और विवाहित अभियुक्त के बीच मित्रतापूर्ण संबंध स्थापित हो जाना – अभियुक्त द्वारा उससे विवाह करने का वचन देते हुए उससे कई वर्षों तक लैंगिक संबंध बनाया जाना – अभियोक्त्री द्वारा अपने पति से विवाह-विच्छेद करके

पृष्ठ संख्या

अभियुक्त के साथ रहना आरंभ किया जाना और अभियुक्त के साथ लैंगिक संबंध के परिणामस्वरूप एक बालक का जन्म होना – बाद में अभियुक्त द्वारा अभियोक्त्री से विवाह करने से इनकार कर देना – अभियुक्त द्वारा मिथ्या वचन देकर और तथ्य के भ्रम के अधीन लैंगिक संबंध बनाने की सम्मति अभिप्राप्त करने का अभिकथन करते हुए अभियोक्त्री द्वारा शिकायत दर्ज कराया जाना – अभियुक्त को बलात्संग के अपराध के लिए दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया जाना – संधार्यता – जहां अभियोक्त्री पहले से विवाहित थी और उसके तीन बालक भी थे और अपने पति से विवाह-विच्छेद करके अभियुक्त के पहले से विवाहित होने के तथ्य का पता चलने के पश्चात् भी लगभग पांच वर्षों तक उसके साथ रहती रही, वहां यह नहीं कहा जा सकता कि अभियोक्त्री द्वारा लैंगिक संबंध बनाने की सम्मति तथ्य के भ्रम के अधीन दी गई हो जिससे कि अभियुक्त को बलात्संग के अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जा सके इसलिए उसे दोषमुक्त करना उचित होगा ।

नईम अहमद बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली)** 128

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49)

– धारा 7, 13(1)(घ) और 13(2) – लोक सेवक द्वारा अवैध परितोषण की मांग और प्रतिग्रहण – विचारण से पूर्व शिकायतकर्ता की मृत्यु हो जाने या किसी अन्य कारण से उसके उपलब्ध न होने पर उसके प्रत्यक्ष या प्राथमिक साक्ष्य का अभाव – अभियुक्त की दोषसिद्धि करने के लिए आवश्यक सबूत की प्रकृति और

पृष्ठ संख्या

गुणवत्ता – अभियुक्त लोक सेवक की दोषिता को सिद्ध करने के लिए अभियोजन पक्ष को प्रथमत: अवैध परितोषण की मांग और इसके पश्चात् यथार्थत: उसके प्रतिग्रहण की बात को साबित करना चाहिए और इसे प्रत्यक्ष मौखिक साक्ष्य या दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता है किंतु जहां शिकायतकर्ता की मृत्यु हो जाने, या विचारण के दौरान अपना साक्ष्य देने के लिए अनुपलब्ध होने या पक्षद्रोही हो जाने पर उसके मौखिक साक्ष्य के अभाव में अवैध परितोषण की मांग को किसी अन्य साक्षी के मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य के साथ-साथ पारिस्थितिक साक्ष्य से भी सिद्ध किया जा सकता है और यदि अवैध परितोषण की मांग और प्रतिग्रहण के बुनियादी तथ्यों से ऐसे साक्ष्य की संपुष्टि हो जाती है तो न्यायालय द्वारा लोक सेवक की सदोषता का निष्कर्ष निकाला जा सकता है ।

नीरज दत्ता बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार)** 1

– धारा 20 – लोक सेवक द्वारा वैध पारिश्रमिक से भिन्न अवैध परितोषण का प्रतिग्रहण – उपधारणा – व्याप्ति – इस धारा में प्रयुक्त अभिव्यक्ति न्यायालय 'उपधारणा करेगा' है जो एक विधिक या अनिवार्य उपधारणा है और यदि धारा के प्रथम भाग में परिकल्पित शर्तों का समाधान हो जाता है तो यह उपधारणा की जाएगी कि लोक सेवक ने अपना कोई पदीय कृत्य करने या करने से प्रविरत रहने के लिए हेतु या इनाम के रूप में अवैध परितोषण प्रतिगृहीत किया था और इस धारा में यह उपबंधित नहीं है कि इन शर्तों का प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा समाधान किया जाना चाहिए अपितु

पृष्ठ संख्या

केवल यह अपेक्षित है कि यह साबित किया जाना चाहिए कि अभियुक्त ने अवैध परितोषण प्रतिगृहीत किया था या प्रतिगृहीत करने के लिए सहमत हुआ था ।

नीरज दत्ता बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार)** 1

वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (2002 का 54)

– धारा 13(2), 13(4), 14, 17 और 26ङ [सपठित सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम विकास अधिनियम, 2006 की धारा 15 से 23 और 24] – प्रतिभूत लेनदार के शोध्यों पर पूर्विकता – क्या वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम (सारफेसी अधिनियम) सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम विकास अधिनियम (एमएसएमईडी अधिनियम) पर अभिभावी होगा और क्या एमएसएमईडी अधिनियम के अधीन वसूली कार्यवाहियां/वसूलियां सारफेसी अधिनियम के उपबंधों के अधीन की गई वसूली कार्यवाहियों पर अभिभावी होंगी – सारफेसी अधिनियम की धारा 26ङ, जो एक पश्चात्वर्ती अधिनियमिति है, के सदृश संपूर्ण एमएसएमईडी अधिनियम में ऐसा कोई विनिर्दिष्ट उपबंध न होने के कारण जिसमें एमएसएमईडी अधिनियम के अधीन संदायों के लिए प्रतिभूत लेनदार के शोध्यों पर या केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकरण को संदेय किसी कर या उपकर पर 'पूर्विकता' दी गई हो, एमएसएमईडी अधिनियम के उपबंध सारफेसी अधिनियम पर अभिभावी नहीं होंगे और जिला

पृष्ठ संख्या

मजिस्ट्रेट तथा मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट के लिए यह अपेक्षित है कि वह प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा लेने में प्रतिभूत लेनदार की सहायता करे तथा उन्हें प्रतिभूत लेनदार और ऋणी के बीच मामले का न्यायनिर्णयन करने की कोई अधिकारिता नहीं है और व्यथित पक्षकार सारफेसी अधिनियम की धारा 17 के अधीन अपील/आवेदन फाइल करके ऋण वसूली अधिकरण में समावेदन कर सकता है ।

कोटक महिन्द्रा बैंक लि. बनाम **गिरनार कोरुगेटर्स प्रा. लि. और अन्य** 79

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 3 – 'साक्ष्य' शब्द की व्याप्ति – साक्ष्य शब्द मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य तक निर्बंधित नहीं है अपितु तात्विक वस्तुएं, साक्षियों का हाव-भाव, न्यायिक अवेक्षा किए जाने वाले तथ्य, पक्षकारों की स्वीकारोक्तियां, स्थानीय निरीक्षण और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन मजिस्ट्रेट या न्यायाधीश द्वारा किए गए प्रश्नों के अभियुक्त द्वारा दिए गए उत्तर जैसी अन्य बातें भी इसके अंतर्गत आती हैं ।

नीरज दत्ता बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार)** 1

– धारा 27 [सपठित दंड संहिता, 1860 की धारा 302/34, 364, 395 और 201] – अभियुक्त द्वारा किए गए प्रकटन कथन के आधार पर मृतक के शव और अन्य वस्तुओं संबधी तथ्यों का पता चलना – जहां अभियुक्त द्वारा पुलिस अभिरक्षा में कोई प्रकटन कथन

पृष्ठ संख्या

किया जाता है और उसके प्रकटन कथन के आधार पर किसी तथ्य का पता चलता है तो धारा 27 के अधीन अन्वेषण अधिकारी के लिए यह अपेक्षित है कि उसके द्वारा बरामदगी पंचनामा तैयार किया जाए किंतु जहां बरामदगी पंचनामा तो दूर की बात अभियुक्त का प्रकटन कथन अभिलिखित तक न किया गया हो, वहां अभियोजन पक्ष द्वारा ऐसी परिस्थिति को साबित किया गया नहीं कहा जा सकता और ऐसे प्रकटन कथन पर की गई बरामदगी के आधार पर अभियुक्त को दोषसिद्ध करना उचित नहीं होगा ।

बोबी बनाम **केरल राज्य** 100

[2023] 1 उम. नि. प. 1

नीरज दत्ता

बनाम

राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार)

[2009 की दांडिक अपील सं. 1669]

15 दिसंबर, 2022

न्यायमूर्ति एस. अब्दुल नज़ीर, न्यायमूर्ति बी. आर. गवई, न्यायमूर्ति ए. एस. बोपन्ना, न्यायमूर्ति वी. रामसुब्रमण्यन और न्यायमूर्ति बी. वी. नागरत्ना

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) – धारा 7, 13(1)(घ) और 13(2) – लोक सेवक द्वारा अवैध परितोषण की मांग और प्रतिग्रहण – विचारण से पूर्व शिकायतकर्ता की मृत्यु हो जाने या किसी अन्य कारण से उसके उपलब्ध न होने पर उसके प्रत्यक्ष या प्राथमिक साक्ष्य का अभाव – अभियुक्त की दोषसिद्धि करने के लिए आवश्यक सबूत की प्रकृति और गुणवत्ता – अभियुक्त लोक सेवक की दोषिता को सिद्ध करने के लिए अभियोजन पक्ष को प्रथमत: अवैध परितोषण की मांग और इसके पश्चात् यथार्थत: उसके प्रतिग्रहण की बात को साबित करना चाहिए और इसे प्रत्यक्ष मौखिक साक्ष्य या दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता है किंतु जहां शिकायतकर्ता की मृत्यु हो जाने, या विचारण के दौरान अपना साक्ष्य देने के लिए अनुपलब्ध होने या पक्षद्रोही हो जाने पर उसके मौखिक साक्ष्य के अभाव में अवैध परितोषण की मांग को किसी अन्य साक्षी के मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य के साथ-साथ पारिस्थितिक साक्ष्य से भी सिद्ध किया जा सकता है और यदि अवैध परितोषण की मांग और प्रतिग्रहण के बुनियादी तथ्यों से ऐसे साक्ष्य की संपुष्टि हो जाती है तो न्यायालय द्वारा लोक सेवक की सदोषता का निष्कर्ष निकाला जा सकता है ।

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 – धारा 20 – लोक सेवक द्वारा वैध पारिश्रमिक से भिन्न अवैध परितोषण का प्रतिग्रहण – उपधारणा – व्याप्ति – इस धारा में प्रयुक्त अभिव्यक्ति न्यायालय 'उपधारणा करेगा' है जो एक विधिक या अनिवार्य उपधारणा है और यदि धारा के प्रथम भाग में परिकल्पित शर्तों का समाधान हो जाता है तो यह उपधारणा की जाएगी कि लोक सेवक ने अपना कोई पदीय कृत्य करने या करने से प्रविरत रहने के लिए हेतु या इनाम के रूप में अवैध परितोषण प्रतिगृहीत किया था और इस धारा में यह उपबंधित नहीं है कि इन शर्तों का प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा समाधान किया जाना चाहिए अपितु केवल यह अपेक्षित है कि यह साबित किया जाना चाहिए कि अभियुक्त ने अवैध परितोषण प्रतिगृहीत किया था या प्रतिगृहीत करने के लिए सहमत हुआ था ।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 3 – 'साक्ष्य' शब्द की व्याप्ति – साक्ष्य शब्द मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य तक निर्बंधित नहीं है अपितु तात्विक वस्तुएं, साक्षियों का हाव-भाव, न्यायिक अवेक्षा किए जाने वाले तथ्य, पक्षकारों की स्वीकारोक्तियां, स्थानीय निरीक्षण और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन मजिस्ट्रेट या न्यायाधीश द्वारा किए गए प्रश्नों के अभियुक्त द्वारा दिए गए उत्तर जैसी अन्य बातें भी इसके अंतर्गत आती हैं ।

इस अपील में अपीलार्थी, जो विद्युत विभाग में निरीक्षक के रूप में कार्यरत थी, को शिकायतकर्ता की दुकान में विद्युत मीटर संस्थापित करने के लिए रिश्वत लेने के आरोप में भ्रष्टाचार निवारण ब्यूरो द्वारा गिरफ्तार किया गया था । विचारण आरंभ होने से पूर्व ही शिकायतकर्ता की मृत्यु हो गई थी । विचाण न्यायालय द्वारा प्रत्यक्ष साक्ष्य के अभाव में अपीलार्थी को पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 और धारा 13(2) के साथ पठित धारा 13(1)(i) और (ii) के अधीन दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया । अपील में उच्च न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि की गई । अपीलार्थी द्वारा उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । अपील की सुनवाई के दौरान दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा इस संबंध में पाया गया कि जब

शिकायतकर्ता का प्राथमिक साक्ष्य अनुपलब्ध है, तो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7 और धारा 13(2) के साथ पठित 13(1)(घ) के अधीन अपराधों के लिए दोषसिद्धि करने के लिए आवश्यक सबूत की प्रकृति और गुणवत्ता के संबंध में बी. जयराज **बनाम** आंध्र प्रदेश राज्य [(2014) 13 एस. सी. सी. 55] और पी. सत्यनारायण मूर्ति **बनाम** जिला पुलिस निरीक्षक, आंध्र प्रदेश राज्य और एक अन्य [(2015) 10 एस. सी. सी. 152] वाले मामलों में इस न्यायालय की दो तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठों के विनिश्चय एम. नरसिंग राव **बनाम** आंध्र प्रदेश राज्य [(2001) 1 एस. सी. सी. 691] वाले मामले में इस न्यायालय की एक पूर्ववर्ती तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय के विरोध में है और इस न्यायालय के पूर्ववर्ती विनिश्चयों में यथा प्रतिपादित विधि की स्थिति की विधिमान्यता के बारे में कतिपय संदेह अभिव्यक्त किया गया । इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि शिकायतकर्ता की मृत्यु हो जाने के कारण उसके प्राथमिक साक्ष्य के अभाव में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 और 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन दोषसिद्धि कायम रखने के लिए आनुमानिक निष्कर्ष निकालना विधि में अननुज्ञेय है । तथापि, अन्य विनिश्चयों में इस न्यायालय ने शिकायतकर्ता के प्राथमिक साक्ष्य के अभाव के बावजूद अन्य साक्ष्य का अवलंब लेकर और कानून के अधीन उपधारणा करके अभियुक्त की दोषसिद्धि को कायम रखा था । भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 और धारा 13(2) के साथ पठित 13(1)(घ) के अधीन अपराध को साबित करने के लिए साक्ष्य संबंधी अपेक्षा के विवेचन में भिन्नता को देखते हुए विधि का यह प्रश्न एक बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा विनिश्चित किए जाने के लिए निर्देशित किया गया कि क्या अवैध परितोषण की मांग के संबंध में शिकायतकर्ता के प्रत्यक्ष या प्राथमिक साक्ष्य के अभाव में अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए अन्य साक्ष्य के आधार पर किसी लोक सेवक की आपराधिता/दोषिता का आनुमानिक निष्कर्ष निकालना अनुज्ञेय है या नहीं । संविधान न्यायपीठ द्वारा निर्देश का उत्तर देते हुए,

अभिनिर्धारित – यह भली-भांति स्थिर है कि साक्ष्य किसी मामले में अभिवाक् किए गए तथ्यों पर होता है और इसलिए मुख्य तथ्य कभी-

कभी विवाद्यक तथ्य होते हैं । विवाद्यक से सुसंगत तथ्य साक्ष्यिक तथ्य होते हैं जो किसी विवाद्यक तथ्य या कुछ सुसंगत तथ्य की विद्यमानता या अविद्यमानता की अधिसंभाव्यता को बताते हैं । दांडिक मामलों में, विवाद्यक तथ्य वारंट या समन मामलों में आरोप, या अर्जन से गठित होते हैं । विवाद्यक तथ्यों का सबूत मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य हो सकता है । साक्ष्य वह माध्यम है जिसके द्वारा न्यायालय जांच के अधीन मामले अर्थात् साक्षियों के वास्तविक शब्दों, या प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों की सत्यता या अन्यथा से आश्वस्त होता है न कि उन तथ्यों से जो मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा साबित किए जाने हैं । निस्संदेह, साक्ष्य शब्द मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य तक निर्बंधित नहीं है अपितु तात्विक वस्तुएं, साक्षियों का हाव-भाव, तथ्य जिनकी न्यायिक अवेक्षा की जाती है, पक्षकारों की स्वीकारोक्तियां, किया गया स्थानीय निरीक्षण और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन मजिस्ट्रेट या न्यायाधीश द्वारा किए गए प्रश्नों के अभियुक्त द्वारा दिए गए उत्तर जैसी अन्य बातें भी हैं । इसके अतिरिक्त, सरकार ऑन लॉ आफ एविडेंस 20वां संस्करण, वॉल्यूम-1 के अनुसार, "प्रत्यक्ष" या "मूल" साक्ष्य से वह साक्ष्य अभिप्रेत है जिससे किसी वस्तु या तथ्य की विद्यमानता या तो प्रस्तुत करके या किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा वास्तव में परिसाक्ष्य देकर या प्रदर्शन योग्य घोषणा करके सिद्ध होती है जिसने उसे स्वयं महसूस किया है और विश्वास है कि इससे विवाद्यक तथ्य सिद्ध होता है । प्रत्यक्ष साक्ष्य से विवाद्यक तथ्य की विद्यमानता उपधारणा के किसी निष्कर्ष के बिना साबित होती है । दूसरी ओर, "अप्रत्यक्ष साक्ष्य" या "सारभूत साक्ष्य" से यह तर्कसम्मत निष्कर्ष निकलता है कि ऐसा तथ्य या तो निश्चायक रूप से या उपधारणात्मक रूप से विद्यमान है । विचाराधीन सारभूत साक्ष्य अवश्य ऐसा होना चाहिए जिससे एक से अधिक निष्कर्ष न निकलता हो और किसी ऐसे अन्य स्पष्टीकरण से कि तथ्य साबित नहीं होता है अवश्य असंगत होना चाहिए । प्रत्यक्ष या उपधारणात्मक साक्ष्य (पारिस्थितिक साक्ष्य) द्वारा यह कहा जा सकता है कि वे अन्य तथ्य साबित होते हैं जिनसे प्रस्तुत तथ्य की विद्यमानता का तर्कसम्मत रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है । पुन:, मौखिक साक्ष्य को मूल साक्ष्य और अनुश्रुत साक्ष्य के रूप में वर्गीकृत किया जा

सकता है । मूल साक्ष्य वह है जो साक्षी स्वयं अपनी इंद्रियों के माध्यम से देखे या सुने जाने का उल्लेख करता है । अनुश्रुत साक्ष्य को व्युत्पन्नी, पारेषित या सुना-सुनाया साक्ष्य भी कहा जाता है जिसमें साक्षी मात्र उस बात का उल्लेख करता है जो उसने स्वयं देखी या सुनी नहीं है, न कि वह जो उसकी स्वयं की शारीरिक इंद्रियों के तुरंत अवलोकन में आई है अपितु जिसकी उस किसी पर-व्यक्ति के माध्यम से उस तथ्य की बाबत जानकारी मिली है । प्रसामान्यत:, कोई अनुश्रुत साक्ष्य अग्राह्य होगा किंतु जब इसकी अन्य साक्षियों के सारभूत साक्ष्य द्वारा पुष्टि की जाती है, तो यह ग्राह्य होगा । वह साक्ष्य जिससे विवाद्यक तथ्य प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध नहीं होता है अपितु उन परिस्थितियों पर रोशनी डालता है जिनमें विवाद्यक तथ्य घटित नहीं हुआ था, पारिस्थितिक साक्ष्य होता है (जिसे आनुमानिक या उपधारणात्मक साक्ष्य भी कहा जाता है) । पारिस्थितिक साक्ष्य से अभिप्रेत वे तथ्य हैं जिनसे एक अन्य तथ्य का अनुमान लगाया जाता है । यद्यपि पारिस्थितिक साक्ष्य से विवाद्यक तथ्य प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध नहीं हो जाता है, तो भी यह समान रूप से प्रत्यक्ष होता है । पारिस्थितिक साक्ष्य को भी परिस्थितियों के प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा साबित किया जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त, साक्ष्य साक्षियों की परीक्षा अर्थात् मुख्य परीक्षा, प्रतिपरीक्षा, और पुन: परीक्षा करके साक्ष्य अधिनियम के उपबंधों के अनुसार दिया जाना चाहिए । साक्ष्य अधिनियम की धारा 59 में यह उपबंधित है कि दस्तावेजों या इलैक्ट्रानिक अभिलेखों की अंतर्वस्तु के सिवाय सभी तथ्य मौखिक साक्ष्य द्वारा साबित किए जा सकेंगे । मौखिक साक्ष्य से अभिप्रेत न्यायालय या न्यायालय द्वारा नियुक्त आयुक्तों की मौजूदगी में परीक्षा किए गए जीवित व्यक्तियों का परिसाक्ष्य है, मूक और बधिर व्यक्ति भी संकेतों या प्रदर्शन के द्वारा या लिखित में, यदि वे शिक्षित हैं, साक्ष्य प्रस्तुत कर सकते हैं । दूसरी ओर, दस्तावेजी साक्ष्यों को स्वयं दस्तावेजों को प्रस्तुत करके या, उनके अभाव में, अधिनियम की धारा 65 के अधीन द्वितीयक साक्ष्य द्वारा साबित किया जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त, मन की किसी दशा जैसे आशय, ज्ञान, सद्भाव, उपेक्षा, या दुर्भावना की विद्यमानता को दर्शित करने वाले तथ्यों को प्रत्यक्ष परिसाक्ष्य द्वारा साबित किया जाना आवश्यक नहीं है । इसे आचरण, परिवर्ती

परिस्थितियों इत्यादि से अनुमान लगाकर साबित किया जा सकता है । साक्ष्य अधिनियम की धारा 60 में यह अपेक्षित है कि मौखिक साक्ष्य अवश्य प्रत्यक्ष या सकारात्मक होना चाहिए । प्रत्यक्ष साक्ष्य वह है जब इससे मुख्य विवाद्यक तथ्य को सीधे सिद्ध किया जाता है । "प्रत्यक्ष" शब्द को व्युत्पन्नी या अनुश्रुत साक्ष्य को पास-पास रखकर प्रयुक्त किया जाता है जहां कोई साक्षी यह साक्ष्य देता है कि उसे किसी अन्य व्यक्ति से जानकारी प्राप्त हुई थी । यदि वह व्यक्ति स्वयं ऐसी जानकारी का कथन नहीं करता है, ऐसा साक्ष्य अनुश्रुत साक्ष्य होने के कारण अग्राह्य होगा । दूसरी ओर, न्यायालयिक प्रक्रिया जैसे पारिस्थितिक या आनुमानिक साक्ष्य या उपधारणात्मक साक्ष्य (धारा 3) अप्रत्यक्ष साक्ष्य है । इससे उन अन्य तथ्यों का सबूत होना अभिप्रेत है जिनसे विवाद्यक तथ्य की विद्यमानता का तर्कसम्मत रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता हो । इस संदर्भ में, "पारिस्थितिक साक्ष्य" अभिव्यक्ति असंयत अर्थ में प्रयुक्त की जाती है, कभी-कभी पारिस्थितिक साक्ष्य प्रत्यक्ष भी हो सकता है । यद्यपि "अनुश्रुत साक्ष्य" अभिव्यक्ति साक्ष्य अधिनियम के अधीन परिभाषित नहीं है, तो भी इसका न्यायालयों में सतत रूप से प्रयोग किया जाता है । तथापि, अनुश्रुत साक्ष्य उस तथ्य को साबित करने के लिए अग्राह्य है जिसका अनुश्रुत आधार पर साक्ष्य दिया जाता है । किंतु इससे उस कथन के बारे में साक्ष्य आवश्यक रूप से अपवर्जित नहीं होता है जिस पर कतिपय कार्यवाही की गई है या कतिपय परिणाम निकला है जैसे कि अपराध के इत्तिला देने वाले का साक्ष्य । इस प्रक्रम पर, अवश्य यह प्रभेदित किया जाना चाहिए कि यहां तक कि मौखिक साक्ष्य के संबंध में भी उप-प्रवर्ग हैं – प्राथमिक साक्ष्य और द्वितीयक साक्ष्य । प्राथमिक साक्ष्य मूल साक्ष्य अर्थात् उस व्यक्ति का मौखिक वर्णन है जिसने जो घटित हुआ था उसे देखा था और न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए जाने के लिए इसका विवरण देता है, या स्वयंमेव मूल दस्तावेज, या मूल वस्तु देता है जब इन्हें न्यायालय में प्रस्तुत किया जाता है । द्वितीयक साक्ष्य मूल साक्ष्य की रिपोर्ट या मौखिक विवरण या किसी दस्तावेज की प्रति या मूल वस्तु का नमूना है । धारा 61 दस्तावेजों की अंतर्वस्तुओं के सबूत के संबंध में है जो या तो प्राथमिक या द्वितीयक साक्ष्य द्वारा हो । जब किसी दस्तावेज को तात्विक साक्ष्य

के रूप में पेश किया जाता है, तो इसे साक्ष्य अधिनियम की धारा 67 से 73 में अधिकथित रीति में साबित किया जाना होगा । किसी दस्तावेज को मात्र पेश किया जाना और न्यायालय द्वारा दस्तावेज को प्रदर्श के रूप में चिह्नित किया जाना इसकी अंतर्वस्तुओं का सम्यक् सबूत होना अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता । इसके निष्पादन को ग्राह्य साक्ष्य द्वारा साबित किया जाना चाहिए । दूसरी ओर, जब कोई दस्तावेज पेश किया जाता है और विरोधी पक्षकार द्वारा स्वीकृत किया जाता है तथा न्यायालय द्वारा प्रदर्श के रूप में चिह्नित किया जाता है तो दस्तावेज की अंतर्वस्तुओं को या तो मूल दस्तावेज अर्थात् प्राथमिक साक्ष्य या धारा 65 के अनुसार द्वितीयक साक्ष्य के रूप में इसकी प्रतियों को पेश करके साबित किया जाना चाहिए । जब तक मूल दस्तावेज अस्तित्व में है और उपलब्ध है, तो इसकी अंतर्वस्तुओं को अवश्य प्राथमिक साक्ष्य द्वारा साबित किया जाना चाहिए । केवल तभी जब प्राथमिक साक्ष्य खो गया है, न्याय के हित में द्वितीयक साक्ष्य को अवश्य अनुज्ञात किया जाना चाहिए । प्राथमिक साक्ष्य सर्वोत्तम साक्ष्य है और यह प्रश्नगत तथ्य की सर्वाधिक निश्चितता प्रदान करता है । इस प्रकार, जब किसी विशिष्ट तथ्य को दस्तावेजी साक्ष्य पेश करके सिद्ध किया जाना है, तो मौखिक साक्ष्य पेश करने के लिए कोई गुंजाइश नहीं है । जो केस किया जाना चाहिए वह प्राथमिक साक्ष्य अर्थात् स्वयं दस्तावेज है । केवल तभी जब प्राथमिक स्रोत के अभाव को समाधानप्रद रूप से स्पष्ट कर दिया गया है वह द्वितीयक साक्ष्य दस्तावेजों की अंतर्वस्तुओं को साबित करने के लिए अनुज्ञेय है । अत: द्वितीयक साक्ष्य को मूल दस्तावेज को पेश न करने के लिए पर्याप्त कारण दिए बिना स्वीकार नहीं करना चाहिए । (पैरा 31, 32, 33, 34, 35, 36, 37, 39, 40, 41 और 42)

अधिनियम की धारा 20 वहां उपधारणा करने के संबंध में है जहां लोक सेवक वैद्य पारिश्रमिक से भिन्न परितोषण प्रतिगृहीत करता है । इस धारा की उपधारा (1) और उपधारा (2) में "उपधारणा की जाएगी" अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया है जब तक कि प्रतिकूल साबित नहीं कर दिया जाता है । उक्त उपबंध एक विधिक उपधारणा के संबंध में है जो इस आदेश की प्रकृति की है कि यदि इस धारा के पहले भाग में

परिकल्पित शर्तों का समाधान हो जाता है तो यह उपधारणा की जानी चाहिए कि अभियुक्त ने कोई पदीय कृत्य इत्यादि करने के लिए या करने से प्रविरत रहने के लिए हेतु या इनाम के रूप में परितोषण प्रतिगृहीत किया था । अधिनियम की धारा 20 के अधीन एक विधिक उपधारणा करने के लिए एकमात्र शर्त यह है कि विचारण के दौरान यह साबित किया जाना चाहिए कि अभियुक्त ने कोई परितोषण प्रतिगृहीत किया था या प्रतिगृहीत करने के लिए सहमत हुआ था । यह धारा यह नहीं कहती है कि उक्त शर्त का प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा समाधान किया जाना चाहिए । इसकी एकमात्र अपेक्षा यह है कि यह साबित करना होगा कि अभियुक्त ने परितोषण प्रतिगृहीत किया है या प्रतिगृहीत करने के लिए सहमत हुआ है । साक्ष्य अधिनियम की धारा 4 में "उपधारणा कर सकेगा" और "उपधारणा करेगा" अभिव्यक्तियों के विपरीत "निश्चायक सबूत" अभिव्यक्ति को भी प्रयुक्त किया गया है । जब विधि यह कहती है कि एक विशिष्ट प्रकार का साक्ष्य निश्चायक होगा, उस तथ्य को या तो उस साक्ष्य द्वारा या किसी अन्य साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता है जिसे न्यायालय अनुज्ञात करे या अपेक्षा करे । जब निश्चायक किया गया साक्ष्य पेश किया जाता है, न्यायालय के पास यह अभिनिर्धारित करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं है कि वह तथ्य अस्तित्व में है । उदाहरण के लिए, न्यायालय के आदेश में कही गई वह बात निश्चायक है जो न्यायालय के पीठासीन अधिकारी के समक्ष घटित हुई थी । इस प्रकार, निश्चायक सबूत कतिपय तथ्यों के लिए विधि में एक बनावटी साक्ष्यिक प्रभाव देता है । इस प्रभाव का विरोध करने की दृष्टि से कोई साक्ष्य पेश किया जाना अनुज्ञात नहीं है । जब कोई कानून कतिपय तथ्यों को अंतिम और निश्चायक बनाता है, तो ऐसे तथ्यों को नासाबित करना अनुज्ञात नहीं किया जाना चाहिए । जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, न्यायालय के समक्ष पेश किए जाने वाले सभी साक्ष्य या तो प्रत्यक्ष साक्ष्य या पारिस्थितिक साक्ष्य के रूप में वर्गीकृत हैं । "प्रत्यक्ष साक्ष्य" से अभिप्रेत है जब मुख्य तथ्य को प्रत्यक्ष रूप से साक्षियों, वस्तुओं या दस्तावेजों द्वारा प्रमाणित किया जाता है । सभी अन्य रूपों के लिए, "पारिस्थितिक साक्ष्य" पद जो "अप्रत्यक्ष साक्ष्य" है चाहे साक्षियों, वस्तुओं, या दस्तावेजों द्वारा निर्दिष्ट किया जाए, उसे

साक्ष्य के रूप में प्राप्त किया जा सकता है । यह भी दो प्रकार का है अर्थात् निश्चायक और उपधारणात्मक । निश्चायक तब होता है जब मुख्य और साक्ष्यिक तथ्यों – फेक्टम प्रोबेंडम और फेक्टम प्रोबेंस के बीच संबंध नैसर्गिक विधियों का एक आवश्यक परिणाम हो ; "उपधारणात्मक" तब होता है जब साक्ष्य से मुख्य तथ्य का निष्कर्ष केवल अधिसंभाव्य है, चाहे उस धारणा की मात्रा कितनी ही हो जो इससे उत्पन्न होती हो (बेस्ट, 11वां संस्करण, धारा 293) । इस प्रकार, पारिस्थितिक साक्ष्य उन परिस्थितियों का साक्ष्य होता है जिसे प्रत्यक्ष साक्ष्य का प्रतिकूल साक्ष्य कहा जाता है । अभियोजन पक्ष को उन सभी आवश्यक परिस्थितियों को प्रस्तुत और साबित करना चाहिए जिनसे किसी दरार के बिना संपूर्ण श्रृंखला का गठन होता हो और इस कल्पना को इंगित करती हो कि अभियुक्त के सिवाय किसी व्यक्ति ने अपराध कारित नहीं किया था । (पैरा 48, 52, 53 और 54)

पूर्वोक्त चर्चा से जो निकलकर आता है उसका सारांश निम्नलिखित है :– (क) अभियुक्त लोक सेवक की अधिनियम की धारा 7 और 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन दोषिता को सिद्ध करने के लिए लोक सेवक द्वारा अवैध परितोषण की मांग और प्रतिग्रहण का विवाद्यक तथ्य के रूप में अभियोजन पक्ष द्वारा सबूत दिया जाना अत्यावश्यक है । (ख) अभियुक्त की दोषिता को सिद्ध करने के लिए, अभियोजन पक्ष को पहले अवैध परितोषण की मांग को और इसके पश्चात् तथ्य के रूप में इसके प्रतिग्रहण की बात को साबित करना चाहिए । इस विवाद्यक तथ्य को या तो प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा, जो मौखिक साक्ष्य की प्रकृति का हो सकता है या दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता है । (ग) इसके अतिरिक्त, विवाद्यक तथ्य अर्थात् अवैध परितोषण की मांग और प्रतिग्रहण के सबूत को प्रत्यक्ष मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के अभाव में पारिस्थितिक साक्ष्य द्वारा भी साबित किया जा सकता है । (घ) विवाद्यक तथ्य अर्थात् लोक सेवक द्वारा अवैध परितोषण की मांग और प्रतिग्रहण को साबित करने के लिए निम्नलिखित पहलुओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए : (i) यदि लोक सेवक से कोई मांग किए बिना **रिश्वत देने वाले द्वारा संदाय करने की प्रस्थापना की जाती है** और लोक सेवक मात्र प्रस्थापना को प्रतिगृहीत करता है और अवैध परितोषण प्राप्त

करता है, तो यह अधिनियम की धारा 7 के अनुसार एक **प्रतिग्रहण का मामला है ।** ऐसे मामले में लोक सेवक द्वारा पहले से मांग किए जाने की आवश्यकता नहीं है । (ii) दूसरी ओर, **यदि लोक सेवक मांग करता है** और रिश्वत देने वाला मांग को स्वीकार करता है और मांग किए गए परितोषण को देता है जो उसके पश्चात् लोक सेवक द्वारा प्राप्त किया जाता है, तो यह एक **अभिप्राप्ति का मामला है** । अभिप्राप्ति के मामले में, अवैध परितोषण के लिए पहले से मांग लोक सेवक से उत्पन्न होती है । यह अधिनियम की धारा 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन अपराध है । (iii) उपरोक्त (i) और (ii) दोनों दशाओं में, क्रमश: रिश्वत देने वाले द्वारा प्रस्थापना और लोक सेवक द्वारा मांग को अभियोजन पक्ष द्वारा विवाद्यक तथ्य के रूप में साबित किया जाना चाहिए । दूसरे शब्दों में, अवैध परितोषण के मात्र प्रतिग्रहण या प्राप्ति से किसी और बात के बिना क्रमश: अधिनियम की धारा 7 या धारा 13(i)(घ), (i) और (ii) के अधीन अपराध नहीं बनेगा । अत: अधिनियम की धारा 7 के अधीन अपराध सिद्ध करने के लिए एक प्रस्थापना को होना अपेक्षित है जो रिश्वत देने वाले से उत्पन्न होती है और जिसे लोक सेवक द्वारा प्रतिगृहीत किया जाता है जिससे यह अपराध बन जाता है । इसी प्रकार, लोक सेवक द्वारा पहले से की गई मांग को जब रिश्वत देने वाले द्वारा स्वीकार किया जाता है और बदले में संदाय किया जाता है जो लोक सेवक द्वारा प्राप्त किया जाता है, अधिनियम की धारा 13(i)(घ) और (i) तथा (ii) के अधीन अभिप्राप्ति का अपराध होगा । (ङ) अवैध परितोषण और प्रतिग्रहण या अभिप्राप्ति के संबंध में तथ्य की उपधारणा न्यायालय द्वारा अनुमान द्वारा केवल तभी की जा सकती है जब बुनियादी तथ्यों को सुसंगत मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा साबित किया गया है न कि इनके अभाव में । अभिलेख पर सामग्री के आधार पर न्यायालय को इस बात पर विचार करते समय कि क्या मांग के तथ्य को अभियोजन पक्ष द्वारा साबित किया गया है या नहीं, तथ्य की उपधारणा करने का विवेकाधिकार है । निस्संदेह, तथ्य की उपधारणा अभियुक्त द्वारा खंडन किए जाने के अध्यधीन है और खंडन के अभाव में उपधारणा बनी रहेगी । (च) उस दशा में जब शिकायतकर्ता 'पक्षद्रोही' हो जाता है, या मृत्यु हो गई है या विचारण के दौरान अपना साक्ष्य देने के लिए अनुपलब्ध है, तो अवैध परितोषण की मांग को किसी अन्य साक्षी के

साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता है जो पुन: या तो मौखिक रूप से या दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा साक्ष्य दे सकता है या अभियोजन पक्ष मामले को पारिस्थितिक साक्ष्य द्वारा सिद्ध कर सकता है । विचारण का उपशमन नहीं हो जाता है, न ही इसके परिणामस्वरूप अभियुक्त लोक सेवक की दोषमुक्ति का आदेश किया जाता है । (छ) जहां तक अधिनियम की धारा 7 का संबंध है, विवाद्यक तथ्य के सबूत के आधार पर धारा 20 न्यायालय को यह उपधारणा करने के लिए आदिष्ट करती है कि अवैध परितोषण उक्त धारा में यथा वर्णित हेतु या इनाम के प्रयोजन के लिए था । न्यायालय द्वारा उक्त उपधारणा एक विधिक उपधारणा या विधि की उपधारणा के रूप में की जानी चाहिए । निस्संदेह, उक्त उपधारणा भी खंडनीय है । धारा 20, धारा 13(i)(घ) (i) और (ii) को लागू नहीं होती है । (ज) न्यायालय स्पष्ट करती है कि अधिनियम की धारा 20 के अधीन विधि की उपधारणा ऊपर बिंदु (ड.) में निर्दिष्ट तथ्य की उपधारणा से भिन्न है क्योंकि विधि की उपधारणा एक आज्ञापक उपधारणा है जबकि तथ्य की उपधारणा वैवेकिक प्रकृति की है । पूर्वोक्त चर्चा और निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि जब शिकायतकर्ता का प्रत्यक्ष साक्ष्य या शिकायतकर्ता का "प्राथमिक साक्ष्य" उसकी मृत्यु या किसी अन्य कारण से अनुपलब्ध है तो अधिनियम की धारा 7 या 13(i)(घ) (i) और (ii) के अधीन अपराधों के लिए दोषसिद्धि करने के लिए आवश्यक सबूत की प्रकृति और गुणवत्ता के संबंध में बी. जयराज (उपर्युक्त) और पी. सत्यनारायण मूर्ति (उपर्युक्त) वाले मामलों में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चयों का एम. नरसिंग राव (उपर्युक्त) वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के साथ कोई विरोध नहीं है । विधि की उस स्थिति की भी चर्चा की गई है जब कोई शिकायतकर्ता या अभियोजन साक्षी "पक्षद्रोही" हो जाता है और ऊपर की गई मताभिव्यक्तियां साक्ष्य अधिनियम की धारा 154 को ध्यान में रखते हुए तद्नुसार लागू होंगी । पूर्वोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि पूर्वोक्त तीनों मामलों के निर्णयों के बीच कोई विरोध नहीं है । तद्नुसार, इस संविधान न्यायपीठ के विचार के लिए निर्देशित प्रश्न का निम्नलिखित उत्तर दिया जाता है: **शिकायतकर्ता** के साक्ष्य (प्रत्यक्ष/प्राथमिक, मौखिक/दस्तावेजी साक्ष्य) के अभाव में

अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए **अन्य साक्ष्य** के आधार पर किसी लोक सेवक की अधिनियम की धारा 7 और अधिनियम की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 13(i)(घ) के अधीन अपराधिता/दोषिता का आनुमानिक निष्कर्ष निकालना अनुज्ञेय है । (पैरा 68, 69 और 70)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2022] (2022) 4 एस. सी. सी. 574 :
के. शांतम्मा बनाम **कर्नाटक राज्य** ; 14

[2018] ए. आई. आर. 2018 एस. सी. 2027 :
नवनीतकृष्णन बनाम **राज्य** मार्फत
पुलिस निरीक्षक ; 53

[2017] (2017) 8 एस. सी. सी. 136 :
मुखत्यार सिंह बनाम **पंजाब राज्य** ; 15, 34

[2017] (2017) 15 एस. सी. सी. 560 :
राज्य बनाम **डा. अनूप कुमार श्रीवास्तव** ; 58

[2016] (2016) 1 एस. सी. सी. 713 :
एन. सुनकन्ना बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ; 15, 61

[2015] (2015) 10 एस. सी. सी. 152 :
पी. सत्यनारायण मूर्ति बनाम 9, 11, 16,
जिला पुलिस निरीक्षक, आंध्र प्रदेश 17, 19, 24,
राज्य ; 57, 58, 69

[2015] (2015) 10 एस. सी. सी. 230 :
सेल्वराज बनाम **कर्नाटक राज्य** ; 60

[2015] (2015) 3 एस. सी. सी. 247 :
एम. आर. पुरुषोतम बनाम **कर्नाटक राज्य** ; 15, 61

[2015] (2015) 11 एस. सी. सी. 314 :
सुकुमारन बनाम **केरल राज्य** ; 15

[2015]	(2015) 11 एस. सी. सी. 213 : **नयन कुमार शिवप्पा वाघमरे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	61
[2015]	(2015) 7 एस. सी. सी. 283 : **आंध्र प्रदेश राज्य** बनाम **वेंकटेश्वरलु** ;	60
[2014]	(2014) 13 एस. सी. सी. 55 : **बी. जयराज** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ;	9, 10, 12, 17, 19, 24, 57, 61, 69
[2013]	(2013) 4 एस. सी. सी. 206 : **राजस्थान राज्य** बनाम **बाबू मीणा** ;	38
[2013]	(2013) 4 एस. सी. सी. 668 : **प्रकाश** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	55
[2011]	(2011) 6 एस. सी. सी. 450 : **केरल राज्य** बनाम **सी. पी. राव** ;	10, 61
[2011]	(2011) 10 एस. सी. सी. 259 : **ए. बी. भास्कर राव** बनाम **केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो** ;	71
[2010]	(2010) 15 एस. सी. सी. 1 : **सी. एम. शर्मा** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ;	15, 62
[2009]	(2009) 6 एस. सी. सी. 587 : **ए. सुबैर** बनाम **केरल राज्य** ;	10, 60
[2009]	(2009) 15 एस. सी. सी. 200 : **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **ध्यानेश्वर लक्ष्मण राव वानखेड़े** ;	15
[2009]	(2009) 2 एस. सी. सी. 513 : **कुमार एक्सपोर्ट्स** बनाम **शर्मा कार्पेट्स ;**	47
[2008]	(2008) 4 एस. सी. सी. 54 : **कृष्ण जनार्दन भट** बनाम **दत्तात्रेय जी. हेगड़े** ;	47

[2006] (2006) 8 एस. सी. सी. 693 :
मध्य प्रदेश राज्य बनाम **शंभु दयाल** ; 71

[2004] (2004) 9 एस. सी. सी. 319 :
आंध्र प्रदेश राज्य बनाम **वासुदेव राव** ; 60

[2002] (2002) 5 एस. सी. सी. 86 :
सुभाष प्रभात सोनवणे बनाम **गुजरात राज्य** ; 6

[2001] (2001) 1 एस. सी. सी. 691 :
एम. नरसिंग राव बनाम 9, 11, 18, 19,
आंध्र प्रदेश राज्य ; 22, 57, 69

[2000] (2000) 5 एस. सी. सी. 88 :
मध्य प्रदेश राज्य बनाम **राम सिंह** ; 23

[2000] (2000) 8 एस. सी. सी. 571 :
मधुकर भास्करराव जोशी बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 57

[1998] (1998) 7 एस. सी. सी. 337 :
सुरेश बुधरमल कलानी बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 10

[1997] (1997) 9 एस. सी. सी. 477 :
सी. के. दामोदरन नायर बनाम **भारत सरकार** ; 8

[1997] (1997) 4 एस. सी. सी. 14 :
स्वतंत्र सिंह बनाम **हरियाणा राज्य** ; 71

[1995] 1995 क्रिमिनल ला जर्नल 1623 (दिल्ली) :
अमरजीत सिंह बनाम **राज्य (दिल्ली प्रशासन) ;** 44

[1990] 1990 सप्ली. एस. सी. सी. 12 :
उत्तर प्रदेश राज्य बनाम **राम आसरे** ; 15

[1983] [1983] 2 उम. नि. प. 269 = (1982)
3 एस. सी. सी. 466 :
किशन चंद मंगल बनाम **राजस्थान राज्य** ; 11, 60

[1981] [1981] 1 उम. नि. प. 464 = (1980)
2 एस. सी. सी. 390 :
हजारी लाल बनाम **राज्य (दिल्ली प्रशासन)** ; 10

[1985] [1985] 1 उम. नि. प. 995 = (1984) 4 एस. सी. सी. 116 :
शरद बिरधीचंद सारदा बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 55

[1979] (1979) 3 एस. सी. सी. 90 :
प्रकाश चंद बनाम **राज्य (दिल्ली प्रशासन)** ; 62

[1976] [1976] 2 उम. नि. प. 1233 = (1976) 1 एस. सी. सी. 727 :
सतपाल बनाम **दिल्ली प्रशासन** ; 66

[1964] ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 575 :
धनवंतरी बलवंतरी देसाई बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 50

[1961] ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 1316 :
कुंदन लाल रल्लाराम बनाम **अभिरक्षक, निष्क्रांत संपत्ति बंबई** ; 56

[1958] ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 61 :
मद्रास राज्य बनाम **ए. वैद्यनाथ अय्यर** ; 49

[1956] ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 476 :
राम कृष्ण बनाम **दिल्ली राज्य** । 6

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2009 की दांडिक अपील सं. 1669. (इसके साथ 2020 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 6497, 2022 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 294, 2010 की दांडिक अपील सं. 1779, 2010 की दांडिक अपील सं. 2136, 2019 की डायरी सं. 27232, 2019 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 11339, 2020 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 3828, 2021 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 5905,

2020 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 6279, 2021 की दांडिक अपील सं. 678, 2021 की दांडिक अपील सं. 1490 और 2022 की दांडिक अपील सं. 1592)

2007 की दांडिक अपील सं. 4 में दिल्ली उच्च न्यायालय, नई दिल्ली के तारीख 2 अप्रैल, 2009 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

हाजिर होने वाले पक्षकारों की ओर से

सुश्री ऐश्वर्या भाटी, सर्वश्री जयंत के. सूद, अपर महा-सालिसिटर, सौरभ मिश्रा, सहायक महाधिवक्ता, आरधेंदुमौली कुमार प्रसाद, अपर महाधिवक्ता, एस. नागमुथु, बासव प्रभु एस. पाटील, एम करपगा विनायगम, सुशील कुमार जैन, (सुश्री) किरन सूरी, (सुश्री) सोनिया माथुर, ज्येष्ठ अधिवक्तागण, सतिन्द्र एस. गुलाटी, राज किशोर चौधरी, ए. एस. वैरावन, आर. सुधाकरण, जी. आर. विकाश, डी. सुब्रमण्य भानु, रोहन सिंह, (सुश्री) शालिनी मिश्रा, कमलदीप गुलाटी, एम. पी. पार्थिबन, टी. हरि हरा सुधन, जी. मणि प्रभु, सी. संतोष, (सुश्री) पुष्पिता बासक, गीत आहूजा, समर्थ कश्यप, अनिरुद्ध संगेरिया, के. वी. मुथु कुमार, नितिन कुमार, दीपक शर्मा, सी. अर्विन्द, (सुश्री) शृष्टि जैन, पुनीत जैन, डा. अजय कुमार, कौशल यादव, डा. सुशील बलवाड़ा, राम किशोर सिंह यादव, नंद लाल कुमार मिश्रा, उमंग मेहता, हर्ष

जैन, (सुश्री) यशोदा कटियार, शफीक अहमद, विक्रांत यादव, अर्जुन रघुवंशी, संतोष कुमार, (सुश्री) श्वेता यादव, पृथ्वी पाल, सावन कुमार शुक्ला, अनिल शर्मा, राय अब्राहम, (सुश्री) रीना राय, अखिल अब्राहम, यधीन्द्र लाल, (सुश्री) पूर्वा, हिमिन्द्र लाल, राघेंथ बसंत, (सुश्री) लिज मैथु, (सुश्री) रूपाली लखोटिया, अजय कृष्णा, बी. बालाजी, मल्लिकार्जुन एस. मायलार, बम्मप्पनावर के. एस. हरिवंश मानव, अशोक बन्निधिन्नी, गगन गुप्ता, अनंत प्रसाद मिश्रा, दीपक कुमार जैन, अनिल एस. टी, निखिल डी. कामक, पवन आर. जावली, सुनील एम. वी., विनायक कुलकर्णी, सोमेश्कर नारायण, उदय उर्स, प्रणाम प्रभाकर, एस. जे. अमित, सय्यद अहमद नकवी, संजीव कुमार, डा. सुमन भारद्वाज, वेदांत भारद्वाज, (सुश्री) मृदुला रे भारद्वाज, मैसर्स बन्निधिन्नी एंड कंपनी, (सुश्री) रुक्मणी बोबडे, (सुश्री) स्निधा मेहरा, संजय कुमार त्यागी, अदित खुराना, शुब्रांशु पाधी, उदय खन्ना, (सुश्री) मनीषा चावा, (सुश्री) कनिका, (सुश्री) शिविका मेहरा, मानवेन्द्र सिंह, अभिजीत सिंह, (सुश्री) पूर्णिमा सिंह, (सुश्री) बी. एल. एन. शिवानी, अमन शर्मा, कार्तिक जसरा, रणदीप सचदेवा, (सुश्री) श्रेया जैन, हरीश नड्डा, शिवम जसरा, गुरमीत सिंह मक्कड़,

अजय पाल, हर्ष पाराशर, निशी राजन शोनकर, (सुश्री) अनु के. जॉय, अलिम अनवर, डा. जोसफ अरिस्टोटल एस., (सुश्री) नूपुर शर्मा, शोभित भारद्वाज, संजीव कुमार माहरा, (सुश्री) वैदेही रस्तौगी, अभिनव श्रीवास्तव, सन्नी चौधरी, संदीप शर्मा, शिवांग रावत, (सुश्री) राधिका जलान, महफूज ए. नासकी, पोलांकी गौतम, शेख मोहम्मद हनीफ़, टी. विजय भास्कर रेड्डी, के. वी. गिरिश चौधरी, (सुश्री) राजेश्वरी मुखर्जी और (सुश्री) नीति रिछारिया

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति बी. वी. नागरत्ना ने दिया ।

न्या. नागरत्ना – इस न्यायालय की एक तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने तारीख 27 अगस्त, 2019 के आदेश द्वारा विरचित विधि का प्रश्न समुचित संख्या की न्यायपीठ द्वारा विनिश्चित किए जाने के लिए निर्देशित किया है । इसीलिए मामलों के इस समूह को माननीय भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा पांच न्यायाधीशों से बनी संविधान न्यायपीठ को निर्देशित किया गया है । आसान संदर्भ के लिए, तारीख 27 अगस्त, 2019 के निर्देश आदेश को नीचे उद्धृत किया जाता है :–

"आदेश

1. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 से संबंधित वर्तमान निर्देश इस न्यायालय की एक दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा तारीख 28 फरवरी, 2019 को पारित किए गए उस आदेश से उद्भूत हुआ है जिसमें उन्होंने पी. सत्यनारायण मूर्ति **बनाम** जिला पुलिस निरीक्षक, आंध्र प्रदेश राज्य और एक अन्य [(2015) 10 एस. एस. सी. 152] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा यथा प्रतिपादित विधि की स्थिति की विधिमान्यता के बारे में कतिपय संदेह अभिव्यक्त किए हैं ।

उस मामले में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि शिकायतकर्ता की मृत्यु हो जाने के कारण उसके प्राथमिक साक्ष्य के अभाव में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7 और 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन दोषसिद्धि कायम रखने के लिए आनुमानिक निष्कर्ष निकालना विधि में अननुज्ञेय है ।

2. तथापि, इस न्यायालय ने तारीख 28 फरवरी, 2019 के आदेश द्वारा अनेक निर्णयों को रेखांकित किया, जैसे किशन चंद मंगल **बनाम** राजस्थान राज्य [(1982) 3 एस. सी. सी. 466], हजारी लाल **बनाम** राज्य (दिल्ली प्रशासन) [(1980) 2 एस. सी. सी. 390] और एम. नरसिंग राव **बनाम** आंध्र प्रदेश राज्य [(2001) 1 एस. सी. सी. 691] वाले मामले जिनमें इस न्यायालय ने शिकायतकर्ता के प्राथमिक साक्ष्य के अभाव के बावजूद अन्य साक्ष्य का अवलंब लेकर और कानून के अधीन उपधारणा करके अभियुक्त की दोषसिद्धि को कायम रखा था ।

3. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7 और धारा 13(2) के साथ पठित 13(1)(घ) के अधीन अपराध को साबित करने के लिए साक्ष्य संबंधी अपेक्षा के विवेचन में भिन्नता को देखते हुए इस न्यायालय ने निम्नलिखित विधि का प्रश्न एक बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा अवधारित करने के लिए निर्देशित किया है :

> 'प्रश्न यह है कि क्या अवैध परितोषण की मांग के संबंध में शिकायतकर्ता के प्रत्यक्ष या प्राथमिक साक्ष्य के अभाव में अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए अन्य साक्ष्य के आधार पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7 और धारा 13(2) के साथ पठित धारा 13(1)(घ) के अधीन किसी लोक सेवक की आपराधिता/दोषिता का आनुमानिक निष्कर्ष निकालना अनुज्ञेय नहीं है ।'

4. पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को विस्तारपूर्वक सुना ।

5. हमने पाया कि जब शिकायतकर्ता का प्राथमिक साक्ष्य अनुपलब्ध है, तो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7 और धारा 13(2) के साथ पठित धारा 13(1)(घ) के अधीन अपराधों के लिए दोषसिद्धि करने के लिए आवश्यक सबूत की प्रकृति और गुणवत्ता के संबंध में बी. जयराज **बनाम** आंध्र प्रदेश राज्य [(2014) 13 एस. सी. सी. 55] और पी. सत्यनारायण मूर्ति **बनाम** जिला पुलिस निरीक्षक, आंध्र प्रदेश राज्य और एक अन्य [(2015) 10 एस. सी. सी. 152] वाले मामलों में इस न्यायालय की दो तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठों के विनिश्चय एम. नरसिंग राव **बनाम** आंध्र प्रदेश राज्य [(2001) 1 एस. सी. सी. 691] वाले मामले में इस न्यायालय की एक पूर्ववर्ती तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय के विरोध में है ।

6. अत: हम यह समुचित समझते हैं कि विरचित विधि के प्रश्न को एक समुचित संख्या की न्यायपीठ द्वारा विनिश्चित किए जाने के लिए निर्देशित किया जाए । रजिस्ट्री को कागजात समुचित आदेशों के लिए भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष प्रस्तुत करने का निदेश दिया जाता है ।"

2. इस प्रकार, निर्देश का उत्तर देने के लिए उद्भूत विवादास्पद प्रश्न यह है कि क्या शिकायतकर्ता की अनुपलब्धता के कारण या उसकी मृत्यु या अन्य कारण से मांग का प्रत्यक्ष साक्ष्य देने में शिकायतकर्ता के अभाव में अवैध परितोषण की मांग को अन्य साक्ष्य द्वारा सिद्ध किया जा सकता है या नहीं । ऐसा इसलिए है क्योंकि मांग के सबूत के अभाव में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (संक्षेप में 'अधिनियम') की धारा 20 के अधीन एक विधिक उपधारणा उद्भूत नहीं होगी । इस प्रकार, मांग का सबूत होना अधिनियम की धारा 7, 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन अपराध सिद्ध किए जाने के लिए अत्यावश्यक है और मांग के

सबूत के बिना दोनों धाराओं के अधीन अपराध को सिद्ध नहीं किया जा सकता । इस प्रकार, मांग के सबूत के अभाव में अभिकथित रूप से अवैध परितोषण द्वारा किसी रकम को मात्र प्रतिग्रहण करना या इसकी बरामदगी अधिनियम की धारा 7, 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन आरोप को सिद्ध करने लिए पर्याप्त नहीं होगा । इसलिए महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि शिकायतकर्ता द्वारा शिकायत का समर्थन न करने या "पक्षद्रोही" हो जाने के कारण उसके द्वारा कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य न देने या शिकायतकर्ता की मृत्यु के कारण या किसी अन्य कारण से शिकायतकर्ता के उपलब्ध न होने के कारण मांग को कैसे साबित किया जा सकता है । इस संबंध में, निर्देश के प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व साक्ष्य अधिनियम की सुसंगत धाराओं की चर्चा करना आवश्यक है ।

अधिनियम के सुसंगत उपबंध

3. आगे अग्रसर होने से पूर्व, अधिनियम के सुसंगत उपबंधों को निर्दिष्ट करना उपयोगी होगा । अधिनियम की धारा 7, 13(1)(घ)(i) और (ii) और धारा 20, जैसी कि वे उनके संशोधनों के पूर्व विद्यमान थी, को नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "**7. लोक सेवक द्वारा पदीय कार्य के लिए वैध पारिश्रमिक से भिन्न परितोषण लिया जाना** – जो कोई लोक सेवक होते हुए या होने की प्रत्याशा रखते हुए वैध पारिश्रमिक से भिन्न किसी प्रकार का भी कोई परितोषण इस बात के करने के लिए हेतु या इनाम के रूप में किसी व्यक्ति से अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए प्रतिगृहीत या अभिप्राप्त करेगा या प्रतिगृहीत करने को सहमत होगा या अभिप्राप्त करने का प्रयत्न करेगा कि वह लोक सेवक अपना कोई पदीय कार्य करे या करने से प्रविरत रहे अथवा किसी व्यक्ति को अपने पदीय कृत्यों के प्रयोग में कोई अनुग्रह या अननुग्रह दिखाए या दिखाने से प्रविरत रहे अथवा केंद्रीय सरकार या किसी राज्य की सरकार या संसद् या किसी राज्य विधान-मंडल में या धारा 2 के खंड (ग) में निर्दिष्ट किसी स्थानीय प्राधिकारी, निगम या सरकारी कंपनी में या किसी लोग सेवक के यहां, चाहे

वह नामित हो या नहीं, किसी व्यक्ति का कोई उपकार या अपकार करे या करने का प्रयत्न करे, वह कारावास से, जिसकी अवधि छह माह से कम नहीं होगी किंतु सात वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से भी दंडित किया जाएगा ।

स्पष्टीकरण – (क) "लोक सेवक होने की प्रत्याशा रखते हुए" यदि कोई व्यक्ति जो किसी पद पर होने की प्रत्याशा न रखते हुए, दूसरों को प्रवंचना से यह विश्वास करा कर कि वह किसी पद पर होने वाला है और यह कि तब वह उनका उपकार करेगा, उससे परितोषण अभिप्राप्त करेगा, तो वह छल करने का दोषी हो सकेगा किंतु वह इस धारा में परिभाषित अपराध का दोषी नहीं है ।

(ख) "परितोषण" – "परितोषण" शब्द से धन संबंध परितोषण तक, या उन परितोषणों तक ही, जो धन में आंके जाने योग्य हैं, निर्बंधित नहीं है ।

(ग) "वैध पारिश्रमिक"– "वैध पारिश्रमिक" शब्द उस पारिश्रमिक तक ही निर्बंधित नहीं है जिसकी मांग कोई लोक सेवक विधि पूर्ण रूप से कर सकता है, किंतु इसके अंतर्गत वह समस्त पारिश्रमिक आता है जिसको प्रतिगृहीत करने के लिए उस सरकार या संगठन द्वारा, जिसकी सेवा में है, उसे अनुज्ञा दी गई है ।

(घ) "करने के लिए हेतुक या इनाम"– वह व्यक्ति जो वह कार्य करने के लिए हेतुक या इनाम के रूप में, जिसे करने का उसका आशय नहीं है, या जिसे करने की स्थिति में वह नहीं है या जो उसने नहीं किया गया है, परितोषण प्राप्त करता है, इस पद के अंतर्गत आता है ।

(ड.) जहां कोई लोक सेवक किसी व्यक्ति को यह गलत विश्वास करने के लिए उत्प्रेरित करता है कि सरकार में उसके असर से उस व्यक्ति को कोई हक अभिप्राप्त हुआ है, और इस प्रकार उस व्यक्ति को इस सेवा के लिए पुरस्कार के रूप में लोक सेवक को धन या कोई अन्य परितोषण देने के लिए उत्प्रेरित करता है, तो यह इस धारा के अधीन लोक सेवक द्वारा किया गया अपराध

होगा ।

* * * *

13. लोक सेवक द्वारा आपराधिक अवचार – (1) कोई लोक सेवक आपराधिक अवचार का अपराध करने वाला कहा जाता है, –

(क) .....

(ख) .....

(ग) .....

(घ) यदि वह –

(i) भ्रष्ट या अवैध साधनों से अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान चीज या धन संबंधी फायदा अभिप्राप्त करता है ; या

(ii) लोक सेवक के रूप में अपनी स्थिति का अन्यथा दुरुपयोग करके अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान चीज या धन संबंधी फायदा अभिप्राप्त करता है ; या

(iii) लोक सेवक के रूप में पद धारण करके किसी व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान चीज या धन संबंधी फायदा बिना किसी लोक हित के अभिप्राप्त करता है ; या

स्पष्टीकरण– इस धारा के प्रयोजनों के लिए "आय के ज्ञात स्रोत" से अभिप्रेत है किसी विधिपूर्ण स्रोत से प्राप्त आय, जिस प्राप्ति की संसूचना, लोक सेवक को तत्समय लागू किसी विधि, नियमों या आदेशों के उपबंधों के अनुसार दे दी गई है ।

* * * *

20. जहां लोक सेवक वैध पारिश्रमिक से भिन्न परितोषण प्रतिगृहीत करता है, वहां उपधारणा – (1) जहां धारा 7 या धारा 11 या धारा 13 की उपधारा (1) के खंड (क) या खंड (ख) के

अधीन दंडनीय अपराध के किसी विचारण में यह साबित कर दिया जाता है कि अभियुक्त व्यक्ति ने किसी व्यक्ति से (वैध पारिश्रमिक से भिन्न) कोई परितोषण या कोई मूल्यवान चीज अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए प्रतिगृहीत या अभिप्राप्त की है अथवा प्रतिगृहीत करने के लिए सहमति दी है या अभिप्राप्त करने का प्रयत्न किया है ; वहां जब तक प्रतिकूल साबित न कर दिया जाए यह उपधारणा की जाएगी कि उसने, यथास्थिति, उस परितोषण या मूल्यवान चीज को ऐसे हेतु या इनाम के रूप में, जैसा धारा 7 में वर्णित है या, यथास्थिति, प्रतिफल के बिना या ऐसे प्रतिफल के लिए, जिसका अपर्याप्त होना वह जानता है, प्रतिगृहीत या अभिप्राप्त किया है अथवा प्रतिगृहीत करने के लिए सहमत हुआ है या अभिप्राप्त करने का प्रयत्न किया है ।

(2) जहां धारा 12 के अधीन या धारा 14 के खंड (ख) के अधीन दंडनीय अपराध के किसी विचारण में यह साबित कर दिया जाता है कि अभियुक्त व्यक्ति ने (वैध पारिश्रमिक से भिन्न) कोई परितोषण या कोई मूल्यवान चीज दी है या देने की प्रस्थापना की है, या देने का प्रयत्न किया है, वहां जब तक प्रतिकूल साबित न कर दिया जाए यह उपधारणा की जाएगी कि उसने, यथास्थिति, उस परितोषण या मूल्यवान चीज को ऐसे हेतु या इनाम के रूप में, जैसा धारा 7 में वर्णित है या, यथास्थिति, प्रतिफल के बिना या ऐसे प्रतिफल के लिए, जिसका अपर्याप्त होना वह जानता हो, दिया है या देने की प्रस्थापना की है या देने का प्रयत्न किया है ।

(3) उपधारा (1) और (2) में किसी बात के होते हुए भी न्यायालय उक्त उपधाराओं में से किसी में निर्दिष्ट उपधारणा करने से इनकार कर सकेगा यदि पूर्वोक्त परितोषण या चीज, उसकी राय में, इतनी तुच्छ है कि भ्रष्टाचार का कोई निष्कर्ष उचित रूप से नहीं निकाला जा सकता ।"

4. अधिनियम की धारा 7 के संघटक निम्नलिखित हैं :–

(i) अभियुक्त अवश्य लोक सेवक या लोक सेवक की प्रत्याशा रखने वाला होना चाहिए ;

(ii) कोई पदीय कार्य करने या करने से प्रविरत रहने अथवा कोई अनुग्रह या अननुग्रह दिखाने के लिए हेतु या इनाम के रूप में ;

(iii) अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए ;

(iv) वैध पारिश्रमिक से भिन्न किसी प्रकार का कोई परितोषण ;

(v) किसी व्यक्ति से प्रतिगृहीत या अभिप्राप्त करने या प्रतिगृहीत करने के लिए सहमत होने या अभिप्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए ।

5. अधिनियम की धारा 13(1)(घ) के निम्नलिखित संघटक हैं जिन्हें किसी लोक सेवक की दोषिता को सिद्ध करने से पूर्व साबित किया जाना चाहिए, अर्थात् :–

(i) अभियुक्त अवश्य एक लोक सेवक होना चाहिए ;

(ii) भ्रष्ट या अवैध साधनों से अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान चीज या धन संबंधी फायदा अभिप्राप्त करता है ; या

लोक सेवक के रूप में अपनी स्थिति का दुरुपयोग करके अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान चीज या धन संबंधी फायदा अभिप्राप्त करता है ; या

लोक सेवक के रूप में पद धारण करके किसी व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान चीज या धन संबंधी फायदा बिना किसी लोक हित के अभिप्राप्त करता है ; या

(iii) धारा 13(1)(घ) के अधीन अपराध सिद्ध करने के लिए यह अपेक्षित नहीं है कि मूल्यवान चीज या धन संबंधी फायदा हेतु या इनाम के रूप में प्राप्त किया गया हो ;

(iv) प्रतिगृहीत करने के लिए सहमत होना या अभिप्राप्त करने का प्रयत्न करना धारा 13(1)(घ) के अंतर्गत नहीं आता है ;

(v) किसी मूल्यवान चीज या धनीय फायदे का मात्र प्रतिग्रहण इस

उपबंध के अधीन अपराध नहीं है ;

(vi) इसलिए इस उपबंध के अधीन अपराध सिद्ध करने के लिए वास्तविक अभिप्राप्ति होनी चाहिए ;

(vii) चूंकि विधान-मंडल ने दो भिन्न अभिव्यक्तियां अर्थात् "अभिप्राप्त करता है" या "प्रतिगृहीत करता है" प्रयुक्त की हैं इसलिए इन दोनों के बीच फर्क को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए ।

6. **सुभाष प्रभात सोनवणे** बनाम **गुजरात राज्य**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया था कि कोई अन्य साक्ष्य न होते हुए मात्र धन का प्रतिग्रहण अभियुक्त को अधिनियम की धारा 13(1)(घ) के अधीन दोषसिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा । अधिनियम की धारा 7 और धारा 13(1)(क) और (ख) में विधान-मंडल ने विनिर्दिष्ट रूप से "प्रतिगृहीत करता है" या "अभिप्राप्त करता है" शब्द प्रयुक्त किया है । इसके प्रतिकूल, धारा 13 की उपधारा (1)(घ) में प्रयुक्त भाषा में अंतर है और विधान-मंडल ने "प्रतिगृहीत करता है" शब्द को हटा दिया है और "अभिप्राप्त करता है" शब्द पर बल दिया है । धारा 13(1)(घ) के उपखंडों (i), (ii) और (iii) में "अभिप्राप्त करता है" शब्द पर बल दिया गया है । अत: अभिलेख पर अवश्य यह साक्ष्य होना चाहिए कि अभियुक्त ने भ्रष्ट या अवैध साधनों से या लोक सेवक के रूप में अपनी स्थिति का दुरुपयोग करके अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान चीज या धन संबंधी फायदा अभिप्राप्त किया है या उसने किसी लोक हित के बिना किसी व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान चीज या धन संबंधी फायदा अभिप्राप्त किया है । **राम कृष्ण** बनाम **दिल्ली राज्य**[2] वाले मामले के प्रतिनिर्देश करके यह भी मत व्यक्त किया गया था कि अधिनियम की धारा 13(1)(क) और (ख) के प्रयोजनार्थ :–

"यह पर्याप्त है कि यदि कोई व्यक्ति लोक सेवक के रूप में अपनी स्थिति का दुरुपयोग करके अनुग्रह या अननुग्रह दिखाने के

---

[1] (2002) 5 एस. सी. सी. 86.

[2] ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 476.

लिए कोई धन संबंधी फायदा हेतु या इनाम की बात को पूरी तरह से विचार में लाए बिना अभिप्राप्त करता है ।"

7. इसके अतिरिक्त, अधिनियम की धारा 20 के अधीन कानूनी उपधारणा धारा 7 या धारा 11 अथवा धारा 13 की उपधारा (1) के खंड (क) और (ख) के अधीन दंडनीय अपराध के लिए उपलब्ध है न कि धारा 13 की उपधारा (1) के खंड (घ) के अधीन दंडनीय अपराध के लिए ।

8. **सी. के. दामोदरन नायर** बनाम **भारत सरकार**[1] वाले मामले का भी अवलंब लिया जा सकता है । वह मामला भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 (सुविधा के लिए 'अधिनियम, 1947') के अधीन था । अधिनियम की धारा 7 के अधीन आरोप पर मत व्यक्त करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अभियोजन पक्ष के लिए यह साबित करना अपेक्षित था कि :–

(i) अपीलार्थी तात्विक समय पर एक लोक सेवक था ;

(ii) अपीलार्थी ने वैध परितोषण से भिन्न परितोषण प्रतिगृहीत या अभिप्राप्त किया था ; और

(iii) परितोषण अवैध प्रयोजन के लिए था ।

"प्रतिगृहीत करता है" अभिव्यक्ति पर चर्चा करते हुए यह मत व्यक्त किया गया था कि "प्रतिगृहीत करता है" "सहमत मन से" लेना या प्राप्त करना अभिप्रेत है । सम्मति को न केवल पूर्व सहमति होने का साक्ष्य प्रस्तुत करके सिद्ध किया जा सकता है अपितु ऐसी पूर्व सहमति के सबूत के बिना स्वयमेव उस संव्यवहार की परिवर्ती परिस्थितियों से भी सिद्ध किया जा सकता है । यदि किसी लोक सेवक से इस प्रत्याशा और आशा से जानकारी होना कि भविष्य में यदि आवश्यकता हुई तो उससे कुछ पदीय अनुग्रह मिल सकेगा, स्वेच्छा से कोई परितोषण देता है और यदि लोक सेवक इच्छा से ऐसा परितोषण लेता है या प्राप्त करता है, तो यह निश्चित रूप से "प्रतिग्रहण" की कोटि में आएगा । अत: इसे विधि की एक निरपेक्ष प्रतिपादना नहीं कहा जा सकता कि किसी पूर्विक मांग के

---

[1] (1997) 9 एस. सी. सी. 477.

"प्रतिग्रहण" नहीं हो सकता । तथापि, जहां तक अधिनियम, 1947 की धारा 5(2) के साथ पठित धारा 5(1)(घ) के अधीन अपराध का संबंध है, स्थिति भिन्न होगी । उक्त धारा के अधीन अभियोजन पक्ष को यह साबित करना होता था कि अभियुक्त ने भ्रष्ट या अवैध साधनों से या लोक सेवक के रूप में अन्यथा अपनी स्थिति का दुरुपयोग करके मूल्यवान चीज या धन संबंधी फायदा "अभिप्राप्त" किया था और वह भी अधिनियम, 1947 की धारा 4(1) के अधीन कानूनी उपधारणा की सहायता के बिना क्योंकि यह उपधारणा केवल अधिनियम, 1947 की धारा 5(1)(क) और (ख) के अधीन अपराधों के संबंध में उपलब्ध थी न कि धारा 5(1)(ग), (घ) या (ड.) के अधीन अपराधों के लिए । इस न्यायालय के अनुसार, "अभिप्राप्त" से अनुरोध या प्रयास के परिणामस्वरूप (कोई चीज) प्राप्त या अर्जित करना अभिप्रेत है । अभिप्राप्त करने के मामले में, पहल उस व्यक्ति की होती है जो प्राप्त करता है और उस संदर्भ में उससे कोई मांग या अनुरोध भारतीय दंड संहिता की धारा 161 के अधीन अपराध, जिसे या तो "प्रतिग्रहण" या "अभिप्राप्ति" के सबूत द्वारा सिद्ध किया जा सकता है, के विपरीत अधिनियम, 1947 की धारा 5(1)(घ) के अधीन अपराध के लिए एक प्राथमिक अध्यपेक्षा है ।

क्या तीनों विनिश्चयों में विरोध है ?

9. निर्देश के आदेश का परिशीलन करने पर हम यह पाते हैं कि जब शिकायतकर्ता का प्राथमिक साक्ष्य अनुपलब्ध है तो अधिनियम की धारा 13(1)(घ) के साथ पठित धारा 7 और धारा 13(2) के अधीन दोषसिद्धि करने के लिए आवश्यक सबूत की प्रकृति और गुणवत्ता के संबंध में तीन न्यायाधीशों की एक न्यायपीठ द्वारा यह देखा गया है कि **बी. जयराज** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[1], **पी. सत्यनारायण मूर्ति** बनाम **जिला पुलिस निरीक्षक, आंध्र प्रदेश राज्य**[2] वाले मामलों में इस न्यायालय की दो तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चयों का **एम. नरसिंग राव** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[3] वाले मामले में के विनिश्चय से विरोध

---

[1] (2014) 13 एस. सी. सी. 55.

[2] (2015) 10 एस. सी. सी. 152.

[3] (2001) 1 एस. सी. सी. 691.

है । इस प्रकार, शिकायतकर्ता का उसकी मृत्यु या अनुपलब्धता के कारण उसके प्राथमिक साक्ष्य के अभाव में क्या अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए अन्य साक्ष्य के आधार पर किसी लोक सेवक की अधिनियम की धारा 13(1)(घ) के साथ पठित धारा 7 और धारा 13(2) के अधीन आपराधिता/दोषिता का आनुमानिक निष्कर्ष निकालना अनुज्ञेय है, वह विशुद्ध प्रश्न है जो इस संविधान पीठ द्वारा विचाराधीन है ।

मामलों की तिकड़ी

10. आगे अग्रसर होने से पूर्व, निर्देशित आदेश में निर्दिष्ट निर्णयों पर विस्तार से विचार करना उपयोगी होगा ।

(क) **बी. जयराज** वाला मामला

(i) **बी. जयराज** वाले मामले में शिकायतकर्ता, अभि. सा. 2 ने अधिनियम की धारा 7 और धारा 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन नहीं किया था । उस मामले में शिकायतकर्ता ने शिकायत करने की बात से इनकार किया और अपने अभिसाक्ष्य में यह कथन किया था कि अभियुक्त को 250/- रुपए की रकम इस अनुरोध के साथ दी गई थी कि उसे उसकी अनुज्ञप्ति के नवीकरण के लिए फीस के रूप में बैंक में जमा कर दी जाए । शिकायतकर्ता अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन करने का इच्छुक नहीं था । इसलिए शिकायतकर्ता को "पक्षद्रोही" घोषित किया गया था । इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि जहां तक अभियुक्त द्वारा रिश्वत के लिए की गई मांग का संबंध है, शिकायतकर्ता ने अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन नहीं किया था और अभियोजन पक्ष ने किसी ऐसे अन्य साक्षी की परीक्षा नहीं की थी जो उस समय मौजूद था जब शिकायतकर्ता द्वारा अभियुक्त को अभिकथित रूप से धन सौंपा गया था, जिससे यह साबित किया जा सके कि वह धन अभियुक्त द्वारा की गई किसी मांग के अनुसरण में सौंपा गया था । जब शिकायतकर्ता ने उस बात से इनकार किया है जो उसने

आरंभ में शिकायत में कही थी और यह साबित करने के लिए किसी अन्य साक्ष्य के अभाव में कि अभियुक्त ने कोई मांग की थी, इस मामले में शिकायतकर्ता के साक्ष्य और शिकायत (प्रदर्श पी-11) का इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अवलंब नहीं लिया जा सकता कि उपरोक्त सामग्री से अभियुक्त द्वारा अभिकथित रूप से की गई मांग का सबूत मिलता है । एकमात्र अन्य उपलब्ध सामग्री उस मामले में अभियुक्त के कब्जे से बरामद दूषित करंसी नोट थे । यह मत व्यक्त किया गया था कि मांग के सबूत के बिना अभियुक्त के कब्जे में करंसी नोटों का होना और बरामदगी होने से धारा 7 के अधीन अपराध सिद्ध नहीं होगा । इसलिए जहां तक अधिनियम की धारा 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन अपराध का संबंध है, लोक सेवक द्वारा कोई मूल्यवान चीज या धन संबंधी फायदा अभिप्राप्त करने के लिए अवैध साधनों का प्रयोग करना या अपनी स्थिति का दुरुपयोग करना सिद्ध किया गया अभिनिर्धारित नहीं किया गया था ।

(ii) यह भी मत व्यक्त किया गया था कि अधिनियम की धारा 7 के अधीन अपराध के संबंध में अधिनियम की धारा 20 के अधीन उपधारणा भी नहीं की जा सकती है । ऐसी उपधारणा केवल तब की जा सकती है यदि अवैध परितोषण के प्रतिग्रहण का सबूत हो जिसके लिए मांग का सबूत होना अत्यावश्यक है और क्योंकि उक्त मामले में इसका अभाव था इसलिए उन प्राथमिक तथ्यों का पूरी तरह से अभाव था जिनके आधार पर धारा 20 के अधीन वैध उपधारणा की जा सकती थी । परिणामतः, दोषसिद्धि को अपास्त किया गया और अपील मंजूर की गई ।

(ख) **पी. सत्यनारायण मूर्ति वाला मामला**

(i) **पी. सत्यनारायण मूर्ति** वाले मामले में तथ्य यह था कि अधिनियम की धारा 7 और 13(1)(घ)(i) और (ii) तथा धारा

13(2) के अधीन आरोपों के विचारण के दौरान अभियोजन पक्ष ने सात साक्षियों की परीक्षा की थी और आरोपों के समर्थन में दस्तावेजी साक्ष्य भी प्रस्तुत किया था । किंतु उस मामले में शिकायतकर्ता की इससे पूर्व मृत्यु हो गई थी और इसलिए अभियोजन पक्ष द्वारा उसकी परीक्षा नहीं की जा सकी थी । शिकायतकर्ता के अनुसार, वह लोक सेवक द्वारा मांगे गए अवैध परितोषण का संदाय करने के लिए अनिच्छुक था और इसलिए उप पुलिस अधीक्षक, भ्रष्टाचार निरोध ब्यूरो, कुरनूल के पास शिकायत फाइल की थी और उक्त मामले में अपीलार्थी के विरुद्ध कार्रवाई की ईप्सा की थी ।

(ii) इस न्यायालय ने **बी. जयराज** (उपर्युक्त) वाले मामले का अवलंब लेकर यह मत व्यक्त किया कि मांग के सबूत के बिना अभियुक्त के कब्जे में मात्र करेंसी नोटों का होना और उनकी बरामदगी से अधिनियम की धारा 7 तथा धारा 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन अपराध सिद्ध नहीं होगा । ऐसा इसलिए है क्योंकि अधिनियम की धारा 7 तथा धारा 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन अपराध के लिए मांग का सबूत होना अत्यावश्यक है या एक अपरिहार्य आवश्यकता और आदेश है । अवैध परितोषण के प्रतिग्रहण का सबूत केवल तब हो सकता है यदि मांग का सबूत हो । अवैध परितोषण की मांग का यह सबूत अधिनियम की धारा 7 तथा धारा 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन अपराध की मुख्य बात है और इसके अभाव में आरोप तद्द्वारा असफल हो जाएगा । दूसरे शब्दों में, मांग के सबूत से असंबद्ध अवैध परितोषण के द्वारा किसी रकम का मात्र प्रतिग्रहण या बरामदगी अधिनियम की उक्त धाराओं के अधीन आरोप को सिद्ध करने के लिए स्वयमेव पर्याप्त नहीं होगा । यह मत व्यक्त किया गया था कि मांग के सबूत के अभाव में अधिनियम की धारा 20 के अधीन विधिक उपधारणा भी उद्भूत नहीं होगी ।

(iii) यह भी मत व्यक्त किया गया था कि उक्त मामले में

अभिलेख पर की सामग्री पर जब चर्चा किए गए विधिक सिद्धांत की कसौटी के आधार पर विचार किया जाए, तो कोई संदेह नहीं रह जाता है कि अभियोजन पक्ष उक्त मामले में अवैध परितोषण की मांग को असंदिग्ध रूप से साबित करने में असफल रहा था और इस प्रकार अपीलार्थी का अधिनियम की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन अभियोजन और दोषसिद्धि संधार्य नहीं थी ।

(iv) **पी. सत्यनारायण मूर्ति** (उपर्युक्त) वाले मामले में दो मामलों अर्थात् **ए. सुबैर** बनाम **केरल राज्य**[1] और **केरल राज्य** बनाम **सी. पी. राव**[2] वाले दो मामलों के प्रतिनिर्देश किया गया था । पूर्वोक्त दो मामलों में से पहले मामले में यह मत व्यक्त किया गया था कि अभियोजन पक्ष को अधिनियम की धारा 7 और 13(1)(घ) के अधीन आरोप को किसी दांडिक अपराध की भांति सिद्ध करना होता है और अभियुक्त को तब तक निर्दोष समझा जाना चाहिए जब तक अवैध परितोषण की मांग और प्रतिग्रहण के उचित सबूत द्वारा अन्यथा सिद्ध नहीं किया जाता है जो कि दोषसिद्धि अभिलिखित करने के लिए साबित किए जाने के लिए आवश्यक महत्वपूर्ण संघटक हैं । **सी. पी. राव** (उपर्युक्त) वाले मामले में, जो कि **पी. सत्यनारायण मूर्ति** (उपर्युक्त) वाले मामले में निर्दिष्ट दो मामलों में से दूसरा है, इस न्यायालय द्वारा यह मत व्यक्त किया गया था कि मात्र बरामदगी से स्वयंमेव अभियुक्त के विरुद्ध आरोप साबित नहीं हो जाता है । रिश्वत की रकम को साबित करने के लिए या यह दर्शित करने के लिए कि अभियुक्त ने यह जानते हुए धन स्वेच्छा से स्वीकार किया था कि यह रिश्वत है, किसी साक्ष्य के अभाव में दोषसिद्धि कायम नहीं रखी जा सकती ।

(v) **बी. जयराज और पी. सत्यनारायण मूर्ति** (उपर्युक्त) वाले उपरोक्त दोनों निर्णय तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा

---

[1] (2009) 6 एस. सी. सी. 587.

[2] (2011) 6 एस. सी. सी. 450.

दिए गए हैं और निर्देशित आदेश में यह कहा गया है कि वे **एम. नरसिंग राव** वाले मामले में के निर्णय के विरोध में हैं, जो कि इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दिया गया निर्णय ही है ।

(ग) **एम. नरसिंग राव वाला मामला**

(i) **एम. नरसिंग राव** वाले मामले में न्यायमूर्ति के. टी. थॉमस ने न्यायपीठ की ओर से निर्णय लिखते हुए यह प्रश्न उठाया कि क्या तथ्यात्मक उपधारणा पर विधिक उपधारणा आधारित हो सकती है । यह मत व्यक्त किया गया था कि तथ्यात्मक उपधारणा वैवेकिक है और न्यायालय द्वारा विवेक के प्रयोग पर निर्भर करती है जबकि विधिक उपधारणा अनिवार्य रूप से की जानी चाहिए । यह भी मत व्यक्त किया गया कि अधिनियम की धारा 20 में एक विधिक उपधारणा परिकल्पित है जिससे अभिप्रेत है कि कतिपय तथ्यों के आधार पर न्यायालय अन्य तथ्यों की "उपधारणा करेगा" । किंतु जब प्राथमिक तथ्य या विवाद्यक तथ्य को सिद्ध करने के लिए कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है, तो न्यायालय को उक्त प्राथमिक तथ्य पर पहुंचने के लिए अन्य तथ्यों से निकाले गए निष्कर्ष की प्रक्रिया पर निर्भर करना होता है । अत: अंतर्वलित प्रश्न का सार यह था कि क्या निकाले गए निष्कर्ष का प्रयोग अधिनियम की धारा 20 में परिकल्पित अनिवार्य उपधारणा के लिए एक आधार के रूप में किया जा सकता है ।

(ii) उक्त मामले में, विशेष न्यायाधीश के समक्ष विचारण के दौरान अभियोजन पक्ष के दो साक्षी अर्थात् अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 पलट गए और उस मामले में अपीलाथी को कोई रिश्वत देने की बात से इनकार किया और इस बात से भी इनकार किया कि अपीलार्थी ने रिश्वत की रकम की मांग की थी । इस प्रकार, दोनों साक्षियों को "पक्षद्रोही" घोषित किया गया था । उस मामले में अपीलार्थी के अनुसार, दूषित करेंसी

नोट जबरदस्ती उसकी जेब में ठूंस दिए गए थे और इसके समर्थन में उसने प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से दो साक्षियों की परीक्षा कराई थी । विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों ने प्रतिरक्षा साक्षियों पर पूर्ण रूप से अविश्वसनीय माना और पाया कि अभि. सा. 1 और 2 को अपीलार्थी द्वारा अपने पक्ष में कर लिया गया था और इसीलिए वे अन्वेषण अधिकारी द्वारा और बाद में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा अभिलिखित किए गए अपने स्वयं के वृत्तांत से पलट गए थे ।

(iii) उक्त मामले में, इस न्यायालय ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 4 में यथा परिभाषित "उपधारणा कर सकेगा" और "उपधारणा करेगा" अभिव्यक्तियों की विस्तृत चर्चा की । इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि "सबूत" शब्द से ऐसा साक्ष्य अभिप्रेत है जो एक विशिष्ट निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए एक युक्तियुक्त व्यक्ति को प्रेरित करेगा । यह भी मत व्यक्त किया गया कि उपधारणा अन्य साबित तथ्यों से निकाले गए कतिपय तथ्यों का निष्कर्ष है । न्यायालय केवल बुद्धिमान तर्कणा की प्रक्रिया को लागू कर रहा है जो एक समझदार व्यक्ति का मस्तिष्क इसी प्रकार की परिस्थितियों में करेगा । उपधारणा अन्य तथ्यों से निकाला गया अंतिम निष्कर्ष नहीं है । किंतु यह अंतिम भी हो सकता है यदि यह बाद में अछूता रहता है । साक्ष्य विधि में उपधारणा सबूत के भार को स्थानांतरित करने के प्रक्रम को इंगित करने वाला नियम है । कतिपय तथ्य या तथ्यों से न्यायालय एक निष्कर्ष निकाल सकता है और वह तब तक ऐसा निष्कर्ष बना रहेगा जब तक उसे या तो नासाबित या त्यक्त नहीं कर दिया जाता है । यह अभिनिर्धारित किया गया कि एक निष्कर्ष पर पहुंचने के प्रयोजनार्थ न्यायालय तथ्यात्मक उपधारणा का अवलंब ले सकता है । जब तक उपधारणा को नासाबित या त्यक्त या इसका खंडन नहीं किया जाता है, न्यायालय उपधारणा को सबूत की कोटि में आने वाला समझ सकता है । तथापि, इस

न्यायालय ने यह कहते हुए सचेत किया कि उक्त उपधारणा का प्रयोग फिर से एक अन्य वैवेकिक उपधारणा करना तब तक असुरक्षित हो सकता है जब तक कानूनी बाध्यता न हो । **सुरेश बुधरमल कलानी** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले का अवलंब लिया जिसमें यह मत व्यक्त किया गया था कि उपधारणा केवल तथ्यों से – अधिसंभाव्य और तर्कसम्मत कारण की प्रक्रिया द्वारा की जा सकती है न कि अन्य उपधारणाओं से ।

(iv) इस न्यायालय ने उक्त मामले में सिद्ध किए गए तथ्यों के आधार पर यह मत व्यक्त किया कि अपीलार्थी की जेब में दूषित करेंसी नोटों के पता चलने से पूर्व और पश्चात् की परिस्थितियों ने न्यायालय की यह तथ्यात्मक उपधारणा करने में मदद की थी कि अपीलार्थी ने जान बूझकर दूषित करेंसी नोट प्राप्त किए थे ।

(v) **हजारी लाल** बनाम **राज्य (दिल्ली प्रशासन)**[2] वाले मामले का अवलंब लेकर इस न्यायालय ने उस मामले के तथ्यों के आधार पर यह कारण दिया कि यह दर्शित करने के लिए प्रत्यक्ष साक्ष्य के अभाव में कि लोक सेवक ने रिश्वत की मांग की थी या इसे स्वीकार किया था, अधिनियम, 1947 की धारा 4 (अधिनियम की धारा 20) के अधीन चिह्नित करेंसी नोटों की मात्र बरामदगी के आधार पर कोई उपधारणा नहीं की जा सकती । **हजारी लाल** वाले मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ की ओर से निर्णय लिखते हुए न्यायमूर्ति ओ. चिन्नप्पा रेड्डी ने यह भी मत व्यक्त किया कि यह आवश्यक नहीं है कि किसी धन का सक्रांत किया जाना प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा ही किया जाना चाहिए । क्योंकि इसे पारिस्थितिक साक्ष्य द्वारा भी साबित किया जा सकता है । न्यायालय साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के अधीन ऐसे किसी तथ्य

---

[1] (1998) 7 एस. सी. सी. 337.

[2] [1981] 1 उम. नि. प. 464 = (1980) 2 एस. सी. सी. 390.

के अस्तित्व के होने के बारे में उपधारणा कर सकता है जिसकी वह विशिष्ट मामले के तथ्यों से उनके संबंध में प्राकृतिक घटनाओं, मानवीय आचरण और लोक तथा प्राइवेट कारबार के सम्यक् अनुक्रम को ध्यान में रखते हुए घटित होने की संभावना समझता हो । **हजारी लाल** वाले मामले में अभियुक्त ने अपनी जेब से करेंसी नोट निकाले और उन्हें दीवार के पार फेंक दिया और उक्त नोट अभि. सा. 3 से कुछ मिनट पहले अभिप्राप्त किए गए थे जिसके कब्जे में नोटों का होना दर्शित किया गया था । इसलिए अधिनियम, 1947 की धारा 4(1) के अधीन उपधारणा तुरंत लागू की गई थी । यद्यपि यह एक खंडनीय उपधारणा थी, उक्त मामले में इस उपधारणा का खंडन करने के लिए कोई सामग्री नहीं थी । अत: अभियुक्त को अपराध का दोषी अभिनिर्धारित किया गया था ।

(vi) इस प्रकार, **एम. नरसिंग राव** वाले मामले में इस न्यायालय की एक तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **हजारी लाल** वाले मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ के तर्काधार का अनुमोदन किया । **एम. नरसिंग राव** वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि जब एक बार यह सिद्ध हो जाता है कि परितोषण की मांग की गई थी या संदाय किया गया था या प्रतिग्रहण किया गया था और जब एक बार आधारभूत तथ्य साबित हो गए थे, तो अवैध परितोषण का संदाय या प्रतिग्रहण की उपधारणा लागू होती थी । चूंकि अभियुक्त द्वारा उक्त तथ्य संबंधी उपधारणा का खंडन नहीं किया गया था, मांग संबंधी तथ्य साबित हो गया था । परिणामत:, विधिक उपधारणा की जानी चाहिए थी कि उक्त परितोषण अधिनियम की धारा 20 के अनुसार कोई कार्य करने या करने से प्रविरत रहने के लिए "हेतु या इनाम" के रूप में प्रतिगृहीत किया गया था ।

(vii) उक्त मामले में यह भी मत व्यक्त किया गया था कि

अभियोजन पक्ष ने यह साबित किया है कि अपीलार्थी ने परितोषण प्रतिगृहीत किया था । अत: यह न्यायालय यह विधिक उपधारणा करने के लिए विधिक रूप से आबद्धकर है कि ऐसा परितोषण लोक कर्तव्य करने के लिए इनाम के रूप में प्रतिगृहीत किया गया था । यह भी मत व्यक्त किया गया था कि प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से परीक्षा कराए गए दो साक्षी इन की गई उपधारणों का खंडन नहीं कर सके थे और इसलिए इस न्यायालय ने अपील खारिज कर दी और अभियुक्त को दोषी अभिनिर्धारित किया ।

11. निर्देशित आदेश में एक अन्य निर्णय को निर्दिष्ट किया गया है जो ऐसा मामला है जो अधिनियम, 1947 के अधीन उद्भूत हुआ था और वह **किशन चंद मंगल** बनाम **राजस्थान राज्य**[1] वाला मामला है । उक्त मामले में, यह मत व्यक्त किया गया था कि यह एक छापा मारने का मामला था जहां शिकायतकर्ता ने एक रिश्वत दी थी और उक्त रिश्वत की मांग भी मौजूद थी । यह मत व्यक्त किया गया कि अभिलेख पर साक्ष्य, उदाहरण के लिए, शिकायतकर्ता का भ्रष्टाचार निरोध ब्यूरो में जाना, उसके द्वारा करेंसी नोट प्रस्तुत किया जाना और विभाग के वरिष्ठ अधिकारी द्वारा छापा मारने का प्रबंध किया जाना और छापामार दल का अभियुक्त के मकान पर जाना, इससे यह उपदर्शित होता है कि अभियुक्त द्वारा रकम के लिए पहले से मांग की गई थी और यह पारिस्थितिक साक्ष्य था ।

12. पूर्वोक्त मामलों में, जो सामान्य बात है वह यह है कि शिकायतकर्ता साक्ष्य देने के लिए उपलब्ध नहीं था और इसलिए प्रत्यक्ष साक्ष्य का अभाव था । **बी. जयराज** वाले मामले में शिकायतकर्ता ने अभियोजन पक्ष का समर्थन नहीं किया था और इसलिए "पक्षद्रोही" घोषित किया गया था ; **पी. सत्यनारायण मूर्ति** वाले मामले में शिकायतकर्ता की सात साक्षियों की परीक्षा करने से पूर्व ही मृत्यु हो गई थी जबकि **एम. नरसिंग राव** वाले मामले में अभियोजन साक्षी "पक्षद्रोही"

---

[1] [1983] 2 उम. नि. प. 269 = (1982) 3 एस. सी. सी. 466.

हो गए थे । इसलिए **बी. जयराज** और **पी. सत्यनारायण मूर्ति** वाले मामले में इस न्यायालय ने अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया था जबकि **एम. नरसिंग राव** वाले मामले में दो साक्षियों को "पक्षद्रोही" घोषित किए जाने के बावजूद तथ्यों के आधार पर यह पाया गया था कि उस मामले में अभियुक्त ने दूषित करेंसी नोट जान बूझकर प्राप्त किए थे और इसलिए इस न्यायालय ने अभियुक्त की दोषसिद्धि को कायम रखा था । यह मत व्यक्त किया गया था कि दो अभियोजन साक्षियों के "पक्षद्रोही" हो जाने के बावजूद अन्य साक्ष्य द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि अवैध परितोषण की मांग की गई थी । चूंकि आधारभूत तथ्यों को साबित किया गया है, इसलिए परितोषण के संदाय या प्रतिग्रहण की उपधारणा लागू होती है, जिसका खंडन नहीं किया गया था । परिणामत:, अधिनियम की धारा 20 के अधीन विधिक उपधारणा भी की गई थी और वह अखंडनीय रही थी । उपर्युक्त पृष्ठभूमि में निर्देश बृहत्तर न्यायपीठ को और अंततोगत्वा संविधान न्यायपीठ को किया गया है ।

दलीलें

13. हमने अपीलार्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल और अन्य विद्वान् काउंसेलों तथा प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् अपर महा-सालिसिटर और अन्य काउंसेलों को सुना ।

14. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री एस. नागमुथु ने अपनी दलीलों के दौरान निम्नलिखित दलीलें दीं :

(i) विचार करने के लिए प्रश्न को उचित रूप से विरचित नहीं किया गया है और इसलिए इस न्यायालय द्वारा उचित प्रश्न को पुन: विरचित किया जाए । उन्होंने दलील दी कि प्रसामान्यत:, धारा 7, 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन मामले में शिकायतकर्ता से यह प्रत्याशा की जाती है वह पहले से की गई मांग और लोक सेवक द्वारा बाद में अवैध परितोषण प्राप्त या प्रतिग्रहण करने के बारे में कथन करे । किंतु यदि उसका साक्ष्य उपलब्ध नहीं है, तो यह विवक्षा की जाएगी कि पूर्वोक्त दोनों तथ्यों को साबित करने के लिए उक्त साक्षी का कोई प्रत्यक्ष मौखिक साक्ष्य नहीं है । संविधान

न्यायपीठ के समक्ष विवाद्यक यह है कि क्या पूर्वोक्त दोनों तथ्यों को प्रत्यक्ष साक्ष्य के अभाव में किसी अन्य ढंग से साबित किया जा सकता है जिससे लोक सेवक की दोषिता को सिद्ध किया जा सके । इस संबंध में, हमारा ध्यान अधिनियम की धारा 7, 13(1)(घ)(i) और (ii) तथा 20 की ओर दिलाया गया, जैसी कि वे अधिनियम के संशोधन से पूर्व विद्यमान थी । अधिक जोर "प्रतिगृहीत करता है" या "अभिप्राप्त करता है" या "प्रतिगृहीत करने के लिए सहमत होता है" या "अभिप्राप्त करने का प्रयत्न करता है" अभिव्यक्ति पर दिया गया है ।

(ii) अधिनियम की धारा 20, जो हेतु या इनाम के संबंध में विधिक उपधारणा करने के संबंध में है, के संदर्भ में प्रतिग्रहण या अभिप्राप्ति के बीच फर्क पर विस्तृत दलीलें दी गईं । यह दलील दी गई कि दोनों दशाओं में एक प्रस्थापना का प्रतिग्रहण होता है । यदि प्रस्थापना रिश्वत देने वाले से लोक सेवक द्वारा कोई मांग किए बिना उत्पन्न होती है और लोक सेवक केवल प्रस्थापना को स्वीकार करता है और अवैध परितोषण प्राप्त करता है, तो अधिनियम की धारा 7 के अनुसार यह एक प्रतिग्रहण का मामला है । प्रतिग्रहण के मामले में, जैसा कि अधिनियम की धारा 7 में उपबंध किया गया है, लोक सेवक द्वारा कोई पहले से मांग किए जाने की आवश्यकता नहीं है ।

(iii) दूसरी ओर, अभिप्राप्ति के मामले में प्रस्थापना लोक सेवक से उत्पन्न होती है अर्थात् वह एक मांग करता है और रिश्वत देने वाला प्रस्थापना का स्वीकार करता है तथा मांग किए गए परितोषण का संदाय करता है, जो उसके पश्चात् लोक सेवक द्वारा प्राप्त किया जाता है । इस प्रकार, अभिप्राप्ति के मामले में लोक सेवक द्वारा अवैध परितोषण के लिए पहले से की गई मांग होती है और ऐसे मामले में भी अवैध परितोषण की मांग और प्राप्ति दोनों को साबित करना होता है । लोक सेवक का यह कृत्य धारा 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन एक अपराध है और इसलिए धारा 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन अपराध के लिए लोक सेवक द्वारा

पहले से मांग किया जाना अत्यावश्यक है । इस संबंध में, **बी. जयराज** ; **पी. सत्यनारायण मूर्ति** ; **किशन चंद मंगल** ; **सी. के. दामोदरन नायर** और **किशन चंद्र** (उपर्युक्त) वाले मामलों में इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया गया ।

(iv) अत: यदि लोक सेवक द्वारा की गई मांग के पश्चात् अवैध परितोषण किया जाता है, तो धारा 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन अभिप्राप्ति का कार्य पूर्ण हो जाता है । फिर "हेतु या इनाम" को साबित करना आवश्यक नहीं है क्योंकि यह धारा 13(1)(घ)(i) और (ii) के लिए अप्रासंगिक है । इसलिए अधिनियम की धारा 20 का संबध धारा 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन अपराध के लिए की जाने वाली विधिक उपधारणा से नहीं है ।

(v) यह भी दलील दी गई कि अभिप्राप्ति के मामले में, मांग के अनुसरण में परितोषण की प्राप्ति को भी विवाद्यक तथ्य के रूप में साबित किया जाना आवश्यक है । परितोषण की प्राप्ति के सबूत के अभाव में मात्र मांग से धारा 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन अपराध का गठन नहीं होता है । किंतु यदि मांग का प्रयत्न के रूप में अर्थान्वयन किया जाता है, तब अभिप्राप्त करने का ऐसा प्रयत्न अधिनियम की धारा 7 के अधीन एक अपराध है ।

(vi) इसके अतिरिक्त, धारा 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन अभिप्राप्ति को (i) मौखिक साक्ष्य ; (ii) दस्तावेजी साक्ष्य ; (iii) कानूनी उपधारणा ; और (iv) पारिस्थितिक साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता है । वह व्यक्ति जिससे मांग की गई थी, मौखिक साक्ष्य दे सकता है और यह साक्ष्य अधिनियम की धारा 59 और 60 के अधीन प्रत्यक्ष साक्ष्य है । इसके अतिरिक्त, यदि कोई अन्य व्यक्ति मांग करने के समय पर मौजूद था, तो उसका मौखिक साक्ष्य भी प्रत्यक्ष साक्ष्य होगा और वह मांग को साबित करने के लिए पर्याप्त हो सकेगा । यदि वह व्यक्ति जिससे मांग की गई थी, या तो मर गया है या साक्ष्य देने के लिए अनुपलब्ध है या "पक्षद्रोही" हो गया है और मांग के तथ्य का कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है, तब किसी अन्य साक्ष्य के अभाव में अभियुक्त दोषमुक्ति का हकदार है ।

तथापि, यदि मांग का किसी दस्तावेज जैसे मांग ईमेल, पत्र या किसी अन्य संसूचना द्वारा की गई हो, द्वारा साक्ष्य दिया जाना है, तो उक्त तथ्य को किसी प्रत्यक्ष या मौखिक साक्ष्य के अभाव में दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता है यद्यपि शिकायतकर्ता या वह व्यक्ति जिससे मांग की गई है, साक्ष्य देने के लिए उपलब्ध नहीं है ।

(vii) विद्वान् काउंसेल श्री नागमुथु द्वारा यह भी दलील दी गई कि अधिनियम की धारा 20 में न्यायालय द्वारा एक उपधारणा किया जाना आज्ञापक किया गया है जो एक विधिक उपधारणा की प्रकृति की है । अधिनियम की धारा 7 के अनुसार, "हेतु या इनाम के रूप में" प्रतिगृहीत या अभिप्राप्त या प्रतिगृहीत किए जाने के लिए सहमति या अभिप्राप्त समझे गए किसी अवैध परितोषण के संबंध में उपधारणा एक निर्बंधित और सशर्त उपधारणा है । उक्त उपधारणा केवल अवैध परितोषण के प्रतिग्रहण या अभिप्राप्ति या प्रतिग्रहण करने के लिए सहमति या अभिप्राप्त करने के लिए प्रयत्न के सबूत के आधार पर की जा सकती है और यह अपराध की दोषिता की उपधारणा नहीं है ।

(viii) अधिनियम की धारा 20 के अधीन जो उपधारणा की जा सकती है वह उस उपधारणा की विरोधाभासी है जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के अधीन की जा सकती है । एक उदाहरण देते हुए यह दलील देने की ईप्सा की गई कि यदि किसी छापा मारने के मामले में दूषित करेंसी नोट किसी लोक सेवक के कब्जे में पाए जाते हैं, तो अधिनियम की धारा 114 के अधीन यह उपधारणा की जा सकती है कि उसने ये नोट प्राप्त किए होंगे । किंतु यह एक खंडनीय उपधारणा है और अभियुक्त दूषित नोट कब्जे में होने के लिए अपना स्पष्टीकरण देकर इस उपधारणा का खंडन कर सकता है । उक्त उपधारणा एक तथ्य की उपधारणा है । तथापि, ऐसी मांग की उपधारणा नहीं की जा सकती है । दूसरे शब्दों में, मांग के बारे में वस्तुत: साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के अधीन तब तक उपधारणा नहीं की जा सकती जब तक ऐसी उपधारणा किए जाने

के लिए आधारभूत तथ्य साबित नहीं हो जाते हैं और ऐसे आधारभूत तथ्य अचूक मांग के सबूत के अप्रतिरोध्य और एकमात्र निष्कर्ष को इंगित करते हों । इससे यह विवक्षित है कि अभियुक्त के कब्जे से दूषित नोटों की मात्र बरामदगी से मांग की उपधारणा उद्भूत नहीं होगी । इस संबंध में **बी. जयराज** वाले मामले और **के. शांतम्मा** बनाम **कर्नाटक राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के एक हाल ही के निर्णय के प्रतिनिर्देश किया गया ।

(ix) अगली यह दलील दी गई कि अधिनियम की धारा 7 प्रतिग्रहण या अभिप्राप्ति या प्रतिगृहीत करने के लिए सहमत होना या अभिप्राप्त करने का प्रयत्न करने के बारे में है । इसके अतिरिक्त, "प्रतिग्रहण" अभिव्यक्ति का "प्राप्ति" अभिव्यक्ति से भेद किया जाना चाहिए क्योंकि वे अधिनियम की धारा 7 के संदर्भ में भिन्न-भिन्न अर्थ संप्रेषित करती हैं । अधिनियम की धारा 7 में प्राप्ति का उल्लेख नहीं है अपितु केवल प्रतिग्रहण का उल्लेख है । प्राप्ति को प्रतिग्रहण में तब्दील करने के लिए यह साबित किया जाना चाहिए कि रिश्वत देने वाले से मांग की गई है । दूसरे शब्दों में, रिश्वत देने वाले ने लोक सेवक से किसी अनुग्रह की मांग करते हुए परितोषण देने की प्रस्थापना की हो ।

(x) अत: किसी संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति की मात्र प्राप्ति तब तक प्रतिग्रहण की कोटि में नहीं आएगी जब तक रिश्वत देने वाले ने लोक सेवक से अनुग्रह की मांग करते हुए प्रस्थापना न की हो । इस विवाद्यक तथ्य को प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा साबित किया जाना चाहिए । तथापि, यदि रिश्वत देने वाले या शिकायतकर्ता की मृत्यु हो जाती है या "पक्षद्रोही" हो जाता है और तथ्य को प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा साबित नहीं किया जा सकता, तब इसे ऐसे किसी अन्य साक्षी के साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता है जिसे उक्त तथ्य का प्रत्यक्ष ज्ञान हो या यहां तक कि पारिस्थितिक साक्ष्य द्वारा भी साबित किया जा सकता है । जैसे ही प्रतिग्रहण का तथ्य साबित

---

[1] (2022) 4 एस. सी. सी. 574.

हो जाता है, धारा 20 लागू होगी और यह उपधारणा की जानी चाहिए कि प्रतिग्रहण किसी कार्य का इनाम था । इसके अतिरिक्त, साबित किए जाने वाले आधारभूत तथ्यों के अभाव में साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के अधीन प्रतिग्रहण की कोई उपधारणा नहीं की जा सकती ।

(xi) विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री नागमुथु द्वारा यह दलील दी गई कि जब एक बार प्रतिग्रहण या अभिप्राप्ति या प्रतिगृहीत करने के लिए सहमत होने या अभिप्राप्त करने का प्रयत्न करने की बात साबित हो जाती है, तब "हेतु या इनाम" के मुकाबले धारा 20 के अधीन उपधारणा अधिनियम की धारा 7 के संदर्भ में की जा सकती है । किंतु प्रतिग्रहण या अभिप्राप्ति या प्रतिगृहीत करने के लिए सहमत होना या अभिप्राप्त करने का प्रयत्न करने की बात को आधारभूत तथ्यों के अभाव में उपधारणा के माध्यम से सिद्ध नहीं किया जा सकता । धारा 20 क्यों एक विधिक उपधारणा करती है इसका कारण है अभियुक्त की आपराधिक मन: स्थिति को साबित करने के लिए है, अर्थात् लोक सेवक जानता था कि उसने "हेतु या इनाम" के रूप में अवैध परितोषण प्राप्त किया था । चूंकि इस तथ्य को प्रत्यक्ष मौखिक साक्ष्य या दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा साबित किया जाना कठिन है इसलिए संसद् में अपनी प्रज्ञा से अधिनियम में धारा 20 सम्मिलित की और न्यायालय को अवैध परितोषण की केवल एक "हेतु या इनाम" के रूप में उपधारणा करने के लिए आदेश दिया । निस्संदेह, ऐसी विधिक उपधारणा भी खंडनीय है ।

(xii) संविधान न्यायपीठ के समक्ष उठाए गए वास्तविक प्रश्न पर आते हैं, विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री नागमुथु द्वारा यह दलील दी गई कि अभिप्राप्ति के कार्य में दो पहलू अंतर्विष्ट हैं, अर्थात् लोक सेवक द्वारा की गई पहले से मांग और अवैध परितोषण की प्राप्ति तथा इन दोनों पहलुओं को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित किया जाना चाहिए । मांग के तथ्य को मौखिक साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता है । तथापि, अभिप्राप्ति या अभिप्राप्त करने के प्रयत्न को साबित करने के लिए शिकायतकर्ता के साक्ष्य के अभाव में धारा

20 के अधीन उपधारणा उद्भूत नहीं हो सकती । इसके अतिरिक्त, यदि ऐसी अभिप्राप्ति या प्रयत्न को किसी अन्य साक्षी द्वारा देखा गया था, तब वह साक्षी रिश्वत देने वाले द्वारा साक्ष्य देने के लिए उपलब्ध न होने पर भी उक्त तथ्य को साबित कर सकता है ।

(xiii) दूसरी ओर, परितोषण का प्रतिग्रहण करने या प्रतिग्रहण करने के लिए सहमत होने के मामले में प्रस्थापना वास्तविक शिकायतकर्ता द्वारा की जानी चाहिए और अभियुक्त-लोक सेवक ने प्रस्थापना स्वीकार की हो । इस मामले में, लोक सेवक द्वारा पहले से की गई कोई मांग नहीं है । अत: यदि अन्य साक्ष्य द्वारा भी कोई सबूत है कि लोक सेवक ने वास्तविक शिकायतकर्ता से कुछ संपत्ति प्राप्त की थी, इस बात से स्वयंमेव अधिनियम की धारा 7 के निबंधनों के अनुसार प्रतिग्रहण साबित नहीं हो जाएगा । दूसरे शब्दों में, किसी लोक सेवक द्वारा किसी संपत्ति को मात्र प्राप्त करना न तो प्रतिग्रहण और न ही अभिप्राप्त करने की कोटि में आता है । अधिनियम की धारा 7 के निबंधनों के अनुसार प्राप्ति को प्रतिग्रहण में संपरिवर्तित करने के लिए यह साबित किया जाना चाहिए कि प्राप्ति से पूर्व प्रस्थापना की गई थी, और अभिप्राप्ति के मामले में प्राप्ति से पूर्व लोक सेवक द्वारा की गई मांग होनी चाहिए ।

(xiv) **एम. नरसिंग राव** वाले मामले के प्रतिनिर्देश करके यह दलील दी गई कि इस न्यायालय ने अधिनियम की धारा 7 और धारा 13(1)(घ) के बीच फर्क पर और प्रतिग्रहण तथा अभिप्राप्ति के बीच फर्क के संबंध में और ऐसे मामले में जो अधिनियम की धारा 13(1)(घ) के अंतर्गत आता है धारा 20 के अधीन उपधारणा लागू न होने की बात पर विचार नहीं किया था ।

(xv) विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री नागमुथु के अनुसार, एम. नरसिंग राव वाला मामला विधि की कोई प्रतिपादना अधिकथित नहीं करता है । इसके अतिरिक्त, **एम. नरसिंग राव** वाले मामले के प्रतिनिर्देश करके यह दलील दी गई कि बाद में अवैध परितोषण की प्राप्ति के लिए मांग का होना अत्यावश्यक है और इसे पारिस्थितिक साक्ष्य द्वारा इस सिद्धांत के अधीन रहते हुए साबित किया जा सकता है कि

बदली हुई साबित परिस्थितियों से अचूक अभियुक्त की दोषिता इंगित होनी चाहिए और ऐसी कोई अन्य कल्पना नहीं होनी चाहिए जो लागू हो सके । यह दलील दी गई कि रिश्वत देने वाले के अभाव में मांग के सबूत की उपधारणा परिस्थितियों से की जा सकती है । **पी. सत्यनारायण मूर्ति** वाले मामले के प्रतिनिर्देश करके विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने दलील दी कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 4 के अनुसार केवल आचरण संबंधी तथ्य की उपधारणा की जा सकती है । उक्त मामले में, शिकायतकर्ता "पक्षद्रोही" हो गया था और मांग को साबित करने के लिए कोई अन्य प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं था किंतु दूषित करेंसी नोट अभियुक्त से बरामद किए गए थे । अवैध परितोषण के लिए मांग के सबूत के अभाव में लोक सेवकों द्वारा मूल्यवान चीज या धन संबंधी फायदा अभिप्राप्त करने के लिए भ्रष्ट या अवैध साधनों का प्रयोग करना कतई सिद्ध नहीं हुआ था ।

(xvi) विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने **किशन चंद मंगल** वाले मामले का यह दलील देने के लिए अवलंब लिया कि वूलमिंग्टन के सिद्धांत के अनुसार, युक्तियुक्त संदेह के परे सबूत होना चाहिए और उक्त सिद्धांत विचाराधीन अधिनियम के अधीन लागू होगा । युक्तियुक्त संदेह के परे साबित आधारभूत तथ्य होने के आधार पर और खंडनीय साक्ष्य के अभाव में दोषिता का कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता और केवल साक्ष्य अधिनियम की धारा 4 के अनुसार केवल उपधारणा की जा सकती है । पूर्वोक्त दलीलों को दृष्टिगत करते हुए, श्री नागमुथु ने यह दलील दी कि विचार के लिए उठाए गए प्रश्न का उत्तर अवश्य नकारात्मक दिया जाना चाहिए ।

15. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री एम. करपगा विनयगम ने दलील दी कि अभियोजन पक्ष द्वारा अभिकथित लोक सेवक द्वारा की गई मांग का सबूत होना अभियुक्त लोक सेवक की दोषिता को सिद्ध करने के लिए अत्यावश्यक है । दूषित नोटों को मात्र प्रतिगृहीत करना या बरामदगी होना अभियुक्त की दोषिता को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है क्योंकि अभियोजन पक्ष को पहले यह साबित करना चाहिए कि

अभियुक्त द्वारा अवैध परितोषण की मांग की गई थी । उसके पश्चात्, दूषित नोटों को बाद में प्रतिगृहीत करने और बरामदगी से अभियुक्त की दोषिता को सिद्ध करने के लिए परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण होगी । इस संबंध में, विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **राम आसरे**[1] **; मुखत्यार सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[2] ; **एम. आर. पुरुषोतम** बनाम **कर्नाटक राज्य**[3] ; **सी. एम. शर्मा** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[4] ; **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **ध्यानेश्वर लक्ष्मण राव वानखेड़े**[5] ; **सुकुमारन** बनाम **केरल राज्य**[6] और **एन. सुनकन्ना** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[7] वाले मामलों का अवलंब लिया ।

16. विद्वान् काउंसेल श्री आर. बसंत ने दलील दी कि **पी. सत्यनारायण मूर्ति** (उपरोक्त) वाले मामले में विधि के सिद्धांत के रूप में यह अधिकथित नहीं किया गया था कि हर मामले में जहां शिकायतकर्ता की मृत्यु हो गई है, मांग को कतई साबित नहीं किया जा सकता । जहां युक्तियुक्त संदेह के परे सबूत हो, किसी निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए अन्य साक्ष्य पर विचार किया जा सकता है ।

17. यह दलील दी गई कि **पी. सत्यनारायण मूर्ति** (उपरोक्त) वाले मामले में एक गलत धारणा की गई थी, जिसमें यह मत व्यक्त किया गया था कि अधिनियम की धारा 7, 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन मामले को साबित करने के लिए केवल प्रत्यक्ष साक्ष्य का होना अत्यावश्यक है । इसीलिए खंड न्यायपीठ तथा तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने मामले को बृहत्तर न्यायपीठ को निर्देशित किया । किंतु यह स्थिति नहीं है । वास्तव में, **बी. जयराज** (उपरोक्त) वाले मामले में शिकायतकर्ता विचारण के समय पर "पक्षद्रोही" हो गया था और इस

---

[1] (1990) (सप्ली.) एस. सी. सी. 12.

[2] (2017) 8 एस. सी. सी. 136.

[3] (2015) 3 एस. सी. सी. 247.

[4] (2010) 15 एस. सी. सी. 1.

[5] (2009) 15 एस. सी. सी. 200.

[6] (2015) 11 एस. सी. सी. 314.

[7] (2016) 1 एस. सी. सी. 713.

न्यायालय ने अभियोजन पक्ष की ओर से अन्य साक्षियों के साक्ष्य की परीक्षा की और अभिनिर्धारित किया कि अभियोजन पक्ष युक्तियुक्त संदेह के परे यह साबित करने में समर्थ नहीं रहा था कि अभियुक्त द्वारा कोई मांग की गई थी । उक्त मामले में यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि अधिनियम की धारा 20 के अधीन उपधारणा केवल अवैध परितोषण के प्रतिग्रहण का सबूत होने पर की जा सकती है ।

18. श्री बसंत के अनुसार, **एम. नरसिंग राव** (उपरोक्त) वाले मामले में शिकायतकर्ता "पक्षद्रोही" हो गया था । किंतु अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रत्यक्ष साक्ष्य के अभाव में भी प्रस्तुत किया गया शेष साक्ष्य और परिस्थितियां अभियुक्त की दोषिता को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं । इस दलील के समर्थन में निम्नलिखित मताभिव्यक्ति का अवलंब लिया गया :–

> "किंतु अन्य परिस्थितियां जो इस मामले में साबित की गई हैं और वे परिस्थितियां जो दूषित करंसी नोटों की तलाशी लेने से पूर्व और पश्चात् की हैं, न्यायालय की यह तथ्यात्मक उपधारणा करने में सहायता करने के लिए सुसंगत और उपयोगी हैं कि अपीलार्थी ने करंसी नोट जानबूझकर प्राप्त किए थे ।"

19. **एम. नरसिंग राव** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि अभियोजन पक्ष ने मामले को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित किया है जबकि **बी. जयराज** (उपरोक्त) वाले मामले में अभियोजन पक्ष ऐसा साबित करने में असफल रहा था । अत: एक ओर **एम. नरसिंग राव** (उपरोक्त) वाले मामले में के निर्णय और दूसरी ओर **बी. जयराज** (उपरोक्त) तथा **पी. सत्यनारायण मूर्ति** (उपरोक्त) वाले मामलों में के निर्णयों के बीच कोई विरोध नहीं है ।

20. अधिनियम की धारा 20 के अधीन उपधारणा केवल तब लागू होगी यदि यथास्थिति, मांग और प्रतिग्रहण का तथ्य या अवैध परितोषण साबित हो जाता है । ऐसा सबूत प्रत्यक्ष साक्ष्य के अभाव में पारिस्थितिक साक्ष्य द्वारा भी प्रस्तुत किया जा सकता है । ऐसा विशिष्ट रूप से छापा

मारने के मामलों में हो सकेगा क्योंकि अभियोजन पक्ष को यह साबित करना होता है कि अभियुक्त ने शिकायतकर्ता से रिश्वत की मांग की थी । मांग के तथ्य को या तो प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा या पारिस्थितिक साक्ष्य के माध्यम से साबित किया जा सकता है ।

21. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री सुशील कुमार जैन ने भी यह दलील दी कि धारा 7 और 13(1)(घ) के अधीन दोषसिद्धि को सिद्ध करने के लिए स्वयं अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए किसी मूल्यवान चीज या धन संबंधी फायदे की मांग एक आवश्यक संघटक है या अत्यावश्यक है । मांग को या तो प्रत्यक्ष मौखिक साक्ष्य द्वारा या दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता है । धारा 20 के अधीन उपधारणा केवल धारा 7, 11 और धारा 13(1)(क) और (ख) के अधीन अपराधों के संबंध में लागू होगी चूंकि मांग "अभिप्राप्त" शब्द का भाग है । तथापि, इस आधारभूत तथ्य को साबित किया जाना चाहिए और इसकी उपधारणा नहीं की जा सकती । "प्रतिगृहीत" शब्द के संबंध में भी मांग को अवश्य साबित किया जाना चाहिए । धारा 20 अधिनियम, 1947 की धारा 4 के समान है और अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व भ्रष्ट लोक सेवकों के विरुद्ध अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 161 और 165क के अधीन भी आते थे । अधिनियम, 1947 की धारा 4 में भारतीय दंड संहिता की धारा 161 और 165 के अधीन अपराधों के लिए कानूनी उपधारणाएं विहित की गई थीं । अधिनियम की धारा 31 द्वारा, धारा 161 से 165क को निरसित किया गया और अब अधिनियम की धारा 7 और 11 के अंतर्गत आती हैं । अधिनियम एक विशेष कानून है और स्वत: एक पूर्ण संहिता है ।

22. विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि भारत में दांडिक विधिशास्त्र के अधीन तब तक सदैव निर्दोषिता की उपधारणा की जाती है जब तक दोषिता साबित नहीं हो जाती और दोषिता की उपधारणा नहीं की जाती है । अत: मांग और इसके प्रतिग्रहण का युक्तियुक्त संदेह के परे सबूत होना चाहिए जिससे अभियुक्त की दोषिता को सिद्ध किया जा सके । इस संबंध में, **एम. नरसिंग राव** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 18 का अवलंब लिया गया ।

23. विद्वान् अपर महा-सालिसिटर सुश्री ऐश्वर्या भाटी ने हमारा ध्यान के. संतानम समिति द्वारा प्रस्तुत की गई भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम पर समिति की रिपोर्ट की ओर दिलाया और दलील दी कि इस रिपोर्ट में यह कहा गया है कि भ्रष्टाचार बड़े पैमाने पर बढ़ गया है और लोगों का लोक प्रशासन की निष्ठा से विश्वास उठने लगा है । **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **राम सिंह**[1] वाले मामले का अवलंब हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर दिलाने के लिए लिया कि अधिनियम का आशय रिश्वत और भ्रष्टाचार के निवारण के लिए प्रभावी उपबंध करना था । अधिनियम एक सामाजिक विधान है जिसका आशय लोक सेवकों के अवैध क्रियाकलापों को रोकना है और उदारतापूर्वक अर्थान्वयन किए जाने की अभिकल्पना की गई है जिससे इसके उद्देश्य को अग्रसर किया जा सके । अधिनियम के विभिन्न उपबंधों का निर्वचन करते समय और इसके अधीन मामलों का विनिश्चय करते समय प्रक्रियात्मक विलंब और विधि की तकनीकियों को अधिनियम द्वारा अभीष्ट उद्देश्यों को विफल करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाना चाहिए । उन्होंने हमारा ध्यान इस न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों की ओर भी आकर्षित किया जिनमें शिकायतकर्ता की मृत्यु हो जाने या "पक्षद्रोही" हो जाने या साक्ष्य देने के लिए उपलब्ध न होने पर अभिलेख पर के अन्य साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि का आदेश किया गया है । उनके द्वारा निर्दिष्ट कई विनिश्चयों को ऊपर उद्धृत किया गया है । उन्होंने यह दलील दी कि यदि शिकायतकर्ता उसके द्वारा निर्दिष्ट साक्ष्य के कतिपय पहलुओं के संबंध में "पक्षद्रोही" हो जाता है, तो उसके संपूर्ण साक्ष्य को त्यक्त नहीं किया जा सकता ।

24. विद्वान् अपर महा-सालिसिटर ने यह दलील दी कि **बी. जयराज** (उपरोक्त) और **पी. सत्यनारायण मूर्ति** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णयों को सही रूप में विनिश्चित किया गया है और उठाए गए प्रश्नों का तद्नुसार उत्तर दिया जाए ।

25. विद्वान् अपर महा-सालिसिटर श्री जे. के. सूद ने दलील दी कि

---

[1] (2000) 5 एस. सी. सी. 88.

संविधान न्यायपीठ के समक्ष विवाद्यक अधिनियम की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 7, 13(1)(घ) के अधीन किसी लोक सेवक की ऐसे मामले में दोषिता के सबूत के संबंध में है जहां शिकायतकर्ता का साक्ष्य अनुपलब्ध हो । उन्होंने दलील दी कि सबूत का अर्थ एक कठोर और अंकगणितीय प्रदर्शन नहीं है क्योंकि वह असंभव है ; इसका अर्थ ऐसे साक्ष्य से है जिससे एक युक्तियुक्त व्यक्ति एक विशिष्ट निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए प्रेरित हो । निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए न्यायालय प्रस्तुत या साबित तथ्यों से निकाले जाने वाले निष्कर्षों की प्रक्रिया का प्रयोग कर सकता है और ऐसे निष्कर्ष विधि की उपधारणा के समान हैं । न्यायालय द्वारा इस तथ्य की उपधारणा विवेकाधिकार का प्रयोग करके विशिष्ट मामले के तथ्यों के संबंध में स्वाभाविक घटनाओं, मानवीय आचरण, लोक या प्राइवेट कारबार की सामान्य प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए की जा सकती है । यह विवेकाधिकार साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 में परिकल्पित है । इस प्रकार, कतिपय तथ्यों के सबूत के आधार पर उपधारणा की जा सकती है । साथ ही, उपधारणा अन्य तथ्यों से निकाला जाने वाला अंतिम निष्कर्ष नहीं है । कतिपय तथ्यों की उपधारणा तब तक बनी रहती है जब तक ऐसे निष्कर्ष को या तो नासाबित या त्यक्त नहीं कर दिया जाता । जब तक उपधारणा को नासाबित या त्यक्त या खंडित नहीं किया जाता, न्यायालय उपधारणा को सबूत की कोटि में आने वाला समझ सकता है । तथापि, उपधारणा केवल तथ्यों से की जा सकती है न कि अधिसंभाव्य और तार्किक कारण की प्रक्रिया द्वारा अन्य उपधारणाओं से । तथ्यों के आधार पर उपधारणाओं के विपरीत, एक उपधारणा है जिसे विधिक उपधारणा के रूप में जाना जाता है जो एक अनिवार्य उपधारणा है जैसा कि अधिनियम की धारा 20(1) में है । अधिनियम की धारा 20 के अधीन यह उपधारणा की जा सकती है कि अभियुक्त ने कोई पदीय कृत्य करने के लिए या प्रविरत रहने के लिए हेतु या इनाम के रूप में कोई परितोषण प्रतिगृहीत किया था या प्रतिगृहीत करने के लिए सहमत हुआ था । अत: धारा 20 के अधीन परिकल्पित शर्तों का अभियुक्त के विरुद्ध उपधारणा करने से पूर्व समाधान किया जाना चाहिए, अर्थात् अभियुक्त ने कोई अवैध परितोषण प्रतिगृहीत किया था या प्रतिगृहीत करने के लिए सहमत हुआ था । यह सबूत प्रत्यक्ष साक्ष्य के माध्यम से होना आवश्यक

नहीं है जो कि केवल किसी तथ्य को साबित करने के लिए एक आधार है ।

26. विद्वान् अपर महा-सालिसिटर ने यह भी दलील दी कि "अभिप्राप्त" से अभिप्रेत है "अभिप्राप्त" और "प्रतिगृहीत" करने के किसी अनुरोध के परिणामस्वरूप कोई चीज सुनिश्चित या प्राप्त करना है अर्थात् इससे अभिप्रेत है सहमत मन से लेना या प्राप्त करना है । सहमति को न केवल साक्ष्य प्रस्तुत करके सिद्ध किया जा सकता है अपितु ऐसी पूर्व सहमति के सबूत के बिना संव्यवहार की परिवर्ती परिस्थितियों से भी सिद्ध किया जा सकता है । यदि किसी लोक सेवक से इस प्रत्याशा और आशा से जानकारी होना कि भविष्य में यदि आवश्यकता हुई तो उससे कुछ पदीय अनुग्रह मिल सकेगा, स्वेच्छा से कोई परितोषण देता है और यदि लोक सेवक इच्छा से ऐसा परितोषण लेता है या प्राप्त करता है, तो यह भारतीय दंड संहिता की धारा 161 के अर्थान्तर्गत "प्रतिग्रहण" की कोटि में आएगा ।

27. विद्वान् काउंसेल डा. जोसफ अरिस्टोटल ने तमिलनाडु राज्य की ओर से दलील दी कि शिकायतकर्ता की मृत्यु या अनुपलब्धता या शिकायतकर्ता का "पक्षद्रोही" हो जाना ऐसे तीन दृष्टांत हैं जब शिकायतकर्ता का प्रत्यक्ष साक्ष्य अभियुक्त-लोक सेवक की दोषिता को सिद्ध करने के लिए उपलब्ध नहीं होगा । शिकायतकर्ता की मृत्यु या अनुपलब्धता से अभियोजन का पक्षकथन दूषित नहीं हो जाएगा क्योंकि मांग संबंधी अपराध में फंसाने वाली परिस्थिति को शिकायतकर्ता की अनुपस्थिति में भी परिस्थितियों द्वारा साबित किया जा सकता है । अभियोजन पक्ष द्वारा दिए जाने वाले साक्ष्य की गुणवत्ता मांग करने के एकमात्र प्रत्यक्ष साक्ष्य की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है । छापा मारने के मामले में, न्यायालय को अपराधों के तथ्य के संघटकों अर्थात् मांग के प्रतिग्रहण और दूषित धन की बरामदगी पर समग्र रूप से विचार करना चाहिए । अत: अभियोजन का पक्षकथन शिकायतकर्ता की मृत्यु से समाप्त नहीं हो जाता क्योंकि किसी शिकायतकर्ता के अभाव में भी मांग और दूषित धन की बरामदगी के तथ्य को किसी स्वतंत्र साक्षी द्वारा साबित करना संभव है जिसका साक्ष्य दोषसिद्धि का आदेश पारित करने

का आधार हो सकता है ।

विचार के लिए प्रश्न

28. पूर्वोक्त मामलों पर विचार करने पर बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा अवधारण करने के लिए विरचित किया गया प्रश्न निम्नलिखित है :–

> "(1) क्या अवैध परितोषण की मांग के संबंध में शिकायतकर्ता के साक्ष्य/प्रत्यक्ष या प्राथमिक साक्ष्य के अभाव में अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए अन्य साक्ष्य के आधार पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 7 और धारा 13(1)(घ) के अधीन किसी लोक सेवक की अपराधिता/दोषिता का आनुमानिक निष्कर्ष निकालना अनुज्ञेय है या नहीं ?"

पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर देने के लिए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य देने ; उपधारणाओं और पारिस्थितिक साक्ष्य के संबंध में साक्ष्य विधि के सुसंगत उपबंधों को दोहराना उपयोगी होगा । उसके पश्चात् उठाए गए प्रश्नों की पृष्ठभूमि में तीनों मामलों और न्यायालय के समक्ष उद्धृत अन्य मामलों का विश्लेषण किया जाएगा और उक्त चर्चा से कोई निष्कर्ष निकाला जाएगा ।

साक्ष्य विधि के सुसंगत उपबंध – चर्चा

29. चूंकि इस मामले का मुख्य जोर इससे पूर्व कि किसी लोक सेवक को अधिनियम की धारा 7 और धारा 13(1)(घ) के अधीन अपराध का दोषी ठहराया जा सके, अवैध परितोषण की मांग और प्रतिग्रहण के सबूत के साक्ष्य की गुणवत्ता पर है, इसलिए विचाराधीन प्रश्न से सुसंगत साक्ष्य विधि के प्रमुख सिद्धांतों की चर्चा करना उचित होगा । इस संदर्भ में साक्ष्य अधिनियम की धारा 3, 4, 59, 60, 61, 62, 63, 64, 65 और 154 को निर्दिष्ट करना आवश्यक होगा ।

30. संबंधित तथ्य और कार्य के सिद्धांत के अनुरूप, तथ्य के अंतर्गत वस्तुओं या घटनाओं की अवस्था तथा मानसिक दशा अर्थात् आशय या अभिप्राय: आता है । साक्ष्य विधि में तथ्य के अंतर्गत फेक्टम

प्रोबेंडम अर्थात् साबित किए जाने वाला मुख्य तथ्य और फेक्टम प्रोबेंस अर्थात् साक्ष्यिक तथ्य आता है जिससे तुरंत या निष्कर्ष द्वारा मुख्य तथ्य निकलता है । दूसरी ओर, "विवाद्यक तथ्य" से अभिप्रेत वे विषय हैं जो विवादग्रस्त हैं या जिनसे अन्वेषण के विषय का गठन होता है । (साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 देखें) ।

31. यह भली-भांति स्थिर है कि साक्ष्य किसी मामले में अभिवाक् किए गए तथ्यों पर होता है और इसलिए मुख्य तथ्य कभी-कभी विवाद्यक तथ्य होते हैं । विवाद्यक से सुसंगत तथ्य साक्ष्यिक तथ्य होते हैं जो किसी विवाद्यक तथ्य या कुछ सुसंगत तथ्य की विद्यमानता या अविद्यमानता की अधिसंभाव्यता को बताते हैं ।

32. दांडिक मामलों में, विवाद्यक तथ्य वारंट या समन मामलों में आरोप, या अर्जन से गठित होते हैं । विवाद्यक तथ्यों का सबूत मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य हो सकता है । साक्ष्य वह माध्यम है जिसके द्वारा न्यायालय जांच के अधीन मामले अर्थात् साक्षियों के वास्तविक शब्दों, या प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों की सत्यता या अन्यथा से आश्वस्त होता है न कि उन तथ्यों से जो मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा साबित किए जाने हैं । निस्संदेह, साक्ष्य शब्द मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य तक निर्बंधित नहीं है अपितु तात्विक वस्तुएं, साक्षियों का हाव-भाव, तथ्य जिनकी न्यायिक अवेक्षा की जाती है, पक्षकारों की स्वीकारोक्तियां, किया गया स्थानीय निरीक्षण और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन मजिस्ट्रेट या न्यायाधीश द्वारा किए गए प्रश्नों के अभियुक्त द्वारा दिए गए उत्तर जैसी अन्य बातें भी हैं ।

33. इसके अतिरिक्त, सरकार ऑन ला आफ एविडेंस 20वां संस्करण, वॉल्यूम-1 के अनुसार, "प्रत्यक्ष" या "मूल" साक्ष्य से वह साक्ष्य अभिप्रेत है जिससे किसी वस्तु या तथ्य की विद्यमानता या तो प्रस्तुत करके या किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा वास्तव में परिसाक्ष्य देकर या प्रदर्शन योग्य घोषणा करके सिद्ध होती है जिसने उसे स्वयं महसूस किया है और विश्वास है कि इससे विवाद्यक तथ्य सिद्ध होता है । प्रत्यक्ष साक्ष्य से विवाद्यक तथ्य की विद्यमानता उपधारणा के किसी निष्कर्ष के बिना साबित होती है । दूसरी ओर, "अप्रत्यक्ष साक्ष्य" या "सारभूत साक्ष्य" से

यह तर्कसम्मत निष्कर्ष निकलता है कि ऐसा तथ्य या तो निश्चायक रूप से या उपधारणात्मक रूप से विद्यमान है । विचाराधीन सारभूत साक्ष्य अवश्य ऐसा होना चाहिए जिससे एक से अधिक निष्कर्ष न निकलता हो और किसी ऐसे अन्य स्पष्टीकरण से कि तथ्य साबित नहीं होता है अवश्य असंगत होना चाहिए । प्रत्यक्ष या उपधारणात्मक साक्ष्य (पारिस्थितिक साक्ष्य) द्वारा यह कहा जा सकता है कि वे अन्य तथ्य साबित होते हैं जिनसे प्रस्तुत तथ्य की विद्यमानता का तर्कसम्मत रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है ।

34. पुन:, मौखिक साक्ष्य को मूल साक्ष्य और अनुश्रुत साक्ष्य के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है । मूल साक्ष्य वह है जो साक्षी स्वयं अपनी इंद्रियों के माध्यम से देखे या सुने जाने का उल्लेख करता है । अनुश्रुत साक्ष्य को व्युत्पन्नी, पारेषित, या सुना-सुनाया साक्ष्य भी कहा जाता है जिसमें साक्षी मात्र उस बात का उल्लेख करता है जो उसने स्वयं देखी या सुनी नहीं है, न कि वह जो उसकी स्वयं की शारीरिक इंद्रियों के तुरंत अवलोकन में आई है अपितु जिसकी उस किसी पर-व्यक्ति के माध्यम से उस तथ्य की बाबत जानकारी मिली है । प्रसामान्यत:, कोई अनुश्रुत साक्ष्य अग्राह्य होगा किंतु जब इसकी अन्य साक्षियों के सारभूत साक्ष्य द्वारा पुष्टि की जाती है, तो यह ग्राह्य होगा । (**मुखत्यार सिंह** वाला मामले देखें)

35. वह साक्ष्य जिससे विवाद्यक तथ्य प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध नहीं होता है अपितु उन परिस्थितियों पर रोशनी डालता है जिनमें विवाद्यक तथ्य घटित हुआ था, पारिस्थितिक साक्ष्य होता है (जिसे आनुमानिक या उपधारणात्मक साक्ष्य भी कहा जाता है) । पारिस्थितिक साक्ष्य से अभिप्रेत वे तथ्य हैं जिनसे एक अन्य तथ्य का अनुमान लगाया जाता है । यद्यपि पारिस्थितिक साक्ष्य से विवाद्यक तथ्य प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध नहीं हो जाता है, तो भी यह समान रूप से प्रत्यक्ष होता है । पारिस्थितिक साक्ष्य को भी परिस्थितियों के प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा साबित किया जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त, साक्ष्य साक्षियों की परीक्षा अर्थात् मुख्य परीक्षा, प्रतिपरीक्षा, और पुन: परीक्षा करके साक्ष्य अधिनियम के उपबंधों के अनुसार दिया जाना चाहिए ।

36. साक्ष्य अधिनियम की धारा 59 में यह उपबंधित है कि दस्तावेजों या इलैक्ट्रोनिक अभिलेखों की अंतर्वस्तु के सिवाय सभी तथ्य मौखिक साक्ष्य द्वारा साबित किए जा सकेंगे । मौखिक साक्ष्य से अभिप्रेत न्यायालय या न्यायालय द्वारा नियुक्त आयुक्तों की मौजूदगी में परीक्षा किए गए जीवित व्यक्तियों का परिसाक्ष्य है, मूक और बधिर व्यक्ति भी संकेतों या प्रदर्शन के द्वारा या लिखित में, यदि वे शिक्षित हैं, साक्ष्य प्रस्तुत कर सकते हैं ।

37. दूसरी ओर, दस्तावेजी साक्ष्यों को स्वयं दस्तावेजों को प्रस्तुत करके या, उनके अभाव में, अधिनियम की धारा 65 के अधीन द्वितीयक साक्ष्य द्वारा साबित किया जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त, मन की किसी दशा जैसे आशय, ज्ञान, सद्भाव, उपेक्षा, या दुर्भावना की विद्यमानता को दर्शित करने वाले तथ्यों को प्रत्यक्ष परिसाक्ष्य द्वारा साबित किया जाना आवश्यक नहीं है । इसे आचरण, परिवर्ती परिस्थितियों इत्यादि से अनुमान लगाकर साबित किया जा सकता है । (साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 और 14 देखें) ।

38. जहां तक मौखिक साक्ष्य का संबंध है, **राजस्थान राज्य** बनाम **बाबू मीणा**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने इसे तीन प्रवर्गों में वगीकृत किया है :– (i) पूर्णत: विश्वसनीय ; (ii) पूर्णत: अविश्वसनीय, और (iii) न तो पूर्णत: विश्वसनीय न ही पूर्णत: अविश्वसनीय । किसी अभियुक्त को पूर्णत: विश्वसनीय साक्षी के एकमात्र परिसाक्ष्य के आधार पर दोषसिद्ध किया जा सकता है जबकि किसी साक्षी के पूर्णत: अविश्वसनीय परिसाक्ष्य के असंपुष्टिकारी साक्ष्य के परिणामस्वरूप दोषमुक्ति होना लाजिमी है ।

39. साक्ष्य अधिनियम की धारा 60 में यह अपेक्षित है कि मौखिक साक्ष्य अवश्य प्रत्यक्ष या सकारात्मक होना चाहिए । प्रत्यक्ष साक्ष्य वह है जब इससे मुख्य विवाद्यक तथ्य को सीधे सिद्ध किया जाता है । "प्रत्यक्ष" शब्द को व्युत्पन्नी या अनुश्रुत साक्ष्य को पास-पास रखकर प्रयुक्त किया जाता है जहां कोई साक्षी यह साक्ष्य देता है कि उसे किसी

---

[1] (2013) 4 एस. सी. सी. 206.

अन्य व्यक्ति से जानकारी प्राप्त हुई थी । यदि वह व्यक्ति स्वयं ऐसी जानकारी का कथन नहीं करता है, ऐसा साक्ष्य अनुश्रुत साक्ष्य होने के कारण अग्राह्य होगा । दूसरी ओर, न्यायालयिक प्रक्रिया जैसे पारिस्थितिक या आनुमानिक साक्ष्य या उपधारणात्मक साक्ष्य (धारा 3) अप्रत्यक्ष साक्ष्य है । इससे उन अन्य तथ्यों का सबूत होना अभिप्रेत है जिनसे विवाद्यक तथ्य की विद्यमानता का तर्कसम्मत रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता हो । इस संदर्भ में, "पारिस्थितिक साक्ष्य" अभिव्यक्ति असंयत अर्थ में प्रयुक्त की जाती है, कभी-कभी पारिस्थितिक साक्ष्य प्रत्यक्ष भी हो सकता है ।

40. यद्यपि "अनुश्रुत साक्ष्य" अभिव्यक्ति साक्ष्य अधिनियम के अधीन परिभाषित नहीं है, तो भी इसका न्यायालयों में सतत रूप से प्रयोग किया जाता है । तथापि, अनुश्रुत साक्ष्य उस तथ्य को साबित करने के लिए अग्राह्य है जिसका अनुश्रुत आधार पर साक्ष्य दिया जाता है । किंतु इससे उस कथन के बारे में साक्ष्य आवश्यक रूप से अपवर्जित नहीं होता है जिस पर कतिपय कार्यवाही की गई है या कतिपय परिणाम निकला है जैसे कि अपराध के इत्तिला देने वाले का साक्ष्य ।

41. इस प्रक्रम पर, अवश्य यह प्रभेदित किया जाना चाहिए कि यहां तक कि मौखिक साक्ष्य के संबंध में भी उप-प्रवर्ग हैं – प्राथमिक साक्ष्य और द्वितीयक साक्ष्य । प्राथमिक साक्ष्य मूल साक्ष्य अर्थात् उस व्यक्ति का मौखिक वर्णन है जिसने जो घटित हुआ था उसे देखा था और न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए जाने के लिए इसका विवरण देता है, या स्वयमेव मूल दस्तावेज, या मूल वस्तु देता है जब इन्हें न्यायालय में प्रस्तुत किया जाता है । द्वितीयक साक्ष्य मूल साक्ष्य की रिपोर्ट या मौखिक विवरण या किसी दस्तावेज की प्रति या मूल वस्तु का नमूना है ।

42. धारा 61 दस्तावेजों की अंतर्वस्तुओं के सबूत के संबंध में है जो या तो प्राथमिक या द्वितीयक साक्ष्य द्वारा हो । जब किसी दस्तावेज को तात्विक साक्ष्य के रूप में पेश किया जाता है, तो इसे साक्ष्य अधिनियम की धारा 67 से 73 में अधिकथित रीति में साबित किया जाना होगा । किसी दस्तावेज को मात्र पेश किया जाना और

न्यायालय द्वारा दस्तावेज को प्रदर्श के रूप में चिह्नित किया जाना इसकी अंतर्वस्तुओं का सम्यक् सबूत होना अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता । इसके निष्पादन को ग्राह्य साक्ष्य द्वारा साबित किया जाना चाहिए । दूसरी ओर, जब कोई दस्तावेज पेश किया जाता है और विरोधी पक्षकार द्वारा स्वीकृत किया जाता है तथा न्यायालय द्वारा प्रदर्श के रूप में चिह्नित किया जाता है तो दस्तावेज की अंतर्वस्तुओं को या तो मूल दस्तावेज अर्थात् प्राथमिक साक्ष्य या धारा 65 के अनुसार द्वितीयक साक्ष्य के रूप में इसकी प्रतियों को पेश करके साबित किया जाना चाहिए । जब तक मूल दस्तावेज अस्तित्व में है और उपलब्ध है, तो इसकी अंतर्वस्तुओं को अवश्य प्राथमिक साक्ष्य द्वारा साबित किया जाना चाहिए । केवल तभी जब प्राथमिक साक्ष्य खो गया है, न्याय के हित में द्वितीयक साक्ष्य को अवश्य अनुज्ञात किया जाना चाहिए । प्राथमिक साक्ष्य सर्वोत्तम साक्ष्य है और यह प्रश्नगत तथ्य की सर्वाधिक निश्चितता प्रदान करता है । इस प्रकार, जब किसी विशिष्ट तथ्य को दस्तावेजी साक्ष्य पेश करके सिद्ध किया जाना है, तो मौखिक साक्ष्य पेश करने के लिए कोई गुंजाइश नहीं है । जो पेश किया जाना चाहिए वह प्राथमिक साक्ष्य अर्थात् स्वयं दस्तावेज है । केवल तभी जब प्राथमिक स्रोत के अभाव को समाधानप्रद रूप से स्पष्ट कर दिया गया है वह द्वितीयक साक्ष्य दस्तावेजों की अंतर्वस्तुओं को साबित करने के लिए अनुज्ञेय है । अत: द्वितीयक साक्ष्य को मूल दस्तावेज को पेश न करने के लिए पर्याप्त कारण दिए बिना स्वीकार नहीं करना चाहिए ।

43. साक्ष्य अधिनियम की धारा 62 में प्राथमिक साक्ष्य को परिभाषित किया गया है जिससे न्यायालय के निरीक्षण के लिए पेश किए गए स्वयं दस्तावेज अभिप्रेत है । यदि प्राथमिक साक्ष्य उपलब्ध है, तो इससे द्वितीयक साक्ष्य अपवर्जित हो जाएगा । साक्ष्य अधिनियम की धारा 63 द्वितीयक साक्ष्य के संबंध में है और परिभाषित करती है कि इससे क्या अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत क्या आता है । धारा 63 पांच प्रकार के द्वितीयक साक्ष्य का वर्णन करती है अर्थात्, :–

(1) एतस्मिनपश्चात् अंतर्विष्ट उपबंधों के अधीन दी हुई प्रमाणित प्रतियां ;

(2) मूल से ऐसी यांत्रिक प्रक्रियाओं द्वारा, जो प्रक्रियाएं स्वयं ही प्रति की शुद्धता सुनिश्चित करती हैं, बनाई गई प्रतियां तथा ऐसी प्रतियों से तुलना की हुई प्रतिलिपियां ;

(3) मूल से बनाई गई या तुलना की गई प्रतियां ;

(4) उन पक्षकारों के विरुद्ध, जिन्होंने उन्हें निष्पादित नहीं किया है, दस्तावेजों के प्रतिलेख ;

(5) किसी दस्तावेज की अंतर्वस्तु का उस व्यक्ति द्वारा, जिसने स्वयं उसे देखा है, दिया हुआ मौखिक वृत्तांत ।

44. साक्ष्य अधिनियम की धारा 64 में यह उपबंधित है कि दस्तावेजों को ऊपर वर्णित कतिपय दशाओं को छोड़कर प्राथमिक साक्ष्य द्वारा साबित करना आवश्यक है । जब एक बार कोई दस्तावेज ग्रहण किया जाता है, तो उस दस्तावेज की अंतर्वस्तुओं को भी साक्ष्य में ग्रहण किया जाता है, यद्यपि वे अंतर्वस्तुएं हो सकता है निश्चायक साक्ष्य न हों । इसके अतिरिक्त, जब एक बार कतिपय साक्ष्य निश्चायक है तो इससे कोई अन्य साक्ष्य जो उस साक्ष्य की निश्चायकता को कम करता हो, इससे बाहर हो जाता है । ऐसा कोई अन्य साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने के लिए प्रतिषेध है जो उस साक्ष्य की निश्चायकता को कम करता हो और जब ऐसे साक्ष्य को निश्चायक बनाया जाता है तो न्यायालय के पास उस तथ्य के अन्यथा अस्तित्व में होने की बात को अभिनिर्धारित करने के लिए कोई विकल्प नहीं होता है । इस प्रकार, जब एक बार किसी दस्तावेज को उचित रूप से ग्रहण किया गया है, तो दस्तावेज की अंतर्वस्तुएं साक्ष्य में ग्रहण हो जाएंगी और यदि ऐसे दस्तावेज को साक्ष्य में प्रस्तुत करने के प्रक्रम पर सबूत के ढंग के संबंध में कोई अभ्यापत्ति नहीं की गई है, तो ऐसी कोई अभ्यापत्ति मामले या अपील में किसी बाद के प्रक्रम पर उठाया जाना अनुज्ञात नहीं किया जा सकता । **अमरजीत सिंह** बनाम **राज्य (दिल्ली प्रशासन)**[1] वाला मामला देखें । किंतु दस्तावेजों के बारे में किसी अन्य रीति में अधिक्षेप किया जा सकता है,

[1] 1995 क्रिमिनल ला जर्नल 1623 (दिल्ली).

यद्यपि ग्राह्यता को बाद में चुनौती नहीं दी जा सकती जब दस्तावेज साक्ष्य में परिबद्ध हो ।

45. जिन मामलों में दस्तावेजों से संबंधित द्वितीयक साक्ष्य दिया जा सकता है वे साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के साथ पठित धारा 66, 67(2), धारा 78 में उल्लिखित हैं । दस्तावेजों के सबूत, चाहे लोक दस्तावेज हों या प्राइवेट के अंतर्गत ऐसे दस्तावेजों का निष्पादन आदि भी सम्मिलित है ।

उपधारणाएं

46. न्यायालय किसी विशिष्ट तथ्य से कोई विशिष्ट निष्कर्ष निकालने के लिए प्राधिकृत हैं, जब तक ऐसे निष्कर्ष की सत्यता को अन्य तथ्यों द्वारा नासाबित न कर दिया जाए । न्यायालय साक्ष्य अधिनियम की धारा 4 के अधीन किसी तथ्य के सबूत के प्रयोजनार्थ उपधारणा कर सकता है । यह सुस्थिर है कि उपधारणा स्वयमेव साक्ष्य नहीं है अपितु केवल उस पक्षकार के लिए एक प्रथमदृष्ट्या मामला बनाती है जिसके फायदे के लिए यह अस्तित्व में है । आंग्ल विधि के अनुसार, उपधारणाओं के तीन प्रवर्ग हैं अर्थात् (i) तथ्य की उपधारणा या स्वाभाविक उपधारणा; (ii) विधि की उपधारणा (खंडनीय और अखंडनीय); और (iii) मिश्रित उपधारणाएं अर्थात् "विधि और तथ्य की मिश्रित उपधारणाएं" या "विधि द्वारा मान्यता प्राप्त तथ्य की उपधारणाएं" । साक्ष्य अधिनियम की धारा 4 में "उपधारणा कर सकेगा" और "उपधारणा करेगा" अभिव्यक्ति भी उपधारणाओं के प्रवर्ग हैं । तथ्यात्मक उपधारणाएं या वैवेकिक उपधारणाएं "उपधारणा कर सकेगा" प्रभाग के अधीन आती हैं जबकि विधिक उपधारणाएं या अनिवार्य उपधारणाएं "उपधारणा करेगा" के प्रभाग के अधीन आती हैं । "उपधारणा कर सकेगा" द्वारा यह न्यायालय के विवेक पर छोड़ा गया है कि वह मामले की परिस्थितियों के अनुसार उपधारणा करे किंतु "उपधारणा करेगा" से न्यायालय के पास कोई विकल्प नहीं है और वह तब तक तथ्य की साबित होने के रूप में उपधारणा करने के लिए आबद्ध है जब तक इसे नासाबित करने के लिए साक्ष्य नहीं दिया जाता है, उदाहरण के लिए, किसी दस्तावेज की असलियत जो भारत का राजपत्र होना तात्पर्यित है । "उपधारणा करेगा"

अभिव्यक्ति साक्ष्य अधिनियम की धारा 79, 80, 81, 83, 85, 89 और 105 में पाई जाती है ।

47. इसी प्रकार, परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन विचारण में यह उपधारणा करनी होगी कि प्रत्येक परक्राम्य लिखत प्रतिफल के लिए दी गई थी या लिखी गई थी और यह ऋण या दायित्व के उन्मोचन के लिए निष्पादन की गई थी, जब एक बार परक्राम्य लिखत के निष्पादन को या तो साबित किया गया है या ग्रहण किया गया है । **कुमार एक्सपोर्ट्स** बनाम **शर्मा कार्पेट्स**[1] वाला मामला देखें । इसके अतिरिक्त, यह प्रश्न कि क्या उपधारणा का खंडन किया गया है या नहीं, इसका अवधारण अवश्य अभिलेख पर अन्य साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए । **(कृष्ण जनार्दन भट** बनाम **दत्तात्रेय जी. हेगड़े**[2] वाला मामला देखें) ।

48. अधिनियम की धारा 20 वहां उपधारणा करने के संबंध में है जहां लोक सेवक वैद्य पारिश्रमिक से भिन्न परितोषण प्रतिगृहीत करता है । इस धारा की उपधारा (1) और उपधारा (2) में "उपधारणा की जाएगी" अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया है जब तक कि प्रतिकूल साबित नहीं कर दिया जाता है । उक्त उपबंध एक विधिक उपधारणा के संबंध में है जो इस आदेश की प्रकृति की है कि यदि इस धारा के पहले भाग में परिकल्पित शर्तों का समाधान हो जाता है तो यह उपधारणा की जानी चाहिए कि अभियुक्त ने कोई पदीय कृत्य इत्यादि करने के लिए या करने से प्रविरत रहने के लिए हेतु या इनाम के रूप में परितोषण प्रतिगृहीत किया था । अधिनियम की धारा 20 के अधीन एक विधिक उपधारणा करने के लिए एकमात्र शर्त यह है कि विचारण के दौरान यह साबित किया जाना चाहिए कि अभियुक्त ने कोई परितोषण प्रतिगृहीत किया था या प्रतिगृहीत करने के लिए सहमत हुआ था । यह धारा यह नहीं कहती है कि उक्त शर्त का प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा समाधान किया जाना चाहिए । इसकी एकमात्र अपेक्षा यह है कि यह साबित करना होगा कि अभियुक्त ने परितोषण प्रतिगृहीत किया है या प्रतिगृहीत करने के

---

[1] (2009) 2 एस. सी. सी. 513.

[2] (2008) 4 एस. सी. सी. 54.

लिए सहमत हुआ है ।

49. **मद्रास राज्य** बनाम **ए. वैद्यनाथ अय्यर**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया था कि अधिनियम, 1947 की धारा 4(1), जो विचाराधीन अधिनियम की धारा 20 के समान है, के अधीन उपधारणा वहां उद्भूत होगी जहां अवैध परितोषण प्रतिगृहीत किया गया है, इसके पश्चात् इस उपधारणा के साधारण नियम का दांडिक मामलों के सबूत के भार के रूप में एक अपवाद पुर:स्थापित किया गया है और सबूत के भार को अभियुक्त पर स्थानांतरित किया गया है । विधानमंडल ने "उपधारणा की जाएगी" शब्द प्रयुक्त किया है न कि "उपधारणा की जा सकेगी", जिससे यह अभिप्रेत है कि उपधारणा की जानी चाहिए क्योंकि यह एक विधि की उपधारणा है और इसलिए न्यायालय के लिए यह उपधारणा करना आबद्धकर है । इसके अतिरिक्त, तथ्य की उपधारणा जो वैवेकिक है, के मामले के असमान विधि की उपधारणाएं विधिशास्त्र की एक शाखा का गठन करती हैं ।

50. **धनवंतरी बलवंतरी देसाई** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2] वाले मामले में अधिनियम, 1947 की धारा 4(1) के अधीन उपधारणा को साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के अधीन उपधारणा से प्रभेदित करते हुए यह मत व्यक्त किया गया था कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के अधीन उपधारणा वैवेकिक प्रकृति की है क्योंकि न्यायालय किसी अन्य तथ्य के सबूत से कोई तथ्य विद्यमान होने के बारे में उपधारणा करने या न करने के लिए स्वतंत्र है । यह अधिनियम, 1947 की धारा 4(1) और अधिनियम की धारा 20 के असमान है जहां न्यायालय को ऐसी उपधारणा करनी होगी यदि कतिपय तथ्य साबित किया जाता है अर्थात् जहां कोई अवैध परितोषण अभियुक्त द्वारा प्रतिगृहीत किया गया है । ऐसे मामले में यह उपधारणा की जानी चाहिए कि व्यक्ति ने वह चीज हेतु या इनाम के रूप में प्रतिगृहीत की थी । अत: जब एक बार यह सिद्ध किया जाता है कि अभियुक्त ने कोई धन राशि प्रतिगृहीत की है जो उसे वैध परितोषण के रूप में देय नहीं थी, न्यायालय के पास ऐसे

---

[1] ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 61.

[2] ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 575.

मामले में कोई विकल्प नहीं है । निस्संदेह, अभियुक्त यह दर्शित करने के लिए स्वतंत्र है कि यद्यपि वह धन वैध परितोषण के रूप में उसे देय नहीं था तो भी यह धन उसे किसी अन्य रीति में विधिक रूप से देय था या उसने यह धन किसी ऐसे संव्यवहार या ठहराव के अधीन प्रतिगृहीत किया था जो विधिपूर्ण है । ऐसे मामले में अभियुक्त पर भार उतना हल्का नहीं होगा जितना वहां है जहां उपधारणा साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के अधीन की जाती है और मात्र इस तथ्य के कारण निर्वहन किया गया अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि अभियुक्त द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण युक्तियुक्त और अधिसंभाव्य है । यह भी दर्शित करना होगा कि स्पष्टीकरण एक सत्य स्पष्टीकरण है । इस उपबंध में प्रकट होने वाले "जब तक प्रतिकूल साबित नहीं किया जाता है" शब्दों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपधारणा का "सबूत" द्वारा खंडन किया जाना चाहिए न कि मात्र स्पष्टीकरण द्वारा, जो कि मात्र विश्वसनीय है । किसी तथ्य को साबित किया गया तब कहा जाता है जब इसके अस्तित्व को प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध किया जाता है या जब न्यायालय उसके समक्ष लाई गई सामग्री के आधार पर इसका अस्तित्व होना इतना अधिसंभाव्य पाता है कि कोई युक्तियुक्त व्यक्ति यह मानकर कार्य करेगा कि वह अस्तित्व में है । अत: जब तक स्पष्टीकरण का सबूत द्वारा समर्थन न होता हो, इस उपबंध द्वारा सृजित उपधारणा का खंडन करना नहीं किया जा सकता ।

51. एक और ढंग है जिसके माध्यम से किसी तथ्य को साबित किया जा सकता है । किंतु साक्ष्य अधिनियम के अधीन परिकल्पित यह एकमात्र ढंग नहीं है । तथ्य का सबूत इसके अस्तित्व में होने की अधिसंभाव्यता की मात्रा पर निर्भर करती है । यह अनुमान लगाने के लिए अपेक्षित मानक एक प्रज्ञावान व्यक्ति का मानक है जो उससे संबंधित किसी महत्वपूर्ण मामले में कार्य कर रहा हो ।

52. साक्ष्य अधिनियम की धारा 4 में "उपधारणा कर सकेगा" और "उपधारणा करेगा" अभिव्यक्तियों के विपरीत "निश्चायक सबूत" अभिव्यक्ति को भी प्रयुक्त किया गया है । जब विधि यह कहती है कि एक विशिष्ट प्रकार का साक्ष्य निश्चायक होगा, उस तथ्य को या तो उस साक्ष्य द्वारा

या किसी अन्य साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता है जिसे न्यायालय अनुज्ञात करे या अपेक्षा करे । जब निश्चायक किया गया साक्ष्य पेश किया जाता है, न्यायालय के पास यह अभिनिर्धारित करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं है कि वह तथ्य अस्तित्व में है । उदाहरण के लिए, न्यायालय के आदेश में कही गई वह बात निश्चायक है जो न्यायालय के पीठासीन अधिकारी के समक्ष घटित हुई थी । इस प्रकार, निश्चायक सबूत कतिपय तथ्यों के लिए विधि में एक बनावटी साक्ष्यिक प्रभाव देता है । इस प्रभाव का विरोध करने की दृष्टि से कोई साक्ष्य पेश किया जाना अनुज्ञात नहीं है । जब कोई कानून कतिपय तथ्यों को अंतिम और निश्चायक बनाता है, तो ऐसे तथ्यों को नासाबित करना अनुज्ञात नहीं किया जाना चाहिए ।

पारिस्थितिक साक्ष्य

53. जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, न्यायालय के समक्ष पेश किए जाने वाले सभी साक्ष्य या तो प्रत्यक्ष साक्ष्य या पारिस्थितिक साक्ष्य के रूप में वर्गीकृत हैं । "प्रत्यक्ष साक्ष्य" से अभिप्रेत है जब मुख्य तथ्य को प्रत्यक्ष रूप से साक्षियों, वस्तुओं या दस्तावेजों द्वारा प्रमाणित किया जाता है । सभी अन्य रूपों के लिए, "पारिस्थितिक साक्ष्य" पद जो "अप्रत्यक्ष साक्ष्य" है चाहे साक्षियों, वस्तुओं, या दस्तावेजों द्वारा निर्दिष्ट किया जाए, उसे साक्ष्य के रूप में प्राप्त किया जा सकता है । यह भी दो प्रकार का है अर्थात् निश्चायक और उपधारणात्मक । निश्चायक तब होता है जब मुख्य और साक्ष्यिक तथ्यों – फेक्टम प्रोबेंडम और फेक्टम प्रोबेंस के बीच संबंध नैसर्गिक विधियों का एक आवश्यक परिणाम हो ; "उपधारणात्मक" तब होता है जब साक्ष्य से मुख्य तथ्य का निष्कर्ष केवल अधिसंभाव्य है, चाहे उस धारणा की मात्रा कितनी ही हो जो इससे उत्पन्न होती हो (बेस्ट, 11वां संस्करण, धारा 293) । इस प्रकार, पारिस्थितिक साक्ष्य उन परिस्थितियों का साक्ष्य होता है जिसे प्रत्यक्ष साक्ष्य का प्रतिकूल साक्ष्य कहा जाता है । अभियोजन पक्ष को उन सभी आवश्यक परिस्थितियों को प्रस्तुत और साबित करना चाहिए जिनसे किसी दरार के बिना संपूर्ण श्रृंखला का गठन होता हो और इस कल्पना को इंगित करती हो कि अभियुक्त के सिवाय किसी व्यक्ति ने अपराध

कारित नहीं किया था । **नवनीतकृष्णन** बनाम **राज्य** मार्फत **पुलिस निरीक्षक**[1] वाला मामला देखें ।

54. मुख्य तथ्य को इसके अस्तित्व में होने या अन्य पारिस्थितिक साक्ष्य से इसके संबंध से निकाले गए कतिपय निष्कर्षों के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से साबित किया जा सकता है । प्राय: यह कहा जाता है कि साक्षी झूठ बोल सकते हैं किंतु परिस्थितियां नहीं । तथापि, न्यायालय को विशुद्ध रूप से पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि करते हुए एक सतर्क दृष्टिकोण अपनाना चाहिए । दोषिता का निष्कर्ष केवल तब निकाला जा सकता है जब अपराध में आलिप्त करने वाले सभी तथ्य और परिस्थितियां अभियुक्त की निर्दोषिता के असंगत पाए जाते हैं । दूसरे शब्दों में, पारिस्थितिक साक्ष्य का विवाद्यक प्रश्न से सीधा संबंध नहीं होता है अपितु कतिपय उन अन्य तथ्यों का साक्ष्य समाविष्ट होता है जिनका विवाद्यक तथ्य से इतना गहरा संबंध होता है कि उन पर एक-साथ विचार करने पर उनसे परिस्थितियों की ऐसी श्रंखला का गठन होता है जिससे मुख्य तथ्य के अस्तित्व में होने का विधिक रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है या उपधारणा की जा सकती है ।

55. यह अति सामान्य विधि है कि पारिस्थितिक साक्ष्य पर निर्भर मामलों में दोषिता का निष्कर्ष तब निकाला जा सकता है यदि अपराध में आलिप्त करने वाले सभी तथ्य और परिस्थितियां अभियुक्त की निर्दोषिता या उसकी दोषिता के सिवाय किसी अन्य युक्तियुक्त कल्पना के असंगत हों और घटनाओं की एक ऐसी सटीक और पूर्ण श्रृंखला बनती हो जिससे न्यायिक मस्तिष्क में कोई युक्तियुक्त संदेह न रहे । जब अपराध में आलिप्त करने वाली परिस्थिति अभियुक्त को बताई जाती है और उक्त अभियुक्त या तो इसका कोई स्पष्टीकरण नहीं देता या ऐसा स्पष्टीकरण देता है जो असत्य पाया जाता है तब वह परिस्थितियों की श्रृंखला में एक अतिरिक्त कड़ी उसे पूर्ण बनाने के लिए बन जाती है । यदि सभी साबित किए गए तथ्यों के संयुक्त प्रभाव पर विचार करने पर

---

[1] ए. आई. आर. 2018 एस. सी. 2027.

यह अभियुक्त की दोषिता को सिद्ध करने में निश्चायक है, तो दोषसिद्धि न्यायोचित होगी भले ही उन तथ्यों में से कोई एक या अधिक स्वयमेव निश्चायक न हो । (**शरद बिरधीचंद सारदा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1]) और जैसा कि **प्रकाश** बनाम **राजस्थान राज्य**[2] वाले मामले में दोहराया गया है ।

56. **कुंदन लाल रल्लाराम** बनाम **अभिरक्षक, निष्क्रांत संपत्ति बंबई**[3] वाले मामले में इस न्यायालय ने न्यायमूर्ति के. सुब्बाराव के माध्यम से निर्णय सुनाते हुए यह मत व्यक्त किया था कि सबूत के भार से संबंधित साक्ष्य के नियम साक्ष्य अधिनियम की धारा 7 में सन्निविष्ट हैं । "सबूत का भार" वाक्यांश के दो अर्थ हैं :– एक विधि और अभिवचन की दृष्टि से सबूत का भार और दूसरा मामले को सिद्ध करने का भार ; पहला अभिवचनों के आधार पर विधि के प्रश्न के रूप में नियत किया जाता है और संपूर्ण विचारण के दौरान अप्रवर्तित रहता है, जबकि दूसरा स्थिर नहीं है अपितु जैसे ही पक्षकार अपने पक्ष में उपधारणा करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य पेश करता है, यह स्थानांतरित हो जाता है । भार को स्थानांतरित करने के लिए अपेक्षित साक्ष्य आवश्यक रूप से प्रत्यक्ष साक्ष्य अर्थात् मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य या विरोधी पक्षकार द्वारा की गई स्वीकारोक्तियां होने की आवश्यकता नहीं है ; इसमें पारिस्थितिक साक्ष्य या विधि या तथ्य की उपधारणाएं समाविष्ट हो सकती हैं ।

विश्लेषण

57. **बी. जयराज** (उपरोक्त) वाले मामले में शिकायतकर्ता ने अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन नहीं किया था । **पी. सत्यनारायण मूर्ति** (उपर्युक्त) वाले मामले में शिकायतकर्ता की मामले में अपना साक्ष्य देने से पूर्व मृत्यु हो गई थी । **एम. नरसिंग राव** (उपरोक्त) वाले मामले में प्रश्न यह था कि क्या तथ्यात्मक उपधारणा के आधार पर एक

---

[1] [1985] 1 उम. नि. प. 995 = (1984) 4 एस. सी. सी. 116.

[2] (2013) 4 एस. सी. सी. 668.

[3] ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 1316.

विधिक उपधारणा की जा सकती है । **हजारी लाल** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने न्यायमूर्ति ओ. चिन्नप्पा रेड्डी के माध्यम से यह मत व्यक्त किया था कि यह आवश्यक नहीं है कि धन के सक्रांत को प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा साबित किया जाना चाहिए, इसे पारिस्थितिक साक्ष्य द्वारा भी साबित किया जा सकता है । इसके अलावा, **मधुकर भास्करराव जोशी** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया था कि अधिनियम की धारा 20 के अधीन उपधारणा करने के लिए आधार यह है कि परितोषण का संदाय या प्रतिग्रहण किया गया था । जब एक बार उक्त आधार सिद्ध हो जाता है, तो निकाला जाने वाला निष्कर्ष यह है कि उक्त परितोषण कोई पदीय कृत्य करने या करने से प्रविरत रहने के लिए "हेतु या इनाम" के रूप में प्रतिगृहीत किया गया था ।

58. **पी. सत्यनारायण मूर्ति** (उपरोक्त) वाले मामले को **राज्य** बनाम **डा. अनूप कुमार श्रीवास्तव**[2] वाले मामले में यह मत व्यक्त करते हुए निर्दिष्ट किया गया था कि जिस बात से अवैध परितोषण का गठन होता है वह एक विधि का प्रश्न है ; क्या दिए गए साक्ष्य के आधार पर अपराध कारित किया गया नहीं, यह एक तथ्य का प्रश्न है । अत: यदि रिश्वत की मांग और प्रतिग्रहण के संबंध में साक्ष्य से संदेह की गुंजाइश रहती है और निर्दोषिता की उपधारणा को पूरी तरह से नकारा नहीं जाता है, तो यह नहीं कहा जा सकता कि आरोप सिद्ध किया गया है । न्यायालय ने भी इस दांडिक विचारण में जहां न्यायालय से उसके समक्ष प्रस्तुत किए गए संपूर्ण अभिलेख और दस्तावेजों पर अपने मस्तिष्क का प्रयोग करने की प्रत्याशा की जाती है, आरोप विरचित करने के संबंध में मताभिव्यक्तियां की थीं । यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि मांग करने का सबूत अधिनियम की धारा 7 और धारा 13 के अधीन अपराध के लिए अपरिहार्य आवश्यकता है । उक्त मामले के तथ्यों के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया गया था कि मांग का अभाव था और अभियुक्त दोषमुक्त किए जाने का दायी है ।

---

[1] (2000) 8 एस. सी. सी. 571.

[2] (2017) 15 एस. सी. सी. 560.

59. निर्देश में उठाए गए सभी मामलों में, या तो शिकायतकर्ता की मृत्यु हो गई थी या अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन करने से इनकार किया गया था जिसके परिणामस्वरूप अधिनियम की धारा 20 के अधीन विधिक उपधारणा नहीं की गई थी और अभियुक्त की दोषिता को सिद्ध नहीं किया गया था ।

60. विद्वान् अपर महा-सालिसिटर और काउंसेलों ने हमारा ध्यान निम्नलिखित पूर्व-निर्णयों की ओर भी दिलाया :–

(i) **आंध्र प्रदेश राज्य** बनाम **वासुदेव राव**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने शिकायतकर्ता के उसकी मृत्यु के कारण अभाव में अभियुक्त को अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्ध करने के लिए अग्रसर हुआ और यह भी अभिनिर्धारित किया कि किसी निष्कर्ष पर पहुंचने के प्रयोजनार्थ न्यायालय साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के अधीन तथ्यात्मक उपधारणा का अवलंब ले सकता है । इस तथ्य को प्रत्यक्ष परिसाक्ष्य या पारिस्थितिक साक्ष्य द्वारा भी साबित किया जा सकता है ।

(ii) **किशन चंद मंगल** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने छाया साक्षी के साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि को कायम रखा था । इसी प्रकार **आंध्र प्रदेश राज्य** बनाम **वेंकटेश्वरलु**[2] वाले मामले में जब शिकायतकर्ता की विचारण के लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गई थी, तो इस न्यायालय ने अभियुक्त को अन्य साक्षियों के साक्ष्य का अवलंब लेकर दोषसिद्ध किया था क्योंकि अभियोजन पक्ष द्वारा मांग, प्रतिग्रहण और दूषित धन की बरामदगी के तथ्य को साबित किया गया था ।

(iii) पूर्वोक्त मामलों के विरोधाभास में, हमारा ध्यान **सेल्वराज** बनाम **कर्नाटक राज्य**[3] वाले मामले की ओर दिलाया गया, जिसमें शिकायतकर्ता की मृत्यु होने पर दोषमुक्ति का आदेश दिया गया था

---

[1] (2004) 9 एस. सी. सी. 319.

[2] (2015) 7 एस. सी. सी. 283.

[3] (2015) 10 एस. सी. सी. 230.

क्योंकि अभियुक्त को उसके कर्तव्य से मुक्त कर दिया गया था और कोई शासकीय कारबार करने के लिए सक्षम नहीं था और इस तथ्य के अतिरिक्त साक्षियों के वृत्तांत में विरोधाभास था ।

(iv) **ए. सुबैर** (उपरोक्त) वाले मामले में दोषमुक्ति इस आधार पर आधारित थी कि शिकायतकर्ता के साक्ष्य देने के अभाव में अवलंब लेने के लिए कोई अन्य साक्ष्य नहीं था ।

61. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री अरिस्टोटल ने यह भी दलील दी कि उन मामलों में जहां शिकायतकर्ता "पक्षद्रोही" हो जाता है, उसका साक्ष्य विलुप्त नहीं हो जाता है क्योंकि न्यायालय को भानपूर्वक यह अभिनिश्चित करना चाहिए कि किस सीमा तक उसने अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन किया है । किसी "पक्षद्रोही" साक्षी "शिकायतकर्ता" का साक्ष्य शिकायतकर्ता की मृत्यु हो जाने या शिकायतकर्ता की अनुपलब्धता की अपेक्षा एक अलग आधार पर स्थिर होता है । यह दलील दी गई कि जब शिकायतकर्ता "पक्षद्रोही" हो जाता है, तो छाया साक्षी का साक्ष्य एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा क्योंकि वह भी अवैध परितोषण की मांग के संबंध में प्राथमिक साक्ष्य दे सकता है । इसी प्रकार, **नयन कुमार शिवप्पा वाघमरे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले का इस तथ्य पर बल देने के लिए अवलंब लिया गया था कि यदि शिकायतकर्ता "पक्षद्रोही" हो जाता है, तो उपधारणा और अन्य साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि अनुज्ञेय है । दूसरी ओर, **बी. जयराज** (उपरोक्त) वाले मामले में दोषमुक्ति इस तथ्य पर आधारित थी कि शिकायतकर्ता "पक्षद्रोही" हो गया था और अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन करने के लिए कोई अन्य साक्ष्य नहीं था और इसलिए अभियुक्त के विरुद्ध साक्ष्य का अभाव था । **सी. पी. राव** (उपरोक्त) वाले मामले में दोषमुक्ति मात्र शिकायतकर्ता की अनुपलब्धता पर आधारित नहीं थी अपितु तथ्य यह था कि शिकायतकर्ता और अभियुक्त के बीच पूर्ववर्ती दुश्मनी थी और दोषमुक्ति का यह भी आधार था कि धन अभियुक्त के हाथों में ठूंस दिया गया था । इसी प्रकार, **एन. सुन्कन्ना** (उपरोक्त) वाले मामले में अभियुक्त को इस आधार पर दोषमुक्त किया गया था कि साक्षी

---

[1] (2015) 11 एस. सी. सी. 213.

"पक्षद्रोही" हो गया था और मांग साबित नहीं हुई थी । ऐसा ही **एम. आर. पुरुषोत्तम** (उपरोक्त) वाले मामले में था ।

62. विद्वान् काउंसेल श्री अरिस्टोटल ने **सी. एन. शर्मा** (उपरोक्त) वाले मामले के प्रति भी निर्देश किया, जिसमें दोषसिद्धि को कायम रखा गया था यद्यपि छाया साक्षी उस समय मौजूद नहीं था जब अवैध परितोषण के लिए मांग की गई थी और रकम का संदाय किया गया था तथा दूषित धन की बरामदगी हुई थी । ऐसा ही **प्रकाश चंद** बनाम **राज्य (दिल्ली प्रशासन)**[1] वाले मामले में जब छाया साक्षी "पक्षद्रोही" हो गया था, तो दोषसिद्धि अन्य साक्षियों के साक्ष्य के आधार पर की गई थी । अत: यहां तक कि किसी शिकायतकर्ता द्वारा अपना साक्ष्य न देने के अभाव में या शिकायतकर्ता के "पक्षद्रोही" हो जाने पर भी अभियोजन का पक्षकथन धराशायी नहीं होगा और अभियोजन पक्ष मामले को केवल युक्तियुक्त संदेह के परे साबित कर सकता है यदि मामले को साबित करने के लिए अन्य साक्ष्य है ।

63. निर्देशाधीन प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व, हम मामले के एक पहलू को स्पष्ट करना आवश्यक समझते हैं और वह "पक्षद्रोही साक्षी" के संबंध में है ।

64. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री नागमुथु ने दलील दी कि "पक्षद्रोही साक्षी" अभिव्यक्ति को अवश्य साक्ष्य अधिनियम की धारा 154 के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए । साक्ष्य अधिनियम की धारा 154 में यह उपबंधित है कि न्यायालय उस व्यक्ति को, जो साक्षी को बुलाता है, उस साक्षी से कोई ऐसे प्रश्न करने की अपने विवेकानुसार अनुज्ञा दे सकेगा, जो प्रतिपक्षी द्वारा प्रतिपरीक्षा में किए जा सकते हैं । इसमें यह भी उपबंधित है कि यह धारा इस प्रकार अनुज्ञात किए गए व्यक्ति को ऐसे साक्षी के साक्ष्य से किसी भाग का अवलंब लेने के लिए वंचित नहीं करती है । तुरंत संदर्भ के लिए, साक्ष्य अधिनियम की धारा 154 को नीचे उद्धृत किया जाता है :–

"**154. पक्षकार द्वारा अपने ही साक्षी से प्रश्न** – (1) न्यायालय

---

[1] (1979) 3 एस. सी. सी. 90.

उस व्यक्ति को, जो साक्षी को बुलाता है, उस साक्षी से कोई ऐसे प्रश्न करने की अपने विवेकानुसार अनुज्ञा दे सकेगा, जो प्रतिपक्षी द्वारा प्रतिपरीक्षा में किए जा सकते हैं ।

(2) इस धारा की कोई बात उपधारा 1 के अधीन इस प्रकार अनुज्ञात व्यक्ति को ऐसे साक्षी के साक्ष्य के किसी भाग का अवलंब लेने के लिए वंचित नहीं करेगी ।"

उक्त धारा तारीख 16 अप्रैल, 2006 से संशोधित की गई थी और उस तारीख से धारा 154 की उपधारा (2) जोड़ी गई थी जबकि मूल धारा को धारा 154 की उपधारा (1) के रूप में पुन: संख्यांकित किया गया था ।

65. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री नागमुथु ने दलील दी कि जब अभियोजन पक्ष किसी ऐसे साक्ष्य की परीक्षा करता है जो अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन नहीं करता है, तो उसे एक "पक्षद्रोही साक्षी" होना "घोषित" नहीं किया जा सकता और उसके साक्ष्य को पूर्णत: त्यक्त नहीं किया जा सकता । यद्यपि न्यायालय द्वारा साक्ष्य अधिनियम की धारा 154 की उपधारा (2) के अनुसार अभियोजन पक्ष को ऐसे साक्षी की प्रतिपरीक्षा किए जाने की अनुज्ञा दी जा सकती है, तो भी ऐसे साक्षी को एक "पक्षद्रोही साक्षी" घोषित करना आवश्यक नहीं है । ऐसा इसलिए है क्योंकि "पक्षद्रोही साक्षी" के कथन की उस सीमा तक परीक्षा की जा सकती है जिस सीमा तक यह अभियोजक के पक्षकथन का समर्थन करता है ।

66. इस संबंध में हमारा ध्यान **सतपाल** बनाम **दिल्ली प्रशासन**[1] वाले मामले की ओर दिलाया गया, जो अधिनियम, 1947 के अधीन उद्भूत मामला है जिसमें इस न्यायालय ने न्यायमूर्ति सरकारिया के माध्यम से निर्णय सुनाते हुए किसी पक्षद्रोही साक्षी की विश्वसनीयता के संबंध में महत्वपूर्ण मताभिव्यक्तियां की हैं । निर्णय के पैरा 30 में यह मत व्यक्त किया गया था कि "पक्षद्रोही साक्षी" "प्रतिकूल साक्षी", "अननुकूल साक्षी", "अनिच्छुक साक्षी" ये सभी पद इंगलिश विधि के पद

---

[1] [1976] 2 उम. नि. प. 1233 = (1976) 1 एस. सी. सी. 727.

हैं । कॉमन विधि में, यदि कोई साक्षी अपने व्यवहार, उत्तरों और रुख से उसे बुलाने वाले पक्षकार के उद्देश्य के प्रति स्पष्ट रूप से विरोधी रुख दिखलाता है, तो ऐसे पक्षकार को, साधारण नियम के तौर पर, ऐसे साक्षी के पूर्ववर्ती असंगत कथनों के जरिए उसका प्रतिवाद नहीं करने दिया जाता था और न ही उसके बुरे शील के साधारण साक्ष्य द्वारा उसकी विश्वसनीयता को अधिक्षिप्त करने की इजाजत थी । पैरा 33 में यह मत व्यक्त किया गया था कि इस नियम की कठोरता जो कि किसी पक्षकार को अपने ही साक्षी को अविश्वसनीय ठहराने या उसका प्रतिवाद करने से प्रतिषिध करता है, "पक्षद्रोही साक्षी" और "अननुकूल साक्षी" जैसे पद गढ़ कर तथा दोनों प्रवर्गों के बीच प्रभेद करने की कोशिश करके किसी सीमा तक शिथिल की गई थी । "पक्षद्रोही साक्षी" को ऐसे साक्षी के रूप में वर्णित किया गया है जो कि उसे बुलाने वाले पक्षकार की ओर से सच बात कहने का इच्छुक नहीं है, और "अननुकूल साक्षी" वह व्यक्ति होता है जिसको किसी पक्षकार ने विशिष्ट विवाद्यक तथ्य या विवाद्यक से सुसंगत तथ्य को साबित करने के लिए बुलाया हो, और जोकि ऐसा तथ्य साबित करने में असफल रहता है, या उसके विरुद्ध तथ्य साबित करता है । साक्ष्य अधिनियम की धारा 142 और धारा 154 के संदर्भ में इस न्यायालय ने पैरा 38 और 52 में निम्नलिखित मत व्यक्त किया था :–

> "38. "पक्षद्रोही साक्षी", "प्रतिकूल साक्षी", "अननुकूल साक्षी" पदो के अर्थ के संबंध में जो संविवाद है और जिसके परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड में पर्याप्त कठिनाई और मतभेद उत्पन्न हुए थे, ऐसा प्रतीत होता है कि उसे स्पष्ट करने के लिए भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 के रचयिताओं ने उन पदों में से किसी भी पद का उपयोग न करके उचित किया है जिससे कि भारत में किसी पक्षकार द्वारा अपने ही साक्षी की प्रतिपरीक्षा करने संबंधी इजाजत देना इस बात पर निर्भर न हो कि ऐसे साक्षी को "प्रतिकूल" या "पक्षद्रोही" साक्षी घोषित किया जाए । चाहे वह धारा 142 के अधीन सूचक प्रश्न करने संबंधी अनुज्ञा देने की बात हो या ऐसे प्रश्न पूछने संबंधी, जो भी प्रतिकूल पक्षकार प्रतिपरीक्षा में पूछ सकता है,

धारा 154 के अधीन इजाजत देने की बात हो, भारतीय साक्ष्य अधिनियम में यह बात पूरी तरह से न्यायालय के विवेकाधिकार पर छोड़ दी गई है । (देखिए – बैकुंठ नाथ **बनाम** प्रसन्नमयी, ए. आई. आर. 1922 पी. सी. 409 वाले मामले में सर लारेंस जेकिंस द्वारा व्यक्त मत) । न्यायालय को धारा 154 द्वारा जो विवेकाधिकार प्रदत्त किया गया है, वह बिना शर्त और अबाधित है, तथा "पक्षद्रोह" के किसी भी प्रश्न के अलावा है । उसका प्रयोग उदारता के साथ उस समय करना पड़ता है जब न्यायालय साक्षी के व्यवहार, मिज़ाज, रुख, हाव-भाव या मंतव्य तथा उसके उत्तरों की प्रवृत्ति से या उसके पूर्ववर्ती असंगत कथन को देखने से या अन्यथा भी यह समझता है कि ऐसी अनुज्ञा देना सच्चाई को निकालने तथा न्याय करने की दृष्टि से समीचीन है । ऐसी अनुज्ञा देने की बात साक्षी की सच्चाई के संबंध में न्यायालय द्वारा न्यायनिर्णयन करने की कोटि में नहीं आती है । अत: ऐसी अनुज्ञा देने के लिए ऐसी अभिव्यक्तियों जैसे कि "पक्षद्रोही घोषित", "अननुकूल घोषित" के प्रयोग से बचना अधिक अच्छा है जिसका महत्व ऐतिहासिक उलझनों से भरा पड़ा है, जिनके परिणामस्वरूप उनके प्रारंभ से ही भ्रम और विरोधी बातें उत्पन्न होती रही हैं और उनके परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड के न्यायालय बहुत दिनों तक परेशान होते रहे हैं ।

52. उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से यह बात स्पष्ट हो गई है कि दांडिक अभियोजन में भी जब न्यायालय की इजाजत से साक्षी को बुलाने वाला पक्षकार उसकी प्रतिपरीक्षा करता है और उसका प्रतिविरोध करता है तो विधि की दृष्टि से उसके साक्ष्य के बारे में यह नहीं माना जा सकता कि वह अभिलेख पर से पूर्णत: समाप्त हो गया है । प्रत्येक मामले में तथ्यों पर विचार करने वाले न्यायाधीश पर यह निर्भर है कि क्या ऐसी प्रतिपरीक्षा और प्रतिविरोध के परिणामस्वरूप साक्षी पूरी तरह से अविश्वसनीय हो गया है या उसके परिसाक्ष्य के किसी भाग के संबंध में उस पर अभी भी विश्वास किया जा सकता है । यदि न्यायाधीश यह

निष्कर्ष निकालता है कि प्रक्रिया के दौरान साक्षी का विश्वास पूरी तरह से समाप्त नहीं हुआ है, तो वह साक्षी के साक्ष्य को समझने और उस पर विचार करने के बाद संपूर्णत: सम्यक् सावधानी के साथ अभिलेख पर के अन्य साक्ष्य के संदर्भ में उसके परिसाक्ष्य के उस भाग को स्वीकार कर सकेगा जिसके बारे में वह यह निष्कर्ष निकालता है कि वह विश्वसनीय है और उसके अनुसार कार्रवाई कर सकेगा । यदि किसी विशिष्ट मामले में किसी साक्षी के संपूर्ण परिसाक्ष्य पर आक्षेप किया गया है और प्रक्रिया के दौरान वह साक्षी उचित रूप से और पूरी तरह से अविश्वसनीय ठहराया गया है, तो न्यायाधीश को चाहिए कि वह प्रज्ञा के तौर पर उसके साक्ष्य को पूरी तरह से त्यक्त कर दे ।"

67. अत: इस न्यायालय ने सचेत किया कि यदि किसी साक्षी को "पक्षद्रोही" समझा जाता है और उसकी प्रतिपरीक्षा की जाती है, तो उसके साक्ष्य को पूरी तरह से समाप्त नहीं किया जा सकता अपितु उस पर सम्यक् सावधानी और सतर्कता से विचार करना चाहिए और परिसाक्ष्य के कुछ भाग पर विचार और कार्रवाई की जानी चाहिए जो विश्वसनीय है । प्रज्ञा के तौर पर यह न्यायाधीश पर निर्भर है कि वह साक्ष्य पर उस सीमा तक विचार करे जो मामले के सबूत के प्रयोजन के लिए विश्वसनीय है । दूसरे शब्दों में, यह तथ्य कि कोई साक्षी "पक्षद्रोही" घोषित किया गया है, इसके परिणामस्वरूप उसका साक्ष्य स्वयमेव खारिज नहीं हो जाता है । यहां तक कि, किसी "पक्षद्रोही साक्षी" का साक्ष्य, यदि इसकी संपुष्टि मामले के तथ्यों से होती है, अभियुक्त की दोषिता का निर्णय करते समय विचार में लिया जा सकता है । इस प्रकार, किसी "पक्षद्रोही साक्षी" के परिसाक्ष्य पर, यदि उसकी संपुष्टि अन्य विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा हुई है, दोषसिद्धि करने के लिए कोई विधिक वर्जन नहीं है ।

68. पूर्वोक्त चर्चा से जो निकलकर आता है उसका सारांश निम्नलिखित है :–

(क) अभियुक्त लोक सेवक की अधिनियम की धारा 7 और धारा 13(1)(घ)(i)

और (ii) के अधीन दोषिता को सिद्ध करने के लिए लोक सेवक द्वारा अवैध परितोषण की मांग और प्रतिग्रहण का विवाद्यक तथ्य के रूप में अभियोजन पक्ष द्वारा सबूत दिया जाना अत्यावश्यक है ।

(ख) अभियुक्त की दोषिता को सिद्ध करने के लिए, अभियोजन पक्ष को पहले अवैध परितोषण की मांग को और इसके पश्चात् यथार्थत: इसके प्रतिग्रहण की बात को साबित करना चाहिए । इस विवाद्यक तथ्य को या तो प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा, जो मौखिक साक्ष्य की प्रकृति का हो सकता है या दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता है ।

(ग) इसके अतिरिक्त, विवाद्यक तथ्य अर्थात् अवैध परितोषण की मांग और प्रतिग्रहण के सबूत को प्रत्यक्ष मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के अभाव में पारिस्थितिक साक्ष्य द्वारा भी साबित किया जा सकता है ।

(घ) विवाद्यक तथ्य अर्थात् लोक सेवक द्वारा अवैध परितोषण की मांग और प्रतिग्रहण को साबित करने के लिए निम्नलिखित पहलुओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए –

(i) यदि लोक सेवक से कोई मांग किए बिना **रिश्वत देने वाले द्वारा संदाय करने की प्रस्थापना की जाती है** और लोक सेवक मात्र प्रस्थापना को प्रतिगृहीत करता है और अवैध परितोषण प्राप्त करता है, तो यह अधिनियम की धारा 7 के अनुसार एक **प्रतिग्रहण का मामला है ।** ऐसे मामले में लोक सेवक द्वारा पहले से मांग किए जाने की आवश्यकता नहीं है ।

(ii) दूसरी ओर, **यदि लोक सेवक मांग करता है** और रिश्वत देने वाला मांग को स्वीकार करता है और मांग किए गए परितोषण को देता है जो उसके पश्चात् लोक सेवक द्वारा प्राप्त किया जाता है, तो यह एक **अभिप्राप्ति का मामला है** । अभिप्राप्ति के मामले में, अवैध परितोषण के लिए पहले से

मांग लोक सेवक से उत्पन्न होती है । यह अधिनियम की धारा 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन अपराध है ।

(iii) उपरोक्त (i) और (ii) दोनों दशाओं में, क्रमश: रिश्वत देने वाले द्वारा प्रस्थापना और लोक सेवक द्वारा मांग को अभियोजन पक्ष द्वारा विवाद्यक तथ्य के रूप में साबित किया जाना चाहिए । दूसरे शब्दों में, अवैध परितोषण के मात्र प्रतिग्रहण या प्राप्ति से किसी और बात के बिना क्रमश: अधिनियम की धारा 7 या धारा 13(i)(घ), (i) और (ii) के अधीन अपराध नहीं बनेगा । अत: अधिनियम की धारा 7 के अधीन अपराध सिद्ध करने के लिए एक प्रास्थापना को होना अपेक्षित है जो रिश्वत देने वाले से उत्पन्न होती है और जिसे लोक सेवक द्वारा प्रतिगृहीत किया जाता है जिससे यह अपराध बन जाता है । इसी प्रकार, लोक सेवक द्वारा पहले से की गई मांग को जब रिश्वत देने वाले के द्वारा स्वीकार किया जाता है और बदले में संदाय किया जाता है जो लोक सेवक द्वारा प्राप्त किया जाता है, अधिनियम की धारा 13(i)(घ) और (i) तथा (ii) के अधीन अभिप्राप्ति का अपराध होगा ।

(ङ) अवैध परितोषण और प्रतिग्रहण या अभिप्राप्ति के संबंध में तथ्य की उपधारणा न्यायालय द्वारा अनुमान द्वारा केवल तभी की जा सकती है जब बुनियादी तथ्यों को सुसंगत मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा साबित किया गया है न कि इनके अभाव में । अभिलेख पर सामग्री के आधार पर न्यायालय को इस बात पर विचार करते समय कि क्या मांग के तथ्य को अभियोजन पक्ष द्वारा साबित किया गया है या नहीं, तथ्य की उपधारणा करने का विवेकाधिकार है । निस्संदेह, तथ्य की उपधारणा अभियुक्त द्वारा खंडन किए जाने के अध्यधीन है और खंडन के अभाव में उपधारणा बनी रहेगी ।

(च) उस दशा में जब शिकायतकर्ता 'पक्षद्रोही' हो जाता है, या मृत्यु हो गई है या विचारण के दौरान अपना साक्ष्य देने के लिए अनुपलब्ध

है, तो अवैध परितोषण की मांग को किसी अन्य साक्षी के साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता है जो पुन: या तो मौखिक रूप से या दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा साक्ष्य दे सकता है या अभियोजन पक्ष मामले को पारिस्थितिक साक्ष्य द्वारा सिद्ध कर सकता है । विचारण का उपशमन नहीं हो जाता है, न ही इसके परिणामस्वरूप अभियुक्त लोक सेवक की दोषमुक्ति का आदेश किया जाता है ।

(छ) जहां तक अधिनियम की धारा 7 का संबंध है, विवाद्यक तथ्य के सबूत के आधार पर धारा 20 न्यायालय को यह उपधारणा करने के लिए आदिष्ट करती है कि अवैध परितोषण उक्त धारा में यथा वर्णित हेतु या इनाम के प्रयोजन के लिए था । न्यायालय द्वारा उक्त उपधारणा एक विधिक उपधारणा या विधि की उपधारणा के रूप में की जानी चाहिए । निस्संदेह, उक्त उपधारणा भी खंडनीय है । धारा 20 धारा 13(i)(घ) (i) और (ii) को लागू नहीं होती है ।

(ज) हम स्पष्ट करते हैं कि अधिनियम की धारा 20 के अधीन विधि की उपधारणा ऊपर बिंदु (ड.) में निर्दिष्ट तथ्य की उपधारणा से भिन्न है क्योंकि विधि की उपधारणा एक आज्ञापक उपधारणा है जबकि तथ्य की उपधारणा वैवेकिक प्रकृति की है ।

69. पूर्वोक्त चर्चा और निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह निष्कर्ष है कि जब शिकायतकर्ता का प्रत्यक्ष साक्ष्य या शिकायतकर्ता का "प्राथमिक साक्ष्य" उसकी मृत्यु या किसी अन्य कारण से अनुपलब्ध है तो अधिनियम की धारा 7 या 13(i)(घ) (i) और (ii) के अधीन अपराधों के लिए दोषसिद्धि करने के लिए आवश्यक सबूत की प्रकृति और गुणवत्ता के संबंध में **बी. जयराज** (उपरोक्त) और **पी. सत्यनारायण मूर्ति** (उपरोक्त) वाले मामलों में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चयों का **एम. नरसिंग राव** (उपरोक्त) वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के साथ कोई विरोध नहीं है । विधि की उस स्थिति की भी चर्चा की गई है जब कोई शिकायतकर्ता या अभियोजन साक्षी "पक्षद्रोही" हो जाता है और ऊपर की गई मताभिव्यक्तियां साक्ष्य अधिनियम की धारा 154 को ध्यान में रखते हुए

तद्नुसार लागू होंगी । पूर्वोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि पूर्वोक्त तीनों मामलों के निर्णयों के बीच कोई विरोध नहीं है ।

70. तद्नुसार, इस संविधान न्यायपीठ के विचार के लिए निर्देशित प्रश्न का निम्नलिखित उत्तर दिया जाता है :

शिकायतकर्ता के साक्ष्य (प्रत्यक्ष/प्राथमिक, मौखिक/दस्तावेजी साक्ष्य) के अभाव में अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए **अन्य साक्ष्य** के आधार पर किसी लोक सेवक की अधिनियम की धारा 7 और अधिनियम की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 13(i)(घ) के अधीन अपराधिता/दोषिता का आनुमानिक निष्कर्ष निकालना अनुज्ञेय है ।

71. हम निदेश देते हैं कि भारत के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति के आदेश की ईप्सा करने के पश्चात् अलग-अलग मामलों पर समुचित न्यायपीठ के समक्ष विचार किया जाए ।

समापन करने से पूर्व, हमें आशा और विश्वास है कि शिकायतकर्ता तथा अभियोजन पक्ष यह सुनिश्चित करने के लिए भरसक प्रयास करें कि भ्रष्ट लोक सेवकों से जवाब-तलब और दोषसिद्ध किया जा सके जिससे प्रशासन और शासन भ्रष्टाचार से अप्रदूषित और मुक्त बन सके । इस संबंध में, हम उस बात को दोहराना चाहेंगे जो **स्वतंत्र सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा कही गई है :–

> "6. ..... भ्रष्टाचार राष्ट्र की महत्वपूर्ण शिराओं, लोक सेवा में दक्षता के तानेबाने को कैंसर की निष्क्रिय ग्रंथि की तरह नष्ट कर रहा है और ईमानदार अधिकारियों को हतोत्साहित कर रहा है । लोक सेवा की दक्षता में तभी सुधार लाया जा सकता है जब लोक सेवक पूरी तरह सचेत रहें और अपने कर्तव्य को परिश्रमपूर्वक, सच्चाई, ईमानदारी से करें और अपने पदीय कर्तव्यों को पूरा करने के लिए क्रमठता से स्वयं को समर्पित करें । भ्रष्टाचार की ख्याति अधिकारी के आचरण पर अदृश्य बादल की तरह फैल जाती है और

[1] (1997) 4 एस. सी. सी. 14.

काले धुंए से अधिक तेजी से बदनाम हो जाते हैं ।"

उपरोक्त को **ए. बी. भास्कर राव** बनाम **केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो**[1] वाले मामले में **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **शंभु दयाल**[2] वाले मामले से निम्नलिखित उद्धृत करते हुए दोहराया गया है :–

> "32. प्रत्यर्थी की इस प्रार्थना को स्वीकार करना कठिन है कि इस मामले में एक नरम दृष्टिकोण अपनाया जाए । लोक सेवकों द्वारा भ्रष्टाचार एक विकट समस्या बन गई है । यह चारों ओर फैल गई है । लोक क्रियाकलाप का कोई आयाम भ्रष्टाचार के शिकंजे से अछूता नहीं है । इसका संपूर्ण देश के कार्यों पर गहरा और व्यापक असर है । बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार से राष्ट्र निर्माण के क्रियाकलापों की गति धीमी पड़ जाती है और हर व्यक्ति को इसके कारण भुगतना पड़ता है ।"

हम सभी विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेलों तथा काउंसेलों और विद्वान् अपर महासालिसिटरों सहित अनुदेशी काउंसेलों की, जिन्होंने न्यायालय की सहायता की, सराहना करते हैं ।

निर्देश का उत्तर दिया गया ।

जस.

---

[1] (2011) 10 एस. सी. सी. 259.

[2] (2006) 8 एस. सी. सी. 693.

[2023] 1 उम. नि. प. 79

कोटक महिन्द्रा बैंक लि.

बनाम

गिरनार कोरुगेटर्स प्रा. लि. और अन्य

[2022 की सिविल अपील सं. 6662]

5 जनवरी, 2023

न्यायमूर्ति एम. आर. शाह और न्यायमूर्ति कृष्ण मुरारी

वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (2002 का 54) – धारा 13(2), 13(4), 14, 17 और 26ङ [सपठित सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम विकास अधिनियम, 2006 की धारा 15 से 23 और 24] – प्रतिभूत लेनदार के शोध्यों पर पूर्विकता – क्या वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम (सारफेसी अधिनियम) सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम विकास अधिनियम (एमएसएमईडी अधिनियम) पर अभिभावी होगा और क्या एमएसएमईडी अधिनियम के अधीन वसूली कार्यवाहियां/वसूलियां सारफेसी अधिनियम के उपबंधों के अधीन की गई वसूली कार्यवाहियों पर अभिभावी होंगी – सारफेसी अधिनियम की धारा 26ङ, जो एक पश्चात्वर्ती अधिनियमिति है, के सदृश संपूर्ण एमएसएमईडी अधिनियम में ऐसा कोई विनिर्दिष्ट उपबंध न होने के कारण जिसमें एमएसएमईडी अधिनियम के अधीन संदायों के लिए प्रतिभूत लेनदार के शोध्यों पर या केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकरण को संदेय किसी कर या उपकर पर 'पूर्विकता' दी गई हो, एमएसएमईडी अधिनियम के उपबंध सारफेसी अधिनियम पर अभिभावी नहीं होंगे और जिला मजिस्ट्रेट तथा मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट के लिए यह अपेक्षित है कि वह प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा लेने में प्रतिभूत लेनदार की सहायता करे तथा उन्हें प्रतिभूत लेनदार और ऋणी के बीच मामले का न्यायनिर्णयन करने की कोई अधिकारिता नहीं है और व्यथित पक्षकार सारफेसी अधिनियम की

धारा 17 के अधीन अपील/आवेदन फाइल करके ऋण वसूली अधिकरण में समावेदन कर सकता है ।

इस अपील के तथ्य इस प्रकार हैं कि मिशन विवाकेयर नामक कंपनी (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'ऋणी' कहा गया है) को अपीलार्थी बैंक-प्रतिभूत लेनदार द्वारा कतिपय उधार सुविधाएं प्रदान की गई थीं । विभिन्न उधार सुविधाओं को प्रतिभूत करने के लिए धार के एसईजेड क्षेत्र में स्थित भूखंड सं. 16 और 14 के साथ-साथ कतिपय जंगम और स्थावर आस्तियों को बंधक किया गया था । ऋण/उधार के संदाय में व्यतिक्रम के कारण बैंक ने प्रतिभूत आस्तियों के संबंध में सारफेसी अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन परिकल्पित वसूली कार्यवाहियां आरंभ कीं । बैंक-प्रतिभूत लेनदार ने प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा लेने के लिए सहायता की ईप्सा करते हुए जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (जिसे इसमें इसके पश्चात् सारफेसी अधिनियम कहा गया है) की धारा 14 के अधीन एक आवेदन फाइल किया । जिला मजिस्ट्रेट ने उपमंडल मजिस्ट्रेट, जिला धार को प्रतिभूत आस्तियों का खाली कब्जा लेने का निदेश देते हुए उक्त आवेदन मंजूर किया । तथापि, कोई कार्रवाई नहीं की गई और इसलिए बैंक ने जिला मजिस्ट्रेट और उपमंडल मजिस्ट्रेट को प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा लेने के आदेश के अननुपालन की शिकायत करते हुए आवेदन प्रस्तुत किए । अंततः, उपमंडल मजिस्ट्रेट ने जिला मजिस्ट्रेट के आदेश का अनुपालन करने और पुलिस की सहायता लेकर कब्जा अभिप्राप्त करने के लिए नायब तहसीलदार को निदेश जारी किया । नायब तहसीलदार ने कब्जा लेने और जिला मजिस्ट्रेट के आदेश का इस आधार पर अनुपालन करने से इनकार कर दिया कि प्रतिभूत आस्तियों से कतिपय रकम की वसूली के लिए एक वसूली कार्यवाही लंबित है और यह भी आधार लिया कि पूर्वोक्त दो प्रतिभूत आस्तियों से कतिपय रकम की वसूली के लिए प्रत्यर्थी सं. 1 (उच्च न्यायालय के समक्ष मूल प्रत्यर्थी सं. 4) के पक्ष में जारी वसूली प्रमाणपत्र पहले से लंबित है । प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में यह वसूली प्रमाणपत्र सुकरीकरण परिषद् (फेसिलिटेशन काउंसिल) द्वारा

पारित पंचाट के अनुसरण में जारी किए गए थे जो इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में था और एमएसएमईडी अधिनियम के उपबंधों के अधीन था । जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किए गए आदेश के अनुसरण में नायब तहसीलदार द्वारा प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा लेने से इनकार करते हुए पारित किए गए आदेश को उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष रिट याचिका फाइल करके चुनौती दी गई । जिला मजिस्ट्रेट द्वारा सारफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन पारित किए गए आदेश के अनुसरण में नायब तहसीलदार ने प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा लेने से इनकार करते हुए यह मत व्यक्त किया था कि सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम विकास अधिनियम (जिसे इसमें इसके पश्चात् एमएसएमईडी अधिनियम कहा गया है) का सारफेसी अधिनियम के पश्चात् अधिनियमित एक विशेष अधिनियमिति होने के कारण अध्यारोही प्रभाव होगा और इसलिए एमएसएमईडी अधिनियम सारफेसी अधिनियम पर अभिभावी होगा । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने बैंक-प्रतिभूत लेनदार द्वारा फाइल की गई रिट याचिका मंजूर की और नायब तहसीलदार द्वारा पारित किए गए आदेश को यह मत व्यक्त करते हुए अपास्त कर दिया कि सारफेसी अधिनियम के उपबंध अभिभावी होंगे और यदि प्रत्यर्थी सं. 1 जिला मजिस्ट्रेट द्वारा सारफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन पारित किए गए आदेश या सारफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन किए गए उपायों से व्यथित है, तो वह सारफेसी अधिनियम की धारा 17 के अधीन ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष अपील/आवेदन प्रस्तुत कर सकता है । विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए कि सारफेसी अधिनियम अभिभावी होगा, पारित किए गए निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 1, जिसके पक्ष में एमएसएमईडी अधिनियम के उपबंधों के अधीन एक पंचाट था और जिसके पक्ष में वसूली प्रमाणपत्र जारी किए गए थे, ने उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष रिट अपील फाइल की । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा उक्त अपील मंजूर की गई और विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश को अपास्त कर दिया तथा

यह मत व्यक्त किया कि एमएसएमईडी अधिनियम बाद की अधिनियमिति है इसलिए वह सारफेसी अधिनियम पर अभिभावी होगी । बैंक-प्रतिभूत लेनदार द्वारा उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम विकास (एमएसएमईडी) अधिनियम की धारा 15 से 23 में केवल विवाद का न्यायनिर्णयन करने के साथ-साथ संदाय की समय-सीमा और विलंब से संदाय करने की दशा में ब्याज जैसी कतिपय अन्य संविदात्मक और कारबार संबंधी शर्तों को पक्षकारों पर प्रवर्तित करने के लिए विशेष क्रियाविधि का उपबंध किया गया है । संपूर्ण एमएसएमईडी अधिनियम में, प्रतिभूत लेनदारों के शोध्यों पर या यथास्थिति, केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकरण को संदेय किसी कर या उपकर पर एमएसएमईडी अधिनियम के अधीन संदायों के लिए 'पूर्विकता' देते हुए कोई विनिर्दिष्ट अभिव्यक्त उपबंध नहीं है । इसके ठीक विपरीत, सारफेसी अधिनियम की धारा 26ड., जो वर्ष 2016 में संशोधन द्वारा अंत:स्थापित की गई है, में यह उपबंधित है कि तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट इससे असंगत किसी बात के होते हुए, प्रतिभूत हित के रजिस्ट्रीकरण के पश्चात्, किसी प्रतिभूत लेनदार को शोध्य ऋण सभी अन्य ऋणों और सभी राजस्व करों और उपकरों तथा केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकारी को संदेय अन्य ऋणों पर 'पूर्विकता' देते हुए संदत्त किए जाएंगे । तथापि, सारफेसी अधिनियम की धारा 26ड. के अनुसार ऋण के संदाय में प्रतिभूत लेनदारों को पूर्विकता दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता (आईबीसी) के उपबंधों के अध्यधीन होगी । अत: सुकरीकरण परिषद् द्वारा पारित डिक्री या आदेश के अनुसार एमएसएमईडी अधिनियम के अधीन शोध्यों के मुकाबले में प्रतिभूत लेनदार को शोध्य ऋणों को सारफेसी अधिनियम की धारा 26ड., जो कि एमएसएमईडी अधिनियम की अपेक्षा समय के हिसाब से एक पश्चात्वर्ती अधिनियमिति है, को ध्यान में रखते हुए पूर्विकता दी जाएगी । इस प्रक्रम पर, यह उल्लेखनीय है कि सारफेसी अधिनियम की धारा 26ड.,

जो वर्ष 2016 में अंत:स्थापित की गई है, में भी एक सर्वोपरि खंड है । यहां तक कि प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से दी गई दलील के अनुसार भी यदि दो अधिनियमितियों में प्रतिस्पर्धी सर्वोपरि उपबंध हैं और इनमें विरोध नहीं है, तब पश्चात्वर्ती कानून का सर्वोपरि खंड पूर्ववर्ती अधिनियमितियों पर अभिभावी होगा । विधि की स्थिर स्थिति के अनुसार, यदि विधानमंडल पश्चात्वर्ती अधिनियमिति के साथ एक सर्वोपरि खंड प्रदत्त करता है, तो इससे अभिप्रेत है कि विधानमंडल पश्चात्वर्ती/बाद की अधिनियमिति को अभिभावी करना चाहता था । इस प्रकार, सारफेसी अधिनियम की धारा 26ड. के अधीन प्रदत्त/उपबंधित 'पूर्विकता' एमएसएमईडी अधिनियम की वसूली क्रियाविधि पर अभिभावी होगी । पूर्वोक्त बात पर इस तथ्य के साथ विचार किया जाना चाहिए कि एमएसएमईडी अधिनियम के उपबंधों, विशिष्ट रूप से धारा 15 से 23 में सारफेसी अधिनियम की धारा 26ड. की तरह एमएसएमईडी अधिनियम के अधीन शोध्यों की बाबत किसी 'पूर्विकता' का उपबंध नहीं किया गया है । जैसा कि इसमें ऊपर मत व्यक्त किया गया है, एमएसएमईडी अधिनियम की धारा 15 से 23 में विवादों का न्यायनिर्णयन करने के लिए और प्रदायकर्ता तथा विक्रेता – सूक्ष्म या लघु उद्यम के बीच विवादों का न्यायनिर्णयन और निपटारा करने के लिए एक विशेष क्रियाविधि का उपबंध किया गया है । पुनरावृत्ति करते हुए, यह मत व्यक्त किया जाता है कि एमएसएमईडी अधिनियम सारफेसी अधिनियम की धारा 26ड. के सदृश प्रतिभूत लेनदार को शोध्य ऋण पर कोई पूर्विकता प्रदान नहीं करता है । अधिक से अधिक, सुकरीकरण परिषद् द्वारा पारित डिक्री/आदेश/पंचाट का उसी प्रकार निष्पादन किया जाएगा और सूक्ष्म या लघु उद्यम, जिसके पक्ष में सुकरीकरण परिषद् द्वारा पंचाट या डिक्री पारित की गई है, इसका अन्य ऋणों/लेनदारों की भांति निष्पादित करने का हकदार होगा । अत: एमएसएमईडी अधिनियम की धारा 24 के साथ पठित धारा 15 से 23 तक के उपबंधों और सारफेसी अधिनियम के उपबंधों पर विचार करते हुए दोनों अधिनियमितियों अर्थात् सारफेसी अधिनियम और एमएसएमईडी अधिनियम के बीच कोई विरोध नहीं है । इस प्रकार, जहां तक 'पूर्विकता'

के विनिर्दिष्ट विषय का संबंध है, दोनों स्कीमों अर्थात् एमएसएमईडी अधिनियम और सारफेसी अधिनियम के बीच कोई विरोध नहीं है । इस प्रक्रम पर, सारफेसी अधिनियम अधिनियमित करने के उद्देश्य और प्रयोजन पर विचार किया जाना आवश्यक है । सारफेसी अधिनियम वित्तीय आस्तियों के प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित के प्रवर्तन को विनियमित करने और सांपत्तिक अधिकारों पर सृजित प्रतिभूति हित के केंद्रीय डाटाबेस का उपबंध करने और उससे संसक्त या उनसे आनुषंगिक विषयों के लिए अधिनियमित किया गया है । अत: सारफेसी अधिनियम वित्तीय आस्तियों और प्रतिभूति हित के लिए विशिष्ट क्रियाविधि/उपबंध प्रदान करते हुए अधिनियमित किया गया है । प्रतिभूति हित जो प्रतिभूत लेनदार – वित्तीय संस्था के पक्ष में सृजित किया जाता है, के प्रवर्तन के लिए यह एक विशेष विधान है । अत: एमएसएमईडी अधिनियम के अधीन शोध्यों की पूर्विकता के लिए किसी विनिर्दिष्ट उपबंध के अभाव में यदि प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से दी गई यह दलील स्वीकार कर ली जाए कि एमएसएमईडी अधिनियम के अधीन शोध्य सारफेसी अधिनियम पर अभिभावी होंगे, तब उस मामले में न केवल विशेष अधिनियमिति/सारफेसी अधिनियम का उद्देश्य और प्रयोजन ही विफल हो जाएगा, यहां तक कि सारफेसी अधिनियम की धारा 26ड. के अंत:स्थापन द्वारा पश्चात्वर्ती अधिनियमिति भी विफल हो जाएगी । यदि प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से दी गई यह दलील स्वीकार की जाती है, तो उस दशा में सारफेसी अधिनियम की धारा 26ड. नगण्य और निरर्थक और/या बेकार हो जाएगी । कोई अन्य प्रतिकूल दृष्टिकोण सारफेसी अधिनियम की धारा 26ड. के उपबंध के साथ-साथ सारफेसी अधिनियम के उद्देश्य और प्रयोजन को भी विफल करने वाला होगा । अन्यथा भी, नायब तहसीलदार ने जिला मजिस्ट्रेट द्वारा सारफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन तारीख 24 सितंबर, 2014 को पारित किए गए आदेश के अनुसार प्रतिभूत आस्तियों/संपत्तियों का कब्जा न लेकर कतई न्यायोचित नहीं किया था । नायब तहसीलदार द्वारा सारफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन पारित आदेश के बावजूद प्रतिभूत आस्तियों/संपत्तियों का इस आधार पर कब्जा लेने से इनकार करना कि

सुकरीकरण परिषद् द्वारा पारित आदेशों की वसूली के लिए प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा जारी वसूली प्रमाणपत्र लंबित हैं, पूर्णत: अधिकारिता के बिना है । सारफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए, यहां तक कि प्रतिभूत लेनदार और ऋणी के बीच विवाद का न्यायनिर्णयन करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट को अधिकारिता नहीं है और/या जिला मजिस्ट्रेट और/या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट को भी अधिकारिता नहीं है । सारफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन यथास्थिति, जिला मजिस्ट्रेट या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट से यह अपेक्षित है कि प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा लेने में प्रतिभूत लेनदार की सहायता करे । सारफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन, न तो जिला मजिस्ट्रेट को और न ही महानगर मजिस्ट्रेट को प्रतिभूत लेनदार और ऋणी के बीच विवाद का न्यायनिर्णयन और/या विनिश्चय करने की कोई अधिकारिता होगी । यदि कोई व्यक्ति धारा 13 (4) के अधीन किए गए उपायों/धारा 14 के अधीन पारित किए गए आदेश से व्यथित है, तो व्यथित व्यक्ति को सारफेसी अधिनियम की धारा 17 के अधीन अपील/आवेदन के द्वारा ऋण वसूली अधिकरण में समावेदन करना चाहिए । अत: जिला मजिस्ट्रेट द्वारा सारफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन पारित किए गए आदेश के अनुसरण में नायब तहसीलदार द्वारा कब्जा लेने से इनकार करते हुए पारित किया गया आदेश पूरी तरह से अधिकारिता के बिना था और इसलिए वह भी अपास्त किए जाने योग्य है । उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए और ऊपर उल्लिखित अन्य कारणों से, उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश असंधार्य है और यह अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है । परिणामत:, यह अपील मंजूर की जाती है । मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, इंदौर की न्यायपीठ द्वारा 2017 की रिट अपील सं. 268 में तारीख 11 अगस्त, 2017 को पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश को अपास्त किया जाता है और विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश को तद्द्वारा प्रत्यावर्तित किया जाता है । यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया जाता है कि जहां तक प्रतिभूत आस्तियों के संबंध में सारफेसी अधिनियम के अधीन वसूलियों का संबंध

है, वे सुकरीकरण परिषद् द्वारा पारित पंचाट/डिक्री के अधीन रकम वसूल करने के लिए एमएसएमईडी अधिनियम के अधीन वसूलियों पर अभिभावी होंगी । विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा ठीक ही यह मत व्यक्त किया गया है कि यदि प्रत्यर्थी सं. 1 जिला मजिस्ट्रेट द्वारा सारफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन पारित किए गए आदेश से व्यथित है, तो वह सारफेसी अधिनियम की धारा 17 के अधीन कार्यवाहियां आरंभ करने के लिए स्वतंत्र होगा जिन पर विधि के अनुसार और इनके गुणागुण के आधार पर तथा धारा 17 के उपबंधों और सारफेसी अधिनियम के अधीन उपबंधों के अध्यधीन विचार किया जाएगा । (पैरा 7, 8, 9, 10 और 11)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2008] (2008) 8 एस. सी. सी. 148 :

बैंक ऑफ इंडिया बनाम **चेतन पारिख और अन्य** । 2.1

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2022 की सिविल अपील सं. 6662.

2017 की रिट अपील सं. 248 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, इंदौर न्यायपीठ द्वारा तारीख 11 अगस्त, 2017 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री अमर दवे, हिमांशु भूषण और कृष्णायन सेन

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री सौरभ मिश्रा, अपर महाधिवक्ता, निरंजन रेड्डी, ज्येष्ठ अधिवक्ता, पुलकित तरे, आदित्य शेखर, अभिषेक शर्मा, सन्नी चौधरी, शिव सागर तिवारी और अर्जुन गर्ग

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एम. आर. शाह ने दिया ।

न्या. शाह – यह अपील प्रतिभूत लेनदार-कोटक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड ने 2017 की रिट अपील सं. 248 में मध्य प्रदेश उच्च

न्यायालय, इंदौर की खंड न्यायपीठ द्वारा तारीख 11 अगस्त, 2017 को पारित उस आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर फाइल की है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा फाइल की गई उक्त अपील मंजूर की और विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को अभिखंडित और अपास्त कर दिया तथा यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया कि सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम विकास अधिनियम, 2006 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'एमएसएमईडी अधिनियम' कहा गया है) वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'सारफेसी अधिनियम' कहा गया है) पर अभिभावी होगा । इस अपील के तथ्य संक्षेप में निम्नलिखित हैं :

1.1 मिशन विवाकेयर नामक कंपनी (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'ऋणी' कहा गया है) को अपीलार्थी बैंक-प्रतिभूत लेनदार द्वारा कतिपय उधार सुविधाएं प्रदान की गई थीं । विभिन्न उधार सुविधाओं को प्रतिभूत करने के लिए धार के एसईजेड क्षेत्र में स्थित भूखंड सं. 16 और 14 के साथ-साथ कतिपय जंगम और स्थावर आस्तियों को बंधक किया गया था ।

1.2 ऋण/उधार के संदाय में व्यतिक्रम के कारण बैंक ने प्रतिभूत आस्तियों के संबंध में सारफेसी अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन परिकल्पित वसूली कार्यवाहियां आरंभ कीं । बैंक-प्रतिभूत लेनदार ने प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा लेने के लिए सहायता की ईप्सा करते हुए तारीख 17 जून, 2014 को जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष सारफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन एक आवेदन फाइल किया । जिला मजिस्ट्रेट ने तारीख 24 सितंबर, 2014 के आदेश द्वारा उपमंडल मजिस्ट्रेट, जिला धार को प्रतिभूत आस्तियों का खाली कब्जा लेने का निदेश देते हुए उक्त आवेदन मंजूर किया । तथापि, कोई कार्रवाई नहीं की गई और इसलिए बैंक ने जिला मजिस्ट्रेट और उपमंडल मजिस्ट्रेट को प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा लेने के आदेश के अननुपालन की शिकायत करते हुए आवेदन प्रस्तुत किए । अंततः, उपमंडल मजिस्ट्रेट ने जिला

मजिस्ट्रेट के आदेश का अनुपालन करने और पुलिस की सहायता लेकर कब्जा अभिप्राप्त करने के लिए तारीख 7 नवंबर, 2015 की संसूचना द्वारा नायब तहसीलदार को निदेश जारी किया । उसके पश्चात् तारीख 21 मार्च, 2016 के आदेश द्वारा नायब तहसीलदार ने कब्जा लेने और तारीख 29 सितंबर, 2014 के आदेश का इस आधार पर अनुपालन करने से इनकार कर दिया कि प्रतिभूत आस्तियों से कतिपय रकम की वसूली के लिए एक वसूली कार्यवाही लंबित है और यह भी आधार लिया कि पूर्वोक्त दो प्रतिभूत आस्तियों से कतिपय रकम की वसूली के लिए प्रत्यर्थी सं. 1 (उच्च न्यायालय के समक्ष मूल प्रत्यर्थी सं. 4) के पक्ष में जारी वसूली प्रमाणपत्र पहले से लंबित है । इस प्रक्रम पर, यह उल्लेखनीय है कि प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में वसूली प्रमाणपत्र सुकरीकरण परिषद् (फेसिलिटेशन काउंसिल) द्वारा पारित पंचाट के अनुसरण में जारी किए गए थे जो इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में था और एमएसएमईडी अधिनियम के उपबंधों के अधीन था । जिला मजिस्ट्रेट द्वारा तारीख 24 सितंबर, 2014 को पारित किए गए आदेश के अनुसरण में नायब तहसीलदार द्वारा प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा लेने से इनकार करते हुए पारित किया गया आदेश उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष 2016 की रिट याचिका सं. 2569 द्वारा रिट याचिका की विषयवस्तु था । जिला मजिस्ट्रेट द्वारा सारफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन पारित किए गए आदेश के अनुसरण में नायब तहसीलदार ने प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा लेने से इनकार करते हुए यह मत व्यक्त किया था कि एमएसएमईडी अधिनियम का सारफेसी अधिनियम के पश्चात् अधिनियमित एक विशेष अधिनियमिति होने के कारण अध्यारोही प्रभाव होगा और इसलिए एमएसएमईडी अधिनियम सारफेसी अधिनियम पर अभिभावी होगा ।

1.3 विद्वान् एकल न्यायाधीश ने बैंक-प्रतिभूत लेनदार द्वारा फाइल की गई रिट याचिका मंजूर की और नायब तहसीलदार द्वारा पारित किए गए आदेश को यह मत व्यक्त करते हुए अपास्त कर दिया कि सारफेसी अधिनियम के उपबंध अभिभावी होंगे और यदि प्रत्यर्थी सं. 1 जिला मजिस्ट्रेट द्वारा सारफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन पारित किए

गए आदेश या सारफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन किए गए उपायों से व्यथित है, तो वह सारफेसी अधिनियम की धारा 17 के अधीन ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष अपील/आवेदन प्रस्तुत कर सकता है ।

1.4 विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए कि सारफेसी अधिनियम अभिभावी होगा, पारित किए गए निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 1, जिसके पक्ष में एमएसएमईडी अधिनियम के उपबंधों के अधीन एक पंचाट था और जिसके पक्ष में वसूली प्रमाणपत्र जारी किए गए थे, ने उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष वर्तमान रिट अपील फाइल की । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा उक्त अपील मंजूर की और विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश को अपास्त कर दिया तथा यह मत व्यक्त किया कि एमएसएमईडी अधिनियम बाद की अधिनियमिति है इसलिए वह सारफेसी अधिनियम पर अभिभावी होगी ।

1.5. बैंक-प्रतिभूत लेनदार ने उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए कि एमएसएमईडी अधिनियम बाद की अधिनियमिति होने के कारण सारफेसी अधिनियम पर अभिभावी होगी, पारित निर्णय और आदेश से व्यथित होकर यह अपील फाइल की है ।

2. अपीलार्थी बैंक-प्रतिभूत लेनदार की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री अमर दवे ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि सारफेसी अधिनियम और एमएसएमईडी अधिनियम के उपबंधों के बीच कोई विरोध नहीं है । यह दलील दी गई कि एमएसएमईडी अधिनियम अर्थात् धारा 24 में सर्वोपरि खंड में यह उपबंधित है कि धारा 15 से 23 के अधीन उपबंध तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट इससे असंगत किसी बात के होते हुए प्रभावी होंगे । यह दलील दी गई कि एमएसएमईडी अधिनियम की धारा 15 से 23 में विवाद का न्यायनिर्णयन करने के साथ-साथ संदाय की समय-सीमा और विलंब से संदाय करने की दशा में ब्याज जैसी कतिपय अन्य संविदात्मक और कारबार संबंधी शर्तों को पक्षकारों पर प्रवर्तित करने के लिए केवल विशेष

क्रियाविधि का उपबंध किया गया है । यह दलील दी गई कि एमएसएमईडी अधिनियम की धारा 15 से 23 तक की उक्त स्कीम के परिशीलन से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि प्रतिभूत लेनदारों के शोध्यों पर या, यथास्थिति, केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकरण को संदेय किसी कर या उपकर पर एमएसएमईडी अधिनियम के अधीन संदायों के लिए कोई अभिव्यक्त 'पूर्विकता' होने की बात परिकल्पित नहीं है । यह दलील दी गई कि इस आशय का उपबंध भानपूर्वक उपबंधित नहीं किया गया है । यह दलील दी गई कि इसके ठीक विपरीत, सारफेसी अधिनियम की स्कीम, जिसमें इसकी धारा 26ड. सम्मिलित है, के परिशीलन से संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती है कि विधानमंडल ने शोध्यों के संदाय की 'पूर्विकता' के मुद्दे पर अनन्य रूप से अभिव्यक्त और असंदिग्ध रूप से एक विधिक ढांचे का उपबंध किया है । यह दलील दी गई कि कतिपय अन्य विधानों की दशा में, उस रीति के लिए अभिव्यक्त उपबंध किया गया है जिस रीति में तद्धीन शोध्यों का या तो संपत्ति पर प्रभार या अन्य शोध्यों पर 'पूर्विकता' हो सकेगी । महाराष्ट्र मूल्य वर्धित कर अधिनियम, 2002 ; कर्मचारी भविष्य निधि और प्रकीर्ण उपबंध अधिनियम, 1952 ; केरल साधारण विक्रय कर अधिनियम, 1963 ; कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 ; केंद्रीय उत्पाद-शुल्क अधिनियम, 1944 ; प्रतिभूत हित का प्रवर्तन और वसूली ऋण विधियां और प्रकीर्ण उपबंध (संशोधन) अधिनियम, 2016 आदि के उपबंधों के प्रति निर्देश किया गया । यह दलील दी गई कि ऐसे अभिव्यक्त उपबंधों के अभाव में, संदायों की 'पूर्विकता' के संबंध में एमएसएमईडी अधिनियम के अधीन ऐसी विनिर्दिष्ट स्कीम की तुलना में सारफेसी अधिनियम की विनिर्दिष्ट स्कीम की अनदेखी करने के लिए कोई आधार नहीं हो सकता है । यह दलील दी गई कि प्रतिभूत लेनदारों के शोध्यों या सरकारी शोध्यों के अतिरिक्त किसी ऐसी 'पूर्विकता' के बारे में अभिव्यक्त और असंदिग्ध रूप से उपबंध किया जाना चाहिए और इसे विवक्षित तौर पर नहीं पढ़ा जा सकता । यह दलील दी गई कि इस दृष्टिकोण से देखते हुए, वास्तव में, जहां तक 'पूर्विकता' के विनिर्दिष्ट विषय का संबंध है, दोनों स्कीमों अर्थात् एमएसएमईडी अधिनियम और

सारफेसी अधिनियम के बीच कोई विरोध नहीं है ।

2.1 यह भी दलील दी गई कि सारफेसी अधिनियम की धारा 26ड. वर्ष 2016 में संशोधन द्वारा बाद में अंत:स्थापित होने के कारण सारफेसी अधिनियम की धारा 26ड. में का सर्वोपरि खंड एमएसएमईडी अधिनियम के उपबंधों पर अभिभावी होगा । **बैंक ऑफ इंडिया** बनाम **चेतन पारिख और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय (पैरा 28) का अवलंब लिया गया ।

2.2 उपरोक्त दलीलें देते हुए वर्तमान अपील को मंजूर करने और खंड न्यायपीठ द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश को अपास्त करने तथा विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए कि सारफेसी अधिनियम के अधीन वसूलियों को एमएसएमईडी अधिनियम के अधीन वसूलियों पर पूर्विकता दी जाएगी, पारित निर्णय और आदेश को प्रत्यावर्तित करने का निवेदन किया गया ।

3. प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री निरंजन रेड्डी द्वारा वर्तमान अपील का जोरदार रूप से विरोध किया गया ।

3.1 प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि एमएसएमईडी अधिनियम लघु और मध्यम स्तर के उद्यमों के संवर्धन और संरक्षा के लिए अधिनियमित किया गया है जो कई सारे नागरिकों की आजीविका का स्रोत है और इसका सकल घरेलू उत्पाद के लिए 27 प्रतिशत का योगदान है । अत: यह दलील दी गई कि शोध्यों की वसूली के लिए आक्रामक उपबंध लाए गए थे और एमएसएमईडी अधिनियम में चक्रवृद्धि ब्याज दिया गया है जो किसी अन्य विधान में मौजूद नहीं है और यह एक फायदाग्राही विधान है । अत: यह दलील दी गई कि एमएसएमईडी अधिनियम की धारा 24 को ध्यान में रखते हुए, जिसमें अन्य विद्यमान विधियों पर अध्यारोही प्रभाव होने का उपबंध किया गया है, एमएसएमईडी अधिनियम के अधीन वसूलियों के संबंध में उपबंध सारफेसी अधिनियम

---

[1] (2008) 8 एस. सी. सी. 148.

के अधीन वसूलियों पर अभिभावी होंगे ।

3.2 यह दलील दी गई कि वित्तीय संस्थाओं के पास वसूली के विभिन्न अन्य साधन हैं जिनमें सारफेसी अधिनियम, आईबीसी अधिनियम आदि सम्मिलित हैं, जो कतिपय मामलों में एक सीमा तक प्रतिभूत लेनदार होने के कारण कंपनी के निदेशकों से भी व्यक्तिगत गारंटी लेते हैं । तथापि, व्यक्तिगत गारंटी आदि लेने की ऐसी स्वतंत्रता सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों (एमएसएमई) के लिए उपलब्ध नहीं है और वे शोध्यों की वसूली के लिए पूर्ण रूप से एमएसएमईडी अधिनियम पर निर्भर हैं और इस तरह पंचाट के आधार पर वसूली एकमात्र तरीका है जो सुकरीकरण परिषद् से डिक्री की प्रकृति का है । यह दलील दी गई कि उपर्युक्त संदर्भ में, एमएसएमईडी अधिनियम की धारा 24 के अधीन एक अध्यारोही उपबंध प्रदान किया गया है ।

3.3 यह दलील दी गई कि एमएसएमईडी अधिनियम की धारा 24 में अन्य विद्यमान विधियों पर एक अध्यारोही प्रभाव का उपबंध किया गया है । यह दलील दी गई कि एमएसएमईडी अधिनियम की धारा 15 से 23 तक के उपबंध तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट इससे असंगत किसी बात के होते हुए प्रभावी होंगे । यह दलील दी गई कि अध्याय 5 – धारा 15 से 23 के अधीन उपबंधों की संपूर्ण स्कीम, जिसमें विलंबित संदाय, शोध्य रकम की वसूली और सुकरीकरण परिषद् की स्थापना और इसके पंचाट सम्मिलित हैं, का सारफेसी अधिनियम सहित सभी अन्य विधानों पर अध्यारोही प्रभाव है । अत: यह दलील दी गई सुकरीकरण परिषद् के पंचाट का भी धारा 24 के फलस्वरूप एक अध्यारोही प्रभाव है । यह दलील दी गई कि विधानमंडल का आशय स्पष्ट है क्योंकि अध्यारोही उपबंध एमएसएमईडी अधिनियम के अधीन उपबंधित विलंबित संदायों की वसूली के एक विशिष्ट समूह के लिए है जो एमएसएमईडी अधिनियम के उद्देश्य और प्रयोजन के भी अनुरूप है ।

3.4 यह भी दलील दी गई कि एमएसएमईडी अधिनियम एक पश्चात्वर्ती विधान है और विधानमंडल ने उद्देश्यपूर्वक और जानते हुए एमएसएमईडी अधिनियम की धारा 24 का उपबंध करके उस प्रासंगिक समय पर विद्यमान सभी वसूली प्रक्रियाओं को इसके सर्वोपरि खंड द्वारा

अधिक्रांत किया है । यह दलील दी गई कि यदि विधि की उक्त स्थिति का कोई प्रतिकूल निर्वचन किया जाता है, तो उससे धारा 24 निरर्थक हो जाएगी, जो किसी भी तरह से विधायिका का आशय नहीं है । यह दलील दी गई कि यदि सारफेसी अधिनियम को एमएसएमईडी अधिनियम पर अध्यारोही प्रभाव दिया जाता है, तो इससे सुकरीकरण परिषद् का पंचाट उन सभी मामलों में गैर-निष्पादनीय हो जाएगा जहां कोई प्रतिभूत लेनदार है । यह दलील दी गई कि इससे सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों (एमएसएमई) का अस्तित्व और विकास गंभीर रूप से प्रभावित होगा और यह एमएसएमईडी अधिनियम के उद्देश्य के भी विरूद्ध है ।

3.5 यह दलील दी गई कि इस न्यायालय द्वारा अनेक विनिश्चयों में अधिकथित की गई विधि के अनुसार, यदि दो अधिनियमितियों में प्रतिस्पर्धी सर्वोपरि खंड हैं और कोई विरोध नहीं है, तब पश्चात्वर्ती कानून का सर्वोपरि खंड पूर्ववर्ती अधिनियमिति पर अभिभावी होगा । अत: यह दलील दी गई कि सिद्धांत यह होगा कि न्यायालय को दोनों विशेष अधिनियमों के उद्देश्यों पर विचार करना होगा । यह दलील दी गई कि यदि विधानमंडल ने बाद के अधिनियम में एक सर्वोपरि खंड प्रदत्त किया है, तो इससे अभिप्रेत है कि विधानमंडल उस अधिनियमिति को अभिभावी करना चाहता है । अत: यह दलील दी गई कि एमएसएमईडी अधिनियम अर्थात् धारा 24 में सर्वोपरि खंड सुसंगत समय पर प्रवृत्त सभी अन्य विधियों को अध्यारोही करते हुए, समय के हिसाब से बाद में अधिनियमित होने के कारण, सारफेसी अधिनियम की वसूली क्रियाविधि पर अभिभावी होगा ।

3.6 यह दलील दी गई कि मध्य प्रदेश राज्य ने एमएसएमईडी अधिनियम की धारा 21 की उपधारा (3) के साथ पठित धारा 30 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए शोध्य रकमों की वसूली के लिए अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया के लिए 'मध्य प्रदेश सूक्ष्म और लघु उद्यम सुकरीकरण परिषद् नियम, 2006' के रूप में ज्ञात नियम बनाए हैं । यह दलील दी गई कि उक्त नियमों में एमएसएमईडी अधिनियम के उपबंधों के अधीन पारित डिक्री, पंचाट या आदेश संबंधित जिला के कलेक्टर द्वारा निष्पादित किया जाएगा और शोध्य रकम भू-

राजस्व के बकाया के रूप में वसूल की जाएगी । यह दलील दी गई कि मध्य प्रदेश भू-राजस्व संहिता, 1959 की धारा 137 के अनुसार, भू-राजस्व का विषयांतर्गत संपत्ति से शोध्यों की वसूली के आगमों पर प्रथम प्रभार होगा । यह दलील दी गई कि सारफेसी अधिनियम में यह उपबंधित नहीं है कि इसकी किसी डिक्री/या डिक्रीधारी के पंचाट पर अग्रता होगी ।

3.7 यह दलील दी गई कि दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता (आईबीसी), 2016 की धारा 240क सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों (एमएसएमई) को दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता (आईबीसी), 2016 की धारा 29क के कतिपय उपबंधों का अपवाद प्रदान करती है । यह दलील दी गई कि यह एक स्थिर विधि है कि दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता (आईबीसी), 2016 सारफेसी अधिनियम को अध्यारोही करेगी और इसलिए उक्त संदर्भ में भी एमएसएमईडी अधिनियम की सारफेसी अधिनियम पर अग्रता हो सकती है ।

3.8 यह भी दलील दी गई कि एमएसएमईडी अधिनियम राज्य की कल्याणकारी नीति का एक विस्तार है और इस पर लघु और मध्यम स्तर के उद्यमों के व्यापक लोकहित तथा उनके अस्तित्व के साधनों के संतुलन के लिए विचार किए जाने की आवश्यकता हो सकती है । अत: यह दलील दी गई कि लघु और मध्यम स्तर के उद्यमों के अस्तित्व के हित के संतुलन को बनाए रखने के लिए यह निवेदन है कि इसके उपबंधों का निर्वचन लघु और मध्यम स्तर के उद्यमों के पक्ष में किया जाए और यह अभिनिर्धारित किया जाए कि एमएसएमईडी अधिनियम के अधीन वसूलियां सारफेसी अधिनियम के अधीन वसूलियों पर अभिभावी होंगी ।

3.9 उपरोक्त दलीलें देते हुए वर्तमान अपील को खारिज करने का निवेदन किया गया ।

4. संबंधित पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेलों को विस्तारपूर्वक सुना ।

5. इस न्यायालय के विचार के लिए उठाया गया संक्षिप्त प्रश्न यह

है कि क्या एमएसएमईडी अधिनियम सारफेसी अधिनियम पर अभिभावी होगा ? प्रश्न यह है कि क्या एमएसएमईडी अधिनियम के अधीन वसूली कार्यवाहियां/वसूलियां सारफेसी अधिनियम के उपबंधों के अधीन की गई वसूलियों/वसूली कार्यवाहियों पर अभिभावी होंगी ?

6. प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से यह पक्षकथन है कि सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम विकास (एमएसएमईडी) अधिनियम की धारा 24 को ध्यान में रखते हुए, जिसमें यह उपबंधित है कि एमएसएमईडी अधिनियम की धारा 15 से 23 तक के उपबंधों का अध्यारोही प्रभाव होगा और इसके उपबंध तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट इससे असंगत किसी बात के होते हुए प्रभावी होंगे और इस तथ्य को भी ध्यान में रखते हुए कि सारफेसी अधिनियम की अपेक्षा एमएसएमईडी अधिनियम एक पश्चात्वर्ती अधिनियम होने के कारण एमएसएमईडी अधिनियम सारफेसी अधिनियम पर अभिभावी होगा ।

7. उपरोक्त दलीलों का मूल्यांकन करते हुए, यह मूल्यांकन किया जाना अपेक्षित है कि एमएसएमईडी अधिनियम की धारा 15 से 23 में केवल विवाद का न्यायनिर्णयन करने के साथ-साथ संदाय की समय-सीमा और विलंब से संदाय करने की दशा में ब्याज जैसी कतिपय अन्य संविदात्मक और कारबार संबंधी शर्तों को पक्षकारों पर प्रवर्तित करने के लिए विशेष क्रियाविधि का उपबंध किया गया है । संपूर्ण एमएसएमईडी अधिनियम में, प्रतिभूत लेनदारों के शोध्यों पर या, यथास्थिति, केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकरण को संदेय किसी कर या उपकर पर एमएसएमईडी अधिनियम के अधीन संदायों के लिए 'पूर्विकता' देते हुए कोई विनिर्दिष्ट अभिव्यक्त उपबंध नहीं है । इसके ठीक विपरीत, सारफेसी अधिनियम की धारा 26ड., जो वर्ष 2016 में संशोधन द्वारा अंत:स्थापित की गई है, में यह उपबंधित है कि तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट इससे असंगत किसी बात के होते हुए, प्रतिभूत हित के रजिस्ट्रीकरण के पश्चात्, किसी प्रतिभूत लेनदार को शोध्य ऋण सभी अन्य ऋणों और सभी राजस्व करों और उपकरों तथा केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकारी को संदेय अन्य ऋणों पर 'पूर्विकता' देते हुए संदत्त किए जाएंगे । तथापि, सारफेसी अधिनियम की

धारा 26ङ. के अनुसार ऋण के संदाय में प्रतिभूत लेनदारों को पूर्विकता दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता (आईबीसी) के उपबंधों के अध्यधीन होगी । अत: सुकरीकरण परिषद् द्वारा पारित डिक्री या आदेश के अनुसार एमएसएमईडी अधिनियम के अधीन शोध्यों के मुकाबले में प्रतिभूत लेनदार को शोध्य ऋणों को सारफेसी अधिनियम की धारा 26ङ, जो कि एमएसएमईडी अधिनियम की अपेक्षा समय के हिसाब से एक पश्चात्वर्ती अधिनियमिति है, को ध्यान में रखते हुए पूर्विकता दी जाएगी । इस प्रक्रम पर, यह उल्लेखनीय है कि सारफेसी अधिनियम की धारा 26ङ, जो वर्ष 2016 में अंत:स्थापित की गई है, में भी एक सर्वोपरि खंड है । यहां तक कि प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से दी गई दलील के अनुसार भी यदि दो अधिनियमितियों में प्रतिस्पर्धी सर्वोपरि उपबंध हैं और इनमें विरोध नहीं है, तब पश्चात्वर्ती कानून का सर्वोपरि खंड पूर्ववर्ती अधिनियमितियों पर अभिभावी होगा । विधि की स्थिर स्थिति के अनुसार, यदि विधानमंडल पश्चात्वर्ती अधिनियमिति के साथ एक सर्वोपरि खंड प्रदत्त करता है, तो इससे अभिप्रेत है कि विधानमंडल पश्चात्वर्ती/बाद की अधिनियमिति को अभिभावी करना चाहता था । इस प्रकार, सारफेसी अधिनियम की धारा 26ङ के अधीन प्रदत्त/उपबंधित 'पूर्विकता' एमएसएमईडी अधिनियम की वसूली क्रियाविधि पर अभिभावी होगी । पूर्वोक्त बात पर इस तथ्य के साथ विचार किया जाना चाहिए कि एमएसएमईडी अधिनियम के उपबंधों, विशिष्ट रूप से धारा 15 से 23 में सारफेसी अधिनियम की धारा 26ङ की तरह एमएसएमईडी अधिनियम के अधीन शोध्यों की बाबत किसी 'पूर्विकता' का उपबंध नहीं किया गया है ।

8. जैसा कि इसमें ऊपर मत व्यक्त किया गया है, एमएसएमईडी अधिनियम की धारा 15 से 23 में विवादों का न्यायनिर्णयन करने के लिए और प्रदायकर्ता तथा विक्रेता – सूक्ष्म या लघु उद्यम के बीच विवादों का न्यायनिर्णयन और निपटारा करने के लिए एक विशेष क्रियाविधि का उपबंध किया गया है । पुनरावृत्ति करते हुए, यह मत व्यक्त किया जाता है कि एमएसएमईडी अधिनियम सारफेसी अधिनियम की धारा 26ङ के सदृश प्रतिभूत लेनदार को शोध्य ऋण पर कोई

पूर्विकता प्रदान नहीं करता है । अधिक से अधिक, सुकरीकरण परिषद् द्वारा पारित डिक्री/आदेश/पंचाट का उसी प्रकार निष्पादन किया जाएगा और सूक्ष्म या लघु उद्यम, जिसके पक्ष में सुकरीकरण परिषद् द्वारा पंचाट या डिक्री पारित की गई है, इसका अन्य ऋणों/लेनदारों की भांति निष्पादित करने का हकदार होगा । अत: एमएसएमईडी अधिनियम की धारा 24 के साथ पठित धारा 15 से 23 तक के उपबंधों और सारफेसी अधिनियम के उपबंधों पर विचार करते हुए दोनों अधिनियमितियों अर्थात् सारफेसी अधिनियम और एमएसएमईडी अधिनियम के बीच कोई विरोध नहीं है । इस प्रकार, जहां तक 'पूर्विकता' के विनिर्दिष्ट विषय का संबंध है, दोनों स्कीमों अर्थात् एमएसएमईडी अधिनियम और सारफेसी अधिनियम के बीच कोई विरोध नहीं है ।

9. इस प्रक्रम पर, सारफेसी अधिनियम अधिनियमित करने के उद्देश्य और प्रयोजन पर विचार किया जाना आवश्यक है । सारफेसी अधिनियम वित्तीय आस्तियों के प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित के प्रवर्तन को विनियमित करने और सांपत्तिक अधिकारों पर सृजित प्रतिभूति हित के केंद्रीय डाटाबेस का उपबंध करने और उससे संसक्त या उनसे आनुषंगिक विषयों के लिए अधिनियमित किया गया है । अत: सारफेसी अधिनियम वित्तीय आस्तियों और प्रतिभूति हित के लिए विशिष्ट क्रियाविधि/उपबंध प्रदान करते हुए अधिनियमित किया गया है । प्रतिभूति हित जो प्रतिभूत लेनदार – वित्तीय संस्था के पक्ष में सृजित किया जाता है, के प्रवर्तन के लिए यह एक विशेष विधान है । अत: एमएसएमईडी अधिनियम के अधीन शोध्यों की पूर्विकता के लिए किसी विनिर्दिष्ट उपबंध के अभाव में यदि प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से दी गई यह दलील स्वीकार कर ली जाए कि एमएसएमईडी अधिनियम के अधीन शोध्य सारफेसी अधिनियम पर अभिभावी होंगे, तब उस मामले में न केवल विशेष अधिनियमिति/सारफेसी अधिनियम का उद्देश्य और प्रयोजन ही विफल हो जाएगा, यहां तक कि सारफेसी अधिनियम की धारा 26ङ के अंत:स्थापन द्वारा पश्चात्वर्ती अधिनियमिति भी विफल हो जाएगी । यदि प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से दी गई यह दलील स्वीकार की जाती है, तो उस दशा में सारफेसी अधिनियम की धारा 26ङ नगण्य और

निरर्थक और/या बेकार हो जाएगी । कोई अन्य प्रतिकूल दृष्टिकोण सारफेसी अधिनियम की धारा 26ङ के उपबंध के साथ-साथ सारफेसी अधिनियम के उद्देश्य और प्रयोजन को भी विफल करने वाला होगा ।

10. अन्यथा भी, नायब तहसीलदार ने जिला मजिस्ट्रेट द्वारा सारफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन तारीख 24 सितंबर, 2014 को पारित किए गए आदेश के अनुसार प्रतिभूत आस्तियों/संपत्तियों का कब्जा न लेकर कतई न्यायोचित नहीं किया था । नायब तहसीलदार द्वारा सारफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन पारित आदेश के बावजूद प्रतिभूत आस्तियों/संपत्तियों का इस आधार पर कब्जा लेने से इनकार करना कि सुकरीकरण परिषद् द्वारा पारित आदेशों की वसूली के लिए प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा जारी वसूली प्रमाणपत्र लंबित हैं, पूर्णत: अधिकारिता के बिना है । सारफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए, यहां तक कि प्रतिभूत लेनदार और ऋणी के बीच विवाद का न्यायनिर्णयन करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट को अधिकारिता नहीं है और/या जिला मजिस्ट्रेट और/या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट को भी अधिकारिता नहीं है । सारफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन यथास्थिति, जिला मजिस्ट्रेट या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट से यह अपेक्षित है कि प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा लेने में प्रतिभूत लेनदार की सहायता करे । सारफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन, न तो जिला मजिस्ट्रेट को और न ही महानगर मजिस्ट्रेट को प्रतिभूत लेनदार और ऋणी के बीच विवाद का न्यायनिर्णयन और/या विनिश्चय करने की कोई अधिकारिता होगी । यदि कोई व्यक्ति धारा 13 (4) के अधीन किए गए उपायों/धारा 14 के अधीन पारित किए गए आदेश से व्यथित है, तो व्यथित व्यक्ति को सारफेसी अधिनियम की धारा 17 के अधीन अपील/आवेदन के द्वारा ऋण वसूली अधिकरण में समावेदन करना चाहिए । अत: जिला मजिस्ट्रेट द्वारा सारफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन पारित किए गए आदेश के अनुसरण में नायब तहसीलदार द्वारा कब्जा लेने से इनकार करते हुए पारित किया गया आदेश पूरी तरह से अधिकारिता के बिना था और इसलिए वह भी अपास्त किए जाने योग्य है ।

11. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए और ऊपर उल्लिखित अन्य कारणों से, उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश असंधार्य है और यह अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है । परिणामतः, यह अपील मंजूर की जाती है । मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, इंदौर की न्यायपीठ द्वारा 2017 की रिट अपील सं. 268 में तारीख 11 अगस्त, 2017 को पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश को अपास्त किया जाता है और विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश को तद्द्वारा प्रत्यावर्तित किया जाता है । यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया जाता है कि जहां तक प्रतिभूत आस्तियों के संबंध में सारफेसी अधिनियम के अधीन वसूलियों का संबंध है, वे सुकरीकरण परिषद् द्वारा पारित पंचाट/डिक्री के अधीन रकम वसूल करने के लिए एमएसएमईडी अधिनियम के अधीन वसूलियों पर अभिभावी होंगी । विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा ठीक ही यह मत व्यक्त किया गया है कि यदि प्रत्यर्थी सं. 1 जिला मजिस्ट्रेट द्वारा सारफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन पारित किए गए आदेश से व्यथित है, तो वह सारफेसी अधिनियम की धारा 17 के अधीन कार्यवाहियां आरंभ करने के लिए स्वतंत्र होगा जिन पर विधि के अनुसार और इनके गुणागुण के आधार पर तथा धारा 17 के उपबंधों और सारफेसी अधिनियम के अधीन उपबंधों के अध्यधीन विचार किया जाएगा ।

12. तद्नुसार यह अपील मंजूर की जाती है । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

[2023] 1 उम. नि. प. 100

बोबी

बनाम

केरल राज्य

[2009 की दांडिक अपील सं. 1439]

12 जनवरी, 2023

न्यायमूर्ति बी. आर. गवई और न्यायमूर्ति एम. एम. सुंदरेश

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302/34, 364, 395 और 201 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27] – अपहरण और हत्या – पारिस्थितिक साक्ष्य – मृतक को अभियुक्त के साथ अंतिम बार देखे जाने का सिद्धांत – दोषसिद्धि – अंतिम बार देखे जाने का सिद्धांत वहां लागू होता है जहां अभियुक्त के साथ मृतक को अंतिम बार जीवित देखे जाने के सुसंगत समय और मृतक के मृत पाए जाने के समय के बीच अंतराल इतना थोड़ा हो कि अपराध कारित करने में अभियुक्त के सिवाय किसी अन्य व्यक्ति की संभावना न हो और यदि यह समय अंतराल अधिक हो तो किसी अन्य व्यक्ति के बीच में आने की संभाव्यता से इनकार नहीं किया जा सकता, इसलिए जहां अभियोजन पक्ष अभियुक्त को अपराध में आलिप्त करने वाली परिस्थितियों की ऐसी श्रृंखला को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करने में असफल रहा हो जिससे अभियुक्त की दोषिता के सिवाय कोई अन्य निष्कर्ष न निकलता हो, वहां केवल मृतक को अंतिम बार अभियुक्त के साथ देखे जाने के वृत्तांत के आधार पर उसे दोषसिद्ध करना उचित नहीं होगा ।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 27 [सपठित दंड संहिता, 1860 की धारा 302/34, 364, 395 और 201] – अभियुक्त द्वारा किए गए प्रकटन कथन के आधार पर मृतक के शव और अन्य वस्तुओं संबधी तथ्यों का पता चलना – जहां अभियुक्त द्वारा पुलिस अभिरक्षा में कोई प्रकटन कथन किया जाता है और उसके प्रकटन कथन के आधार पर किसी तथ्य का पता चलता है तो धारा 27 के अधीन

अन्वेषण अधिकारी के लिए यह अपेक्षित है कि उसके द्वारा बरामदगी पंचनामा तैयार किया जाए किंतु जहां बरामदगी पंचनामा तो दूर की बात अभियुक्त का प्रकटन कथन अभिलिखित तक न किया गया हो, वहां अभियोजन पक्ष द्वारा ऐसी परिस्थिति को साबित किया गया नहीं कहा जा सकता और ऐसे प्रकटन कथन पर की गई बरामदगी के आधार पर अभियुक्त को दोषसिद्ध करना उचित नहीं होगा ।

इस अपील के तथ्य इस प्रकार हैं कि शिकायतकर्ता (अभि. सा. 1) ने यह कथन करते हुए पुलिस थाने में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई थी कि शिबू **उर्फ** शिबू सिंह (अभियुक्त सं. 1) कारागार से निकल भागा था और फरार था । इस भय से कि उसका पति विश्वनाथन (मृतक) जेल से उसके निकल भागने के बारे में पुलिस को बता देगा, शिबू **उर्फ** शिबू सिंह (अभियुक्त सं. 1) अन्य अभियुक्तों अर्थात् अभियुक्त सं. 2 से 7 के साथ एक जीप में विश्वनाथन (मृतक) के मकान पर आया । अभियुक्त व्यक्तियों ने फिर चाकू की नोंक पर विश्वनाथन (मृतक) को पकड़ लिया, उसके मुंह में बलपूर्वक शराब डाली और बेहोश होने तक उसे शराब पीने के लिए मजबूर किया । जब लीला (शिकायतकर्ता/अभि. सा. 1) ने हस्तक्षेप करने की कोशिश की, तो उसे अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा लिए हुए उस चाकू के कारण हथेली पर क्षतियां पहुंचीं जिससे उन्होंने उस पर प्रहार करने का प्रयत्न किया । उसके पश्चात् लीला (शिकायतकर्ता/अभि. सा. 1) के साथ-साथ उसके पति की आंखों पर पट्टी बांध दी गई और एक जीप में ले गए । लगभग 30 किलो मीटर की दूरी तय करने के पश्चात् शिकायतकर्ता/अभि. सा. 1 को रास्ते में उतार दिया गया । पूर्वोक्त शिकायत की अंतर्वस्तुओं के आधार पर पूर्वोल्लिखित अभियुक्त व्यक्तियों के साथ-साथ अन्य अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 395 और 365 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई । बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) को पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया गया । उसके प्रकटन कथन के आधार पर विश्वनाथन का शव बरामद किया गया, जिसे एक नदी के किनारे गाड़ा गया था । इसके अतिरिक्त, चोरी किए गए माल को भी अभियुक्त सं. 3 के मकान से

बरामद किया गया । पुलिस द्वारा शिबू **उर्फ** शिबू सिंह (अभियुक्त सं. 1) और बिजू **उर्फ** बाबू (अभियुक्त सं. 2) को भी गिरफ्तार किया गया । शिबू **उर्फ** शिबू सिंह (अभि. सा. 1) के प्रकटन कथन के आधार पर प्लास्टिक के एक थैले में छिपाकर रखे गए उस फावड़े को, जिससे मृतक को गाड़ने की जगह को खोदा गया था, उस स्थान के निकट से बरामद किया गया जहां से शव को खोदकर निकाला गया था । अन्वेषण की समाप्ति पर न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी, न्यायालय-II, थ्रिस्सुर के समक्ष एक आरोप पत्र फाइल किया गया, जिन्होंने मामले को विचारण के लिए सेशन न्यायालय, थ्रिस्सुर के सुपुर्द कर दिया । विचारण न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 395, 364, 365, 380 और 302 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आरोप विरचित किए गए । विचारण के समाप्त होने पर विद्वान् विचारण न्यायालय ने शिबू **उर्फ** शिबू सिंह (अभियुक्त सं. 1), बिजू **उर्फ** बाबू (अभियुक्त सं. 2) और बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) को आरोपित अपराधों का दोषी पाया और तद्नुसार उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया । न्यायालय ने उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 364, 395 और 201 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए भी विभिन्न अवधियों का कठोर कारावास भुगतने का निदेश दिया । दंडादेशों को साथ-साथ चलने का निदेश दिया गया था । इससे व्यथित होकर अभियुक्त सं. 1 से 3 ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपनी-अपनी अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने शिबू **उर्फ** शिबू सिंह (अभियुक्त सं. 1) और बोबी (अभियुक्त सं. 2/इस अपील में अपीलार्थी) द्वारा फाइल की गई अपीलों को खारिज कर दिया, किंतु जहां तक बिजू **उर्फ** बाबू (अभियुक्त सं. 2) का संबंध है, विचारण न्यायालय के दोषसिद्धि और दंडादेश के निर्णय को अपास्त करते हुए उसके द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर की गई । अभियुक्त-अपीलार्थी बोबी द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय ने अभि. सा. 1 के साक्ष्य के आधार पर अभियुक्तों को मृतक के साथ अंतिम बार देखे जाने की परिस्थिति को अपराध में आलिप्त करने वाली मुख्य परिस्थिति के रूप में पाया था । उच्च न्यायालय ने यह भी पाया था कि जहां तक बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) का संबंध है, शव और जेवरातों की बरामदगी के संबंध में एक अतिरिक्त साक्ष्य है । जहां तक शिबू **उर्फ** शिबू सिंह (अभियुक्त सं. 1) का संबंध है, उच्च न्यायालय ने पाया था कि जहां शव को छिपाया गया था वहां से गड्ढ़ा खोदने के लिए प्रयुक्त फावड़े की बरामदगी एक अतिरिक्त परिस्थिति है जिससे शिबू **उर्फ** शिबू सिंह (अभियुक्त सं. 1) की दोषिता साबित होती है । अंतिम बार देखे जाने का सिद्धांत वहां लागू होता है जहां जब अभियुक्तों के साथ मृतक को अंतिम बार जीवित देखा गया था और जब मृतक को मृत पाया गया है, के उस सुसंगत समय के बीच समय-अंतराल इतना थोड़ा हो कि अपराध करने वाले के रूप में अभियुक्त की बजाय किसी अन्य व्यक्ति का अपराधकर्ता होना असंभाव्य बन जाता है । यदि अंतिम बार देखे जाने और मृतक के मृत पाए जाने के समय के बीच अंतराल लंबा है, तब अन्य व्यक्ति के बीच में आने की संभाव्यता से इनकार नहीं किया जा सकता । प्रस्तुत मामले में, शिकायतकर्ता/अभि. सा. 1 के अनुसार अभियुक्तों द्वारा मृतक को तारीख 20 नवंबर, 2020 को 8.00 बजे अपराह्न में ले जाया गया था । यद्यपि अपीलार्थी की यह दलील है कि उसे अवैध अभिरक्षा में तारीख 21 नवंबर, 2000 को लिया गया था और उसकी गिरफ्तारी तारीख 25 नवंबर, 2000 को दिखाई गई थी, तो भी हम मामले के इस पहलू पर विचार करना आवश्यक नहीं समझते हैं । अन्वेषण अधिकारी के साक्ष्य का परिशीलन करने पर यह प्रकट होता है कि तारीख 25 नवंबर, 2000 को इस गुप्त सूचना के आधार पर कि बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) मनलूर कडायु में खड़ा है, वह उस स्थान के लिए रवाना हुआ और उसे 2.00 बजे अपराह्न में गिरफ्तार किया । अन्वेषण अधिकारी ने यह कथन किया था कि अभियुक्त की संस्वीकृति के आधार पर उसके मकान से विभिन्न वस्तुएं अभिगृहीत की गई थीं । उसने यह भी कथन किया था कि उसके पश्चात् उसी दिन अभियुक्त उन्हें भरथपुझा में उस स्थान की ओर लेकर गया

जहां मृतक को गाड़ा गया था । उसने यह कथन किया था कि ढीली मिट्टी देखने के पश्चात् उस स्थल की रखवाली की गई थी क्योंकि वह असुविधाजनक समय था । उसने यह भी कथन किया था कि तारीख 26 नवंबर, 2000 को अभियुक्त सं. 3 द्वारा ले जाने पर वे उस स्थान पर पहुंचे और तहसीलदार, ओट्टापलम ने मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट तैयार की । इस प्रकार स्पष्ट रूप से यह देखा जा सकता है कि प्रथमतः, उस तारीख से जब अभि. सा. 1 के अनुसार अभियुक्तों द्वारा मृतक को ले जाया गया था और जब शव बरामद किया गया था, कम से कम पांच दिन का अंतराल है । तथापि, महत्वपूर्ण प्रश्न यह होगा कि क्या यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि अभियोजन पक्ष ने युक्तियुक्त संदेह के परे यह सिद्ध किया था कि शव की बरामदगी बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) के बताने पर की गई थी । केवल उस स्थिति में जब अभियोजन पक्ष ने यह सिद्ध कर दिया हो कि शव की बरामदगी बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) के बताने पर की गई थी, पांच दिन के अंतराल की सुसंगति होगी । (पैरा 15, 17, 18 और 19)

इस न्यायालय ने इस बात पर विस्तारपूर्वक विचार किया कि कैसे विधि में अन्वेषण अधिकारी से साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन परिकल्पित अनुसार पता चले तथ्य का पंचनामा बनाने की प्रत्याशा की गई है । प्रस्तुत मामले में, पूर्वोक्त अपेक्षा के अनुसार बरामदगी पंचनामा तैयार करने की बात को तो छोड़िए, बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) का साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन अभिलिखित कथन तक नहीं है । अतः हमारा यह सुविचारित मत है कि अभियोजन पक्ष इस परिस्थिति को साबित करने में असफल रहा है कि मृतक का शव बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) के बताने पर बरामद किया गया था । एक अन्य परिस्थिति जिस पर उच्च न्यायालय ने अवलंब लिया है यह थी कि जेवरातों की बरामदगी बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) के बताने पर की गई थी । हम यह पाते हैं कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों ने ऐसी बरामदगी का अवलंब लेकर स्पष्ट रूप से गलती की है । विचारण न्यायालय ने यह पाया था कि यह दर्शित करने के लिए पर्याप्त सामग्री है कि

अभिकथित बरामदगी ज्ञापन एक कूटरचित दस्तावेज है और प्रदर्श पी-14 के अनुसार अभिकथित बरामदगी ढोंग है । तथापि, विचारण न्यायालय ने फिर भी अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए उक्त बरामदगी का अवलंब लिया । हमारे मत में, इस संबंध में विचारण न्यायालय का निष्कर्ष पूरी तरह से अनुचित है जिसकी उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई है । जहां तक शिबू **उर्फ** शिबू सिंह (अभियुक्त सं. 1) का संबंध है, विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा जिस अतिरिक्त परिस्थिति का अवलंब लिए जाने की ईप्सा की गई है, वह फावड़े की अभिकथित बरामदगी है । यह उल्लेखनीय है कि फावड़ा भी उसी स्थान से बरामद किया गया था जहां से अभिकथित रूप से बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) के बताने पर मृतक का शव बरामद किया गया था । विचारण न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि जिस स्थान से फावड़ा बरामद किया गया था, वह पहले ही बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) के प्रकटन कथन से ज्ञात था, तथापि, विचारण न्यायालय ने फिर भी उक्त फावड़े की बरामदगी को साक्ष्य में ग्राह्य होना अभिनिर्धारित किया । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उक्त बरामदगी उस स्थान से की गई थी जो पहले से ज्ञात था न कि अनन्य रूप से शिबू **उर्फ** शिबू सिंह (अभियुक्त सं. 1) को ज्ञात था । हमारा यह निष्कर्ष है कि विचारण न्यायालय ने पुन: ऐसा निष्कर्ष निकालकर अनुचितता की है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि एकमात्र परिस्थिति जो अब बच जाती है, वह अभि. सा. 1 के साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त को अंतिम बार मृतक के साथ देखे जाने की परिस्थिति है । मामले को इस प्रकार दृष्टिगत करते हुए, हमारा यह निष्कर्ष है कि केवल अंतिम बार देखे जाने की कहानी के आधार पर दोषसिद्धि नहीं की जा सकती थी । अभियोजन पक्ष पूरी तरह से यह साबित करने में असफल रहा है कि मृतक के शव की बरामदगी बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) के बताने पर की गई थी । बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) के मकान से वस्तुओं की बरामदगी, यहां तक कि विचारण न्यायालय के अनुसार भी, ढोंग और कूटरचित है । शिबू **उर्फ** शिबू सिंह (अभियुक्त सं. 1) के बताने पर फावड़े की बरामदगी ऐसे स्थान से की गई है जो, यहां तक कि विचारण न्यायालय के

अनुसार भी, बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) द्वारा किए गए प्रकटन कथन के कारण ज्ञात थी । मामले को इस प्रकार दृष्टिगत करते हुए, हमारा यह निष्कर्ष है कि अभियोजन पक्ष अपराध में आलिप्त करने वाली उन परिस्थितियों की श्रृंखला को साबित करने में पूरी तरह असफल रहा है जिससे अभियुक्त की दोषिता के सिवाय कोई अन्य निष्कर्ष न निकलता हो । (पैरा 26, 27, 28, 29 और 30)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2022]	2022 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 1400 : **सुब्रमण्य** बनाम **कर्नाटक राज्य** ;	25
[2005]	(2005) 3 एस. सी. सी. 114 : **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **सतीश** ;	16
[2002]	(2002) 7 एस. सी. सी. 728 : **कर्नाटक राज्य** बनाम **डेविड रोज़ारियो और एक अन्य** ;	24
[1995]	(1995) 1 (सप्ली.) एस. सी. सी. 80 : **सुरेश चंद्र बाहरी** बनाम **बिहार राज्य** ;	8
[1985]	[1985] 1 उम. नि. प. 995 = (1984) 4 एस. सी. सी. 116 : **शरद बिरधीचंद सारदा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	9
[1978]	(1978) 4 एस. सी. सी. 90 : **चंद्रन** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	22
[1946]	1946 एस. सी. सी. ऑनलाइन पी. सी. 47 : **पुलुकुरी कोटय्या और अन्य** बनाम **किंग एम्परर** ।	20

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2009 की दांडिक अपील सं. 1439.

2005 की दांडिक अपील सं. 326, 230 और 847 में केरल उच्च न्यायालय, एर्नाकुलम की खंड न्यायपीठ द्वारा तारीख 25 अगस्त, 2008 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री आर. बसंत, ज्येष्ठ अधिवक्ता, अब्दुला नसीह वी. टी., मीना के. पोलोस, अक्षय, अशोक बसोया, (सुश्री) श्रुति जोश और पी. एस. सुधीर

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री के. एन. बालगोपाल, ज्येष्ठ अधिवक्ता, हर्षद वी. हमीद, दिलीप पूलाकट्ट और (सुश्री) एशली हर्षद

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति बी. आर. गवई ने दिया ।

न्या. गवई – इस अपील में केरल उच्च न्यायालय, एर्नाकुलम (जिसे इसमें इसके पश्चात् "उच्च न्यायालय" कहा गया है) की खंड न्यायपीठ द्वारा 2005 की दांडिक अपील सं. 326, 230 और 847 में शिबू **उर्फ** शिबू सिंह (अभियुक्त सं. 1) और बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) द्वारा फाइल की गई अपीलों को खारिज करते हुए और तद्द्वारा उक्त अभियुक्त व्यक्तियों के संबंध में 2003 के सेशन मामला सं. 208 में अपर सेशन न्यायाधीश, त्वरित न्यायालय-II (तदर्थ न्यायालय), थ्रिस्सुर (जिसे इसमें इसके पश्चात् "विचारण न्यायालय" कहा गया है) द्वारा तारीख 18 दिसंबर, 2004 को पारित किए गए दोषसिद्धि और दंडादेश के निर्णय को कायम रखते हुए तारीख 25 अगस्त, 2008 के निर्णय और आदेश को चुनौती दी गई है । तथापि, उच्च न्यायालय ने इसी आक्षेपित निर्णय द्वारा बिजू **उर्फ** बोबी (अभियुक्त सं. 2) द्वारा फाइल की गई अपील को मंजूर किया और उसे उस पर आरोपित सभी अपराधों से दोषमुक्त कर दिया ।

2. अनावश्यक ब्यौरों को छोड़कर इस अपील के तथ्य निम्नलिखित प्रकार से हैं :

2.1 तारीख 21 नवंबर, 2000 को लीला पत्नी विश्वनाथन (शिकायतकर्ता/अभि. सा. 1) ने पुलिस थाना, अंथिक्कडु, जिला थ्रिस्सुर के समक्ष एक कथन किया जिसमें उसने अभिकथन किया कि उसके पति विश्वनाथन का छोटा भाई शिबू **उर्फ** शिबू सिंह (अभियुक्त सं. 1) एक सिद्धदोष व्यक्ति था जो कारावास भुगत रहा था क्योंकि वह कई सारे

चोरी के मामलों में अंतर्ग्रस्त था जिनमें उक्त चोरियों से चुराई गई वस्तुओं को उसके पति द्वारा बेचा गया था ।

2.2 शिकायतकर्ता का यह पक्षकथन है कि शिबू **उर्फ** शिबू सिंह (अभियुक्त सं. 1) कारागार से निकल भागा था और फरार था । इस भय से कि विश्वनाथन (मृतक) जेल से उसके निकल भागने के बारे में पुलिस को बता देगा, शिबू **उर्फ** शिबू सिंह (अभियुक्त सं. 1) अन्य अभियुक्तों अर्थात् अभियुक्त सं. 2 से 7 के साथ तारीख 20 नवंबर, 2000 को 8.00 बजे अपराह्न में एक जीप में विश्वनाथन (मृतक) के मकान पर आया । अभियुक्त व्यक्तियों ने फिर चाकू की नोंक पर विश्वनाथन (मृतक) को पकड़ लिया, उसके मुंह में बलपूर्वक शराब डाली और बेहोश होने तक उसे शराब पीने के लिए मजबूर किया । जब लीला (शिकायतकर्ता/अभि. सा. 1) ने हस्तक्षेप करने की कोशिश की, तो उसे अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा लिए हुए उस चाकू के कारण हथेली पर क्षतियां पहुंचीं जिससे उन्होंने उस पर प्रहार करने का प्रयत्न किया था । उसके पश्चात् लीला (शिकायतकर्ता/अभि. सा. 1) के साथ-साथ उसके पति की आंखों पर पट्टी बांध दी गई और एक जीप में ले गए । लगभग 30 किलो मीटर की दूरी तय करने के पश्चात् शिकायतकर्ता/अभि. सा. 1 को पूमाला में उतार दिया गया जो उसका मूल निवास स्थान था । जब वह उक्त गांव से बैजू नामक एक स्थानीय व्यक्ति की सहायता से जैसे-तैसे अपने मकान पर पहुंची, तब उसने अपने भाई बाबू (अभि. सा. 6) को पूर्वोक्त घटना के बारे में बताया, जिसने उक्त रात्रि के दौरान विश्वनाथन (मृतक) को ढूंढ़ने का प्रयत्न किया । अगले दिन अर्थात् तारीख 21 नवंबर, 2000 को लीला (शिकायतकर्ता/अभि. सा. 1) ने बाबू (अभि. सा. 6) के साथ पुलिस थाना, अंथिक्कडु, जिला थ्रिस्सुर में अपना कथन (प्रदर्श पी-1) दर्ज किया । पूर्वोक्त शिकायत की अंतर्वस्तुओं के आधार पर पूर्वोल्लिखित अभियुक्त व्यक्तियों के साथ-साथ अन्य अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "भारतीय दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 395 और 365 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श पी-19) रजिस्ट्रीकृत की गई ।

2.3 बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) को पुलिस

द्वारा तारीख 25 नवंबर, 2000 को गिरफ्तार किया गया । उसके प्रकटन कथन (प्रदर्श पी-23) के आधार पर विश्वनाथन का शव बरामद किया गया, जिसे पट्टीथारा में भरथापुझा नदी के किनारे गाड़ा गया था । इसके अतिरिक्त, चोरी किए गए माल को भी अभियुक्त सं. 3 के मकान से बरामद किया गया और प्रदर्श पी-14 के रूप में चिह्नित किया गया । शिबू **उर्फ** शिबू सिंह (अभियुक्त सं. 1) और बिजू **उर्फ** बाबू (अभियुक्त सं. 2) को गुरुवयूर पुलिस द्वारा तारीख 28 नवंबर, 2000 को गुरुवयूर में एक मकान से गिरफ्तार किया गया । उसके पश्चात्, उन्हें तारीख 2 दिसंबर, 2000 को अंथिक्कडु पुलिस को सौंप दिया गया । शिबू **उर्फ** शिबू सिंह (अभि. सा. 1) के प्रकटन कथन के आधार पर प्लास्टिक के एक थैले में छिपाकर रखे गए उस फावड़े को, जिससे मृतक को गाड़ने की जगह को खोदा गया था, उस स्थान के निकट से बरामद किया गया जहां से शव को खोदकर निकाला गया था ।

2.4 अन्वेषण की समाप्ति पर न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी, न्यायालय-II, थ्रिस्सुर के समक्ष एक आरोप पत्र फाइल किया गया, जिन्होंने मामले को विचारण के लिए सेशन न्यायालय, थ्रिस्सुर के सुपुर्द कर दिया ।

2.5 विचारण न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 395, 364, 365, 380 और 302 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आरोप विरचित किए गए ।

2.6 सभी अभियुक्तों ने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने का दावा किया । अभियोजन पक्ष ने अभियुक्तों की दोषिता को सिद्ध करने के लिए 33 साक्षियों की परीक्षा की । अभियोजन पक्ष ने अभिलेख पर चौदह तात्विक वस्तुओं को भी प्रस्तुत किया, जिन्हें तात्विक वस्तु 1 से तात्विक वस्तु 14 के रूप में चिह्नित किया गया । प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से प्रतिपरीक्षा के दौरान मृतक के पिता सेखरन (प्रति. सा. 1) की परीक्षा की गई । अभियुक्तों से दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में "दंड प्रक्रिया संहिता") की धारा 313 के अधीन प्रश्न किए गए जिनमें उन्होंने उनके समक्ष रखी गई उन परिस्थितियों से इनकार किया जो साक्ष्य में उनके विरुद्ध प्रकट हुई थी । विचारण के

समाप्त होने पर विद्वान् विचारण न्यायालय ने शिबू **उर्फ** शिबू सिंह (अभियुक्त सं. 1), बिजू **उर्फ** बाबू (अभियुक्त सं. 2) और बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) को आरोपित अपराधों का दोषी पाया और तद्नुसार उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया । न्यायालय ने उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 364, 395 और 201 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए भी विभिन्न अवधियों का कठोर कारावास भुगतने का निदेश दिया । दंडादेशों को साथ-साथ चलने का निदेश दिया गया था ।

2.7 इससे व्यथित होकर अभियुक्त सं. 1 से 3 ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपनी-अपनी अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा शिबू **उर्फ** शिबू सिंह (अभियुक्त सं. 1) और बोबी (अभियुक्त सं. 2/इस अपील में अपीलार्थी) द्वारा फाइल की गई अपीलों को खारिज कर दिया, किंतु जहां तक बिजू **उर्फ** बाबू (अभियुक्त सं. 2) का संबंध है, विचारण न्यायालय के दोषसिद्धि और दंडादेश के निर्णय को अपास्त करते हुए उसके द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर की गई ।

3. इससे व्यथित होकर यह अपील फाइल की गई है ।

4. हमने अपीलार्थी-बोबी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री आर. बसंत और प्रत्यर्थी-केरल राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री के. एन. बालगोपाल को सुना ।

5. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री बसंत ने दलील दी कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों ने अपीलार्थी-बोबी को भारतीय दंड संहिता की धारा 395, 365, 364, 201, 380, 302 और धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध और दंडादिष्ट करके गलती की है । उन्होंने दलील दी कि अभियोजन पक्ष अपीलार्थी-बोबी के विरुद्ध अपने पक्षकथन को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करने में असफल रहा है और अभियोजन के पक्षकथन में स्पष्ट खामियां हैं । यह दलील दी गई कि यहां तक कि उच्च न्यायालय ने

पाया था कि उन अभियोजन साक्षियों के कथनों में विसंगतियां थीं जिनकी विचारण के दौरान परीक्षा की गई थी । यह भी दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने शिकायतकर्ता/अभि. सा. 1 के कथन में बिजू **उर्फ** बाबू (अभियुक्त सं. 2) के संबंध में किए गए कथन में स्पष्ट विसंगतियां पाईं थीं जिनके आधार पर उच्च न्यायालय ने उक्त अभियुक्त बिजू **उर्फ** बाबू (अभियुक्त सं. 2) को उसके विरुद्ध लगाए गए सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया था ।

6. श्री बसंत ने यह दलील दी कि पुलिस के समक्ष किए गए कथनों के आधार पर किसी अभियुक्त व्यक्ति के बताने पर आरंभ की गई बरामदगी के मामलों में भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "साक्ष्य अधिनियम" कहा गया है) की धारा 27 के अधीन एक ज्ञापन बनाया जाना चाहिए । यह दलील दी गई कि प्रस्तुत मामले में अभिलेख पर के साक्ष्य का परिशीलन करने पर न तो मृतक विश्वनाथन के शव की बरामदगी के समय पर साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन ऐसा ज्ञापन तैयार किया गया था और न ही उक्त बरामदगी के समय पर स्वतंत्र या पंच साक्षियों के हस्ताक्षर कराए गए थे । यह भी दलील दी गई कि अन्वेषण अधिकारी का यह कर्तव्य था कि वह बोबी (अपीलार्थी) से अभिप्राप्त जानकारी के आधार पर कार्य करते हुए उक्त ज्ञापन तैयार करता और अन्वेषण अधिकारी की ऐसी निष्क्रियता से अभियोजन का पक्षकथन, कम से कम जहां तक मृतक के शव की बरामदगी को साबित करने का संबंध है, दूषित हो जाता है ।

7. श्री बसंत ने दलील दी कि विचारण न्यायालय ने एकमात्र रूप से अंतिम बार देखे जाने की कहानी का अवलंब लिया और अभिनिर्धारित किया कि अभियोजन पक्ष ने इसे इस मामले में परिस्थितियों की श्रृंखला के संबंध में साबित किया है । यह भी दलील दी कि केवल अंतिम बार देखे जाने की कहानी को सिद्ध करने के आधार पर किसी अभियुक्त की दोषसिद्धि नहीं की जा सकती क्योंकि इसकी संपुष्टि अभिलेख पर प्रस्तुत किए गए अन्य साक्ष्य के साथ-साथ उन साक्षियों के कथनों से किए जाने की आवश्यकता है जिनकी विचारण के दौरान परीक्षा की जाती है । उन अभियोजन साक्षियों के कथनों में की विसंगतियों का उल्लेख करते हुए

जिनका निचले न्यायालयों द्वारा अवलंब लिया गया था, यह दलील दी कि इस अपील में अपीलार्थी की दोषसिद्धि को उक्त एकमात्र आधार पर कायम नहीं रखा जा सकता ।

8. इसके विपरीत, श्री बालगोपाल ने यह दलील दी कि निचले न्यायालयों ने अभियुक्त व्यक्तियों को आरोपित अपराधों के लिए समवर्ती रूप से दोषी पाया है । अभियोजन पक्ष ने अपराध में आलिप्त करने वाली परिस्थितियों को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित किया है । उसने परिस्थितियों की श्रृंखला को भी साबित किया है जिससे अभियुक्त की दोषिता के सिवाय कोई अन्य निष्कर्ष नहीं निकलता है । उन्होंने **सुरेश चंद्र बाहरी** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया ।

9. निर्विवाद रूप से, प्रस्तुत मामला पूर्ण रूप से पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है । **शरद बिरधीचंद सारदा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय की एक तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने ऐसे मामले में दोषसिद्धि के संबंध में स्वर्णिम सिद्धांत अधिकथित किए हैं जो पूर्ण रूप से पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित हो । हम उक्त मामले में इस न्यायालय की निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों को उपयोगी रूप से निर्दिष्ट कर सकते हैं :–

> "153. इस विनिश्चय के सूक्ष्म-विश्लेषण से यह दर्शित होता है कि अभियुक्त के प्रतिकूल मामले को पूरी तरह सिद्ध मानने से पहले निम्नलिखित शर्तें पूरी होनी चाहिएं –
>
> (1) वे परिस्थितियां, जिनसे दोषिता का निष्कर्ष निकाला जाना है, पूरी तरह सिद्ध की जानी चाहिएं ।
>
> यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि इस न्यायालय ने यह इंगित किया था कि संबंधित परिस्थितियां 'सिद्ध करनी होंगी' या 'की जानी चाहिएं' न कि 'की जा सकती हैं' । 'साबित की जा सकती हैं' और 'साबित करनी होंगी या की जानी चाहिएं' में केवल

---

[1] (1995) 1 (सप्ली.) एस. सी. सी. 80.

[2] [1985] 1 उम. नि. प. 995 = (1984) 4 एस. सी. सी. 116.

व्याकरणिक अंतर ही नहीं है, बल्कि विधिक अंतर है, जैसा कि इस न्यायालय ने शिवाजी साहबराव बोबडे और एक अन्य **बनाम** महाराष्ट्र राज्य {[1973] 3 उम. नि. प. 1011 = (1973) 2 एस. सी. सी. 793} वाले मामले में अभिनिर्धारित किया था । उसमें न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था –

> 'निश्चय ही यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि इससे पहले कि न्यायालय अभियुक्त को दोषसिद्ध कर सके, अभियुक्त दोषी 'होना चाहिए' न कि केवल 'दोषी हो सकता है' तथा 'हो सकता है' और 'होना चाहिए' के बीच मानसिक अंतर बहुत लंबा है, अस्पष्ट अटकलों को निश्चित निष्कर्षों से अलग करता है ।'
>
> (2) इस प्रकार सिद्ध किए गए तथ्य केवल अभियुक्त की दोषिता की कल्पना के अनुरूप होने चाहिएं अर्थात् इस बात के सिवाय कि अभियुक्त दोषी है, किसी अन्य कल्पना के पोषक नहीं होने चाहिएं,
>
> (3) परिस्थितियां निश्चायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिएं,
>
> (4) उन्हें साबित की जाने वाली हर उप-कल्पना के सिवाय हर संभावित उप-कल्पना अपवर्जित करनी चाहिए, और
>
> (5) साक्ष्य की श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की निर्दोषिता के अनुरूप निष्कर्ष निकालने के लिए कोई भी युक्तियुक्त आधार न बचे और उससे यह दर्शित हो कि संपूर्ण मानवीय अधिसंभावना में वह कार्य अभियुक्त द्वारा ही किया गया होगा ।"

10. इस प्रकार, स्पष्ट रूप से यह देखा जा सकता है कि अभियोजन पक्ष के लिए यह आवश्यक है कि जिन परिस्थितियों से दोषिता का निष्कर्ष निकाला जाना है वे पूरी तरह से सिद्ध की जानी चाहिएं । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि इससे पहले कि न्यायालय अभियुक्त को

दोषसिद्ध कर सके, अभियुक्त दोषी 'होना चाहिए' न कि केवल 'दोषी हो सकता है' । यह अभिनिर्धारित किया गया कि 'साबित की जा सकती हैं' और 'साबित करनी होंगी या की जानी चाहिएं' में केवल व्याकरणिक अंतर ही नहीं है, बल्कि विधिक अंतर है । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि इस प्रकार सिद्ध किए गए तथ्य केवल अभियुक्त की दोषिता की कल्पना के अनुरूप होने चाहिएं अर्थात् इस बात के सिवाय कि अभियुक्त दोषी है, किसी अन्य कल्पना के पोषक नहीं होने चाहिएं । यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि परिस्थितियां ऐसी होनी चाहिएं कि उन्हें साबित की जाने वाली हर उप-कल्पना के सिवाय हर संभावित उप-कल्पना अपवर्जित हो जाए । यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि साक्ष्य की श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की निर्दोषिता के अनुरूप निष्कर्ष निकालने के लिए कोई भी युक्तियुक्त आधार न बचे और उससे यह दर्शित हो कि संपूर्ण मानवीय अधिसंभावना में वह कार्य अभियुक्त द्वारा ही किया गया होगा ।

11. इन मार्गदर्शक सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए हमें वर्तमान मामले की परीक्षा करनी चाहिए ।

12. विचारण न्यायालय ने निम्नलिखित परिस्थितियों का अवलंब लिया है :–

(i) मृतक के साथ अंतिम बार एक-साथ देखा जाना ;

(ii) अभियुक्त सं. 3-बोबी से चुराई हुई सामग्री की बरामदगी जिसमें जेवरात भी हैं ;

(iii) अभियुक्त सं. 1-शिबू **उर्फ** शिबू सिंह से फावड़े की बरामदगी ;

(iv) अभियुक्त सं. 3-बोबी के बताने पर शव की बरामदगी ।

13. विचारण न्यायालय ने अभियुक्त सं. 1 से 3 को यह निष्कर्ष निकालते हुए दोषसिद्ध किया था कि अभियोजन पक्ष ने पूर्वोक्त परिस्थितियों को उनके विरुद्ध साबित किया है । अपील में उच्च न्यायालय ने पाया कि अभियोजन पक्ष बिजू **उर्फ** बोबी (अभियुक्त सं. 2) के विरुद्ध मामले को साबित करने में असफल रहा है और तद्नुसार उसे

दोषमुक्त कर दिया ।

14. उच्च न्यायालय की विद्वान् खंड न्यायपीठ ने यद्यपि यह पाया था कि अभियोजन पक्ष अभियुक्त सं. 2 के संबंध में मामले को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करने में असफल रहा है, तो भी यह अभिनिर्धारित किया कि जहां तक अभियुक्त सं. 1 और 3 का संबंध है, अभियोजन पक्ष ने मामले को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित किया है ।

15. इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय ने अभि. सा. 1 के साक्ष्य के आधार पर अभियुक्तों को मृतक के साथ अंतिम बार देखे जाने की परिस्थिति को अपराध में आलिप्त करने वाली मुख्य परिस्थिति के रूप में पाया था । उच्च न्यायालय ने यह भी पाया था कि जहां तक बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) का संबंध है, शव और जेवरातों की बरामदगी के संबंध में एक अतिरिक्त साक्ष्य है । जहां तक शिबू **उर्फ** शिबू सिंह (अभियुक्त सं. 1) का संबंध है, उच्च न्यायालय ने पाया था कि जहां शव को छिपाया गया था वहां से गड्ढ़ा खोदने के लिए प्रयुक्त फावड़े की बरामदगी एक अतिरिक्त परिस्थिति है जिससे शिबू **उर्फ** शिबू सिंह (अभियुक्त सं. 1) की दोषिता साबित होती है ।

16. जहां तक अंतिम बार देखे जाने का सिद्धांत का संबंध है, **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **सतीश**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों को निर्दिष्ट करना सुसंगत होगा :–

> "22. अंतिम बार देखे जाने के सिद्धांत वहां लागू होता है जहां उस सुसंगत समय, जब अभियुक्त और मृतक अंतिम बार जीवित देखे गए थे और जब मृतक को मृत पाया जाता है के बीच समय-अंतराल इतना थोड़ा है कि अपराध कारित करने वाले के रूप में अभियुक्त की बजाय किसी अन्य व्यक्ति की संभाव्यता असंभाव्य बन जाती है । कुछ मामलों में सकारात्मक रूप से यह सिद्ध करना तब कठिन होगा जब मृतक को अभियुक्त के साथ अंतिम बार देखा गया था वह अंतराल लंबा हो और अन्य व्यक्तियों के बीच में

[1] (2005) 3 एस. सी. सी. 114.

आ जाने की संभाव्यता हो । यह निष्कर्ष निकालने के लिए किसी अन्य सकारात्मक साक्ष्य के अभाव में कि अभियुक्त और मृतक अंतिम बार एक-साथ देखे गए थे, उन मामलों में दोषिता का निष्कर्ष निकालना खतरनाक होगा । इस मामले में अभि. सा. 2 के साक्ष्य के अतिरिक्त यह सकारात्मक साक्ष्य है कि अभि. सा. 3 और 5 द्वारा मृतक और अभियुक्त अंतिम बार एक साथ देखे गए थे ।"

17. इस प्रकार, स्पष्ट रूप से यह देखा जा सकता है कि अंतिम बार देखे जाने का सिद्धांत वहां लागू होता है जहां जब अभियुक्तों के साथ मृतक को अंतिम बार जीवित देखा गया था और जब मृतक को मृत पाया गया है, के उस सुसंगत समय के बीच समय-अंतराल इतना थोड़ा हो कि अपराध करने वाले के रूप में अभियुक्त की बजाय किसी अन्य व्यक्ति का अपराधकर्ता होना असंभाव्य बन जाता है । यदि अंतिम बार देखे जाने और मृतक के मृत पाए जाने के समय के बीच अंतराल लंबा है, तब अन्य व्यक्ति के बीच में आने की संभाव्यता से इनकार नहीं किया जा सकता ।

18. प्रस्तुत मामले में, शिकायतकर्ता/अभि. सा. 1 के अनुसार अभियुक्तों द्वारा मृतक को तारीख 20 नवंबर, 2020 को 8.00 बजे अपराह्न में ले जाया गया था । यद्यपि अपीलार्थी की यह दलील है कि उसे अवैध अभिरक्षा में तारीख 21 नवंबर, 2000 को लिया गया था और उसकी गिरफ्तारी तारीख 25 नवंबर, 2000 को दिखाई गई थी, तो भी हम मामले के इस पहलू पर विचार करना आवश्यक नहीं समझते हैं । अन्वेषण अधिकारी के साक्ष्य का परिशीलन करने पर यह प्रकट होता है कि तारीख 25 नवंबर, 2000 को इस गुप्त सूचना के आधार पर कि बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) मनलूर कडायु में खड़ा है, वह उस स्थान के लिए रवाना हुआ और उसे 2.00 बजे अपराह्न में गिरफ्तार किया । अन्वेषण अधिकारी ने यह कथन किया था कि अभियुक्त की संस्वीकृति के आधार पर उसके मकान से विभिन्न वस्तुएं अभिगृहीत की गई थीं । उसने यह भी कथन किया था कि उसके पश्चात् उसी दिन अभियुक्त उन्हें भरथपुझा में उस स्थान की ओर लेकर गया

जहां मृतक को गाड़ा गया था । उसने यह कथन किया था कि ढीली मिट्टी देखने के पश्चात् उस स्थल की रखवाली की गई थी क्योंकि वह असुविधाजनक समय था । उसने यह भी कथन किया था कि तारीख 26 नवंबर, 2000 को अभियुक्त सं. 3 द्वारा ले जाने पर वे उस स्थान पर पहुंचे और तहसीलदार, ओट्टापलम ने मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट तैयार की ।

19. इस प्रकार स्पष्ट रूप से यह देखा जा सकता है कि प्रथमत:, उस तारीख से जब अभि. सा. 1 के अनुसार अभियुक्तों द्वारा मृतक को ले जाया गया था और जब शव बरामद किया गया था, कम से कम पांच दिन का अंतराल है । तथापि, महत्वपूर्ण प्रश्न यह होगा कि क्या यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि अभियोजन पक्ष ने युक्तियुक्त संदेह के परे यह सिद्ध किया था कि शव की बरामदगी बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) के बताने पर की गई थी । केवल उस स्थिति में जब अभियोजन पक्ष ने यह सिद्ध कर दिया हो कि शव की बरामदगी बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) के बताने पर की गई थी, पांच दिन के अंतराल की सुसंगति होगी ।

20. वर्ष 1946 में प्रिवी कौंसिल ने **पुलुकुरी कोटय्या और अन्य** बनाम **किंग एम्परर**[1] वाले मामले में साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के उपबंधों पर विचार किया था । उक्त मामले में प्रिवी कौंसिल की निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों को निर्दिष्ट करना सुसंगत होगा :–

> "दूसरा प्रश्न जो भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अर्थान्वयन में अंतर्वलित है, अब उस पर विचार किया जाएगा । यह धारा और दो पूर्ववर्ती धाराएं जिनके साथ इसे पढ़ा जाना चाहिए, इन शब्दों में हैं । [माननीय न्यायमूर्ति ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 25, 26 और 27 को पढ़ा और आगे बढ़े] । धारा 27, जो अलंकृत रूप में शब्दबद्ध नहीं है, पूर्ववर्ती धारा द्वारा अधिरोपित प्रतिषेध का अपवाद उपबंधित करती है और पुलिस अभिरक्षा में किसी व्यक्ति द्वारा किए गए कतिपय कथनों को साबित किए जाने में समर्थ बनाती है । इस धारा को प्रवृत्त करने के लिए

[1] 1946 एस. सी. सी. ऑनलाइन पी. सी. 47.

आवश्यक शर्त यह है कि पुलिस अभिरक्षा में किसी अपराध के अभियुक्त से प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप किसी तथ्य का पता चलने का अभिसाक्ष्य दिया जाना आवश्यक है और तदुपरांत तद्द्वारा पते चले तथ्य से सुभिन्न रूप से संबंधित उतनी जानकारी को साबित किया जा सकेगा । यह धारा इस दृष्टिकोण पर आधारित होना प्रतीत होती है कि यदि दी गई जानकारी के परिणामस्वरूप वास्तव में किसी तथ्य का पता चलता है, तो इस बात की कुछ गारंटी हो जाती है कि जानकारी सत्य थी और तद्नुसार इसे सुरक्षित रूप से साक्ष्य में दिया जाना मंजूर किया जा सकता है, किंतु स्पष्ट तौर पर ग्राह्य जानकारी की सीमा उस पते चले तथ्य की हू-ब-हू प्रकृति पर निर्भर होनी चाहिए जिससे ऐसी जानकारी का संबंध होना आवश्यक है । प्रसामान्यत:, इस धारा को तब प्रवृत्त किया जाता है जब पुलिस अभिरक्षा में कोई व्यक्ति किसी स्थान से छिपाई गई किसी वस्तु जैसे कि शव, आयुध या जेवरात बरामद करवाता है, तो इसे उस अपराध से संबद्ध होना कहा जा सकता है जिसकी जानकारी देने वाला अपराधी है । क्राउन की ओर से श्री मेगा ने यह दलील दी कि ऐसे किसी मामले में 'पता चला तथ्य' प्रस्तुत की गई भौतिक वस्तु है और कोई जानकारी जो उस वस्तु से सुभिन्न रूप से संबंधित है, उसे साबित किया जा सकता है । इस दृष्टिकोण के आधार पर, किसी व्यक्ति द्वारा दी गई यह जानकारी कि प्रस्तुत किया गया शव उस व्यक्ति का है जिसकी उसके द्वारा हत्या की गई थी, प्रस्तुत कराया गया आयुध वह है जो उसके द्वारा हत्या कारित करने में प्रयुक्त किया गया था, या प्रस्तुत कराए गए जेवरात डकैती में चुराए गए थे, यह सभी जानकारी ग्राह्य होगी । यदि धारा 27 का यह प्रभाव है, तो व्यक्तियों द्वारा पुलिस को की गई या पुलिस अभिरक्षा में की गई संस्वीकृतियों पर दो पूर्ववर्ती धाराओं द्वारा अधिरोपित पाबंधी का थोड़ा महत्व रह जाता है । यह पाबंधी संभवत: विधानमंडल की इस आशंका से प्रेरित थी कि पुलिस के प्रभाव से किसी व्यक्ति को असम्यक् दबाव डालकर संस्वीकृति करने के लिए उत्प्रेरित किया जा सकता है । किंतु यदि पाबंधी हटाने के लिए यह बात आवश्यक

है तो क्या बाद में प्रस्तुत की गई किसी वस्तु से संबंधित जानकारी होने की संस्वीकृति को इसमें सम्मिलित करना युक्तियुक्त प्रतीत होता है जिससे यह माना जा सके कि पुलिस की आग्रही शक्तियां इस अवसर पर भी समान रूप से साबित होंगी और व्यावहारिक रूप से यह पाबंधी अपना प्रभाव खो देगी । अर्थान्वयन के प्रसामान्य सिद्धांतों के आधार पर हमारा यह विचार है कि धारा 26 के साथ धारा 27 द्वारा जोड़े गए परन्तुक को इस धारा के महत्व को निष्प्रभावी करने वाला अभिनिर्धारित नहीं किया जाना चाहिए । हमारा यह मत है कि इस धारा के अंतर्गत प्रयुक्त 'पता लगा तथ्य' को पेश की गई वस्तु के समकक्ष मानना गलत है ; पता लगे तथ्य में वह स्थान भी आ जाता है, जहां से वस्तु पेश की जाए और अभियुक्त की इसके बारे में जानकारी, और दी गई जानकारी का संबंध अवश्य ही स्पष्टतया इस तथ्य से होना चाहिए । पेश की गई वस्तु का विगत में इसके द्वारा प्रयोग किया गया या इसके विगत के इतिहास का उस परिवेश, जिसमें यह खोजकर निकाली गई, में इसके पता लगने से कोई संबंध नहीं होता है । कोई व्यक्ति जो अभिरक्षा में है, उसके द्वारा दी गई इस जानकारी से कि 'मैं अपने मकान की छत में छिपाकर रखे गए चाकू को पेश करूंगा' चाकू का पता नहीं लगता है ; चाकुओं का पता तो अनेक वर्षों पहले लग गया था । इससे इस तथ्य का पता लगता है कि चाकू जानकारी देने वाले के मकान में उसकी जानकारी में छिपाकर रखा गया है और यदि यह साबित हो जाता है कि चाकू का प्रयोग अपराध के किए जाने में किया गया था, तो पता लगा तथ्य अति सुसंगत है । किंतु यदि इस कथन में इन शब्दों को जोड़ दिया जाए 'जिससे मैंने **'क'** को चाकू मारा' तो ये शब्द ग्राह्य नहीं हैं क्योंकि इनका जानकारी देने वाले के मकान में चाकू का पता लगने से कोई संबंध नहीं है ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

21. इस प्रकार, यह देखा जा सकता है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 में यह अपेक्षा की गई है कि पता चले तथ्य में वह स्थान

सम्मिलित है जहां से वस्तु को प्रस्तुत किया जाता है और इस बारे में अभियुक्त का ज्ञान और दी गई जानकारी का अवश्य उस तथ्य से स्पष्टतया संबंध होना चाहिए । प्रस्तुत की गई वस्तु के प्रयोक्ता के बारे में जानकारी, या पूर्ववृत्त का संबंध इसके पता चलने से नहीं होता है । उक्त दृष्टिकोण का इस न्यायालय द्वारा अनेक मामलों में सतत् रूप से अनुसरण किया गया है ।

22. **चंद्रन** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय को अभियुक्त सं. 1 का कथन अभिलिखित करने के कारण न अपराध में फंसाने वाली वस्तुओं की बरामदगी के साक्ष्य पर विचार करना था । उक्त मामले में भी अभियुक्त सं. 1 का साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन ऐसा कोई कथन अभिलिखित नहीं किया गया था जिसके परिणामस्वरूप जेवरातों की बरामदगी हुई थी । न्यायालय ने यह पाया कि सेशन न्यायाधीश तथा उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके गलती की थी कि जेवरात अभि. सा. 34 के समक्ष अभिलिखित किए गए संस्वीकृति कथन (प्रदर्श पी-27) के अनुसरण में अभियुक्त सं. 1 के बताने पर बरामद किए गए थे । उक्त मामले में इस न्यायालय की निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों को निर्दिष्ट करना सुसंगत होगा :–

> "36. ..... इस प्रकार, वास्तविकता यह है कि इन जेवरातों की बरामदगी करवाने के लिए अभियुक्त-1 के किसी संस्वीकृति कथन को साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन साबित नहीं किया गया था .....।"

23. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि इस न्यायालय ने जेवरातों की बरामदगी का अवलंब लेने से इनकार कर दिया था चूंकि अभियुक्त के किसी संस्वीकृति कथन को साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन साबित नहीं किया गया था ।

24. **कर्नाटक राज्य** बनाम **डेविड रोज़ारियो और एक अन्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय की निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों को निर्दिष्ट

---

[1] (1978) 4 एस. सी. सी. 90.

[2] (2002) 7 एस. सी. सी. 728.

करना भी सुसंगत होगा :–

"5. ..... यह जानकारी, जो अन्यथा ग्राह्य है, धारा 27 के अधीन अग्राह्य हो जाती है यदि जानकारी किसी पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में किसी व्यक्ति से नहीं आई है या ऐसे व्यक्ति से आई है जो पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में नहीं था । धारा 27 के अधीन जो कथन ग्राह्य है, वह कथन है जो ऐसी जानकारी है जिसके परिणामस्वरूप तथ्य का पता चलता है । इस प्रकार जानकारी के रूप में जो ग्राह्य है, उसे साबित किया जाना चाहिए और न कि पुलिस अधिकारी द्वारा इसके आधार पर बनाई गई राय को । दूसरे शब्दों में, अभियुक्त द्वारा अभिरक्षा में होते हुए दी गई उस हू-ब-हू जानकारी को साबित किया जाना चाहिए जिसके परिणामस्वरूप वस्तुओं की बरामदगी हुई है । अत: अभियुक्त और अभियोजन पक्ष दोनों के फायदे के लिए आवश्यक है कि दी गई जानकारी को अभिलिखित और साबित किया जाना चाहिए और यदि इसे अभिलिखित नहीं किया जाता है, तो हू-ब-हू जानकारी को साक्ष्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाना चाहिए । साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 में सन्निविष्ट मूल विचार पश्चात्वर्ती घटनाओं द्वारा पुष्टि के सिद्धांत का है । यह विचार इस सिद्धांत पर आधारित है कि यदि किसी बंदी से अभिप्राप्त किसी जानकारी के आधार पर की गई तलाशी में किसी तथ्य का पता चलता है, तो ऐसा पता चला तथ्य इस बात की गारंटी है कि बंदी द्वारा दी गई जानकारी सत्य है । जानकारी संस्वीकृति या अपराध में आलिप्त न करने वाली जानकारी की प्रकृति की हो सकती है किंतु यदि इसके परिणामस्वरूप किसी तथ्य का पता चलता है तो यह एक विश्वसनीय जानकारी बन जाती है । अब यह सुस्थिर है कि किसी वस्तु की बरामदगी इस धारा में परिकल्पित किसी तथ्य का पता चलना नहीं है । पुलुकुरी कोटय्या **बनाम** एम्परर [ए. आई. आर. 1947 पी. सी. 67 = 48 क्रिमिनल लॉ जर्नल 533 = 74 आई. ए. 65] वाले मामले में प्रिवी कौंसिल का विनिश्चय इस निर्वचन का समर्थन करने के लिए सर्वाधिक उद्धृत की जाने वाली नज़ीर है कि इस धारा में परिकल्पित 'पता चले तथ्य' में वह स्थान जहां से

वस्तु को प्रस्तुत किया जाता है, इसके बारे में अभियुक्त का ज्ञान सम्मिलित है, किंतु दी गई जानकारी का इससे अवश्य स्पष्टतया रूप से संबंध होना चाहिए । [महाराष्ट्र राज्य **बनाम** दामु (2000) 6 एस. सी. सी. 269 = 2000 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 1088 = 2000 क्रिमिनल ला जर्नल 2301 वाला मामला देखें] ..... ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

25. हाल ही में, **सुब्रमण्य** बनाम **कर्नाटक राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की एक तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह मत व्यक्त किया था :–

"82. पूर्वोक्त साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए हम यह विचार करने के लिए अग्रसर होंगे कि क्या अभियोजन पक्ष पता चले तथ्यों को विधि के अनुसार सिद्ध और साबित करने में समर्थ रहा है या नहीं । साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 निम्नलिखित प्रकार से है :–

'**27. अभियुक्त से प्राप्त जानकारी में से कितनी साबित की जा सकेगी** – परंतु जब किसी तथ्य के बारे में यह अभिसाक्ष्य दिया जाता है कि किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति से, जो पुलिस आफिसर की अभिरक्षा में हो, प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप उसका पता चला है, तब ऐसी जानकारी में से, उतनी चाहे वह संस्वीकृति की कोटि में आती हो या नहीं, जितनी तद्द्वारा पता चले हुए तथ्य से स्पष्टतया संबंधित है, साबित की जा सकेगी ।'

83. पूर्वोक्त सभी अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य में पहली और मूलभूत खामी यह है कि उनमें से किसी ने इस अपील में अपीलार्थी द्वारा कथित रूप से किए गए हू-ब-हू उस कथन के बारे में अभिसाक्ष्य नहीं दिया है जिसके परिणामस्वरूप अंततोगत्वा साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन एक सुसंगत तथ्य का पता चला था ।

---

[1] 2022 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 1400.

84. यदि अन्वेषण अधिकारी का यह कहना है कि अभियुक्त-अपीलार्थी ने अभिरक्षा में रहते हुए स्वयं अपनी स्वतंत्र इच्छा और स्वेच्छा से यह कथन किया था कि वह उस स्थान पर ले जाएगा जहां उसने आक्रामक आयुध, वस्त्रों इत्यादि को छिपाया है और शव को गाड़े जाने वाले स्थान पर ले जाएगा, तब पहला कार्य जो अन्वेषक अधिकारी को करना चाहिए था, वह यह था कि उसे पुलिस थाने में ही दो स्वतंत्र साक्षियों को बुलाना चाहिए था । जब एक बार दो स्वतंत्र साक्षी पुलिस थाने पहुंच जाते तो उसके पश्चात् उनकी मौजूदगी में अभियुक्त को एक समुचित कथन करने के लिए कहना चाहिए था जो वह उस स्थान को बताने के संबंध में इच्छुक हो जहां उसने कथित रूप से आक्रामक आयुध आदि को छिपाया है । जब अभियुक्त अभिरक्षा में रहते हुए दो स्वतंत्र साक्षियों (पंच साक्षियों) के समक्ष ऐसा कथन करता है तो अभियुक्त द्वारा किए गए हू-ब-हू कथन या बल्कि कहे गए हू-ब-हू शब्दों को पंचनामा के पहले भाग में सम्मिलित किया जाना चाहिए जो अन्वेषण अधिकारी द्वारा विधि के अनुसार तैयार किया जाए । पंचनामा का यह पहला भाग साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के प्रयोजनार्थ सदैव स्वतंत्र साक्षियों की मौजूदगी में पुलिस थाने में तैयार किया जाए जिससे यह विश्वास हो सके कि अभियुक्त द्वारा वह स्थान बताने के लिए जहां अपराध कारित करने में प्रयुक्त किए गए आक्रामक आयुध या किसी अन्य वस्तु को छिपाया गया है, अपनी रंजामंदी अभिव्यक्त करते हुए स्वयं अपनी स्वतंत्र इच्छा और स्वेच्छा से एक विशिष्ट कथन किया गया था । जब एक बार पंचनामा का यह पहला भाग पूर्ण हो जाता है तो उसके पश्चात् पुलिस दल अभियुक्त और दो स्वतंत्र साक्षियों (पंच साक्षियों) के साथ उस विशिष्ट स्थान के लिए अग्रसर होगा जहां पर अभियुक्त द्वारा ले जाया जाए । यदि उस विशिष्ट स्थान से कोई वस्तु जैसे आक्रामक आयुध या रक्तरंजित वस्त्र या कोई अन्य वस्तु का पता चलता है तब इस संपूर्ण कार्यवाही का वह भाग पंचनामा का दूसरा भाग होगा । यही कारण है कि विधि अन्वेषण अधिकारी से साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन यथा परिकल्पित पता चली वस्तुओं के बारे में पंचनामा

तैयार करने की प्रत्याशा करती है । यदि हम अन्वेषण अधिकारी के संपूर्ण मौखिक साक्ष्य को पढ़े तो यह स्पष्ट है कि इसमें मामले के सभी सुसंगत पहलुओं के बारे में कमी है ।"

26. इस न्यायालय ने इस बात पर विस्तारपूर्वक विचार किया कि कैसे विधि में अन्वेषण अधिकारी से साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन परिकल्पित अनुसार पता चले तथ्य का पंचनामा बनाने की प्रत्याशा की गई है । प्रस्तुत मामले में, पूर्वोक्त अपेक्षा के अनुसार बरामदगी पंचनामा तैयार करने की बात को तो छोड़िए, बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) का साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन अभिलिखित कथन तक नहीं है । अत: हमारा यह सुविचारित मत है कि अभियोजन पक्ष इस परिस्थिति को साबित करने में असफल रहा है कि मृतक का शव बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) के बताने पर बरामद किया गया था ।

27. एक अन्य परिस्थिति जिस पर उच्च न्यायालय ने अवलंब लिया है यह थी कि जेवरातों की बरामदगी बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) के बताने पर की गई थी । हम यह पाते हैं कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों ने ऐसी बरामदगी का अवलंब लेकर स्पष्ट रूप से गलती की है । विचारण न्यायालय ने यह पाया था कि यह दर्शित करने के लिए पर्याप्त सामग्री है कि अभिकथित बरामदगी ज्ञापन एक कूटरचित दस्तावेज है और प्रदर्श पी-14 के अनुसार अभिकथित बरामदगी ढोंग है । तथापि, विचारण न्यायालय ने फिर भी अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए उक्त बरामदगी का अवलंब लिया । हमारे मत में, इस संबंध में विचारण न्यायालय का निष्कर्ष पूरी तरह से अनुचित है जिसकी उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई है ।

28. जहां तक शिबू **उर्फ** शिबू सिंह (अभियुक्त सं. 1) का संबंध है, विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा जिस अतिरिक्त परिस्थिति का अवलंब लिए जाने की ईप्सा की गई है, वह फावड़े की अभिकथित बरामदगी है । यह उल्लेखनीय है कि फावड़ा भी उसी स्थान से बरामद किया गया था जहां से अभिकथित रूप से बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) के बताने पर मृतक का शव बरामद

किया गया था । विचारण न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि जिस स्थान से फावड़ा बरामद किया गया था, वह पहले ही बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) के प्रकटन कथन से ज्ञात था, तथापि, विचारण न्यायालय ने फिर भी उक्त फावड़े की बरामदगी को साक्ष्य में ग्राह्य होना अभिनिर्धारित किया । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उक्त बरामदगी उस स्थान से की गई थी जो पहले से ज्ञात था न कि अनन्य रूप से शिबू **उर्फ** शिबू सिंह (अभियुक्त सं. 1) को ज्ञात था । हमारा यह निष्कर्ष है कि विचारण न्यायालय ने पुन: ऐसा निष्कर्ष निकालकर अनुचितता की है ।

29. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि एकमात्र परिस्थिति जो अब बच जाती है, वह अभि. सा. 1 के साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त को अंतिम बार मृतक के साथ देखे जाने की परिस्थिति है । मामले को इस प्रकार दृष्टिगत करते हुए, हमारा यह निष्कर्ष है कि केवल अंतिम बार देखे जाने की कहानी के आधार पर दोषसिद्धि नहीं की जा सकती थी । अभियोजन पक्ष पूरी तरह से यह साबित करने में असफल रहा है कि मृतक के शव की बरामदगी बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) के बताने पर की गई थी । बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) के मकान से वस्तुओं की बरामदगी, यहां तक कि विचारण न्यायालय के अनुसार भी, ढोंग और कूटरचित है । शिबू **उर्फ** शिबू सिंह (अभियुक्त सं. 1) के बताने पर फावड़े की बरामदगी ऐसे स्थान से की गई है जो, यहां तक कि विचारण न्यायालय के अनुसार भी, बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) द्वारा किए गए प्रकटन कथन के कारण ज्ञात थी ।

30. मामले को इस प्रकार दृष्टिगत करते हुए, हमारा यह निष्कर्ष है कि अभियोजन पक्ष अपराध में आलिप्त करने वाली उन परिस्थितियों की श्रृंखला को साबित करने में पूरी तरह असफल रहा है जिससे अभियुक्त की दोषिता के सिवाय कोई अन्य निष्कर्ष न निकलता हो ।

31. जहां तक विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री बालगोपाल द्वारा **सुरेश चंद्र बाहरी** (उपर्युक्त) वाले मामले का अवलंब लेने का संबंध है, यह पूर्ण रूप से भ्रामक है क्योंकि पैरा 40 में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त

किया है :–

> "40. ..... पूर्वोक्त दलीलों के गुण और अवगुण पर चर्चा करने से पूर्व हम यह कहना चाहेंगे कि पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित दोषसिद्धि से संबंधित विधि भली-भांति स्थिर है और इस पहलू पर विस्तार से चर्चा करने की मुश्किल से आवश्यकता है । यह कहना पर्याप्त होगा कि हत्या के ऐसे मामले में जिसमें उपलब्ध साक्ष्य केवल पारिस्थितिक प्रकृति का है तो उस स्थिति में उन तथ्यों और परिस्थितियों को जिनसे दोषिता का निष्कर्ष निकाला जाना है उन्हें अभियोजन पक्ष द्वारा सभी युक्तियुक्त संदेह के परे पूरी तरह से सिद्ध किया जाना चाहिए और इस प्रकार सिद्ध तथ्य और परिस्थितियां न केवल अभियुक्त की दोषिता के संगत होनी चाहिएं अपितु वे अवश्य अभियुक्त की निर्दोषिता के पूर्णत: असंगत भी होनी चाहिएं और उसकी निर्दोषिता के संगत प्रत्येक युक्तियुक्त कल्पना अपवर्जित होनी चाहिए ।"

32. उक्त मामले में इस न्यायालय की निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों को निर्दिष्ट करना भी सुसंगत होगा :–

> "71. ..... साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के उपबंध इस दृष्टिकोण पर आधारित हैं कि यदि किसी तथ्य का वास्तव में दी गई जानकारी के परिणामस्वरूप पता चलता है, तो तद्द्वारा यह कुछ गारंटी हो जाती है कि जानकारी सही थी और परिणामस्वरूप उक्त जानकारी को सुरक्षित रूप से साक्ष्य में दिए जाने के लिए अनुज्ञात किया जा सकता है क्योंकि यदि ऐसी जानकारी से वस्तुओं या अपराध के आयुध का पता चलने से पक्की और पुष्ट हो जाती है और जिससे यह विश्वास पैदा होता है कि अपराध की वस्तुओं के बारे में की गई संस्वीकृति की जानकारी मिथ्या नहीं हो सकती .....।"

33. उक्त निर्णय के पैरा 71 के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि इस न्यायालय ने यह दोहराया था कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के उपयोजन के लिए दो आवश्यक अपेक्षाएं यह हैं कि (1) जानकारी देने वाला व्यक्ति अवश्य किसी अपराध का अभियुक्त होना चाहिए और (2) वह अवश्य पुलिस अभिरक्षा में भी होना चाहिए । इस न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया था कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के उपबंध इस दृष्टिकोण पर आधारित हैं कि यदि दी गई जानकारी के परिणामस्वरूप किसी तथ्य का वास्तव में पता चला है, तो इससे कुछ गारंटी हो जाती है कि जानकारी सही थी और परिणामस्वरूप उक्त जानकारी को सुरक्षित रूप से साक्ष्य में दिए जाने के लिए अनुज्ञात किया जा सकता है ।

34. उक्त मामले के तथ्यों में, इस न्यायालय ने पाया था कि अपीलार्थी गुरबचन सिंह द्वारा किया गया एक संस्वीकृति प्रकटन कथन था जिसकी पुष्टि अपराध में आलिप्त करने वाली वस्तुओं की बरामदगी से हुई थी । इसलिए इस न्यायालय ने प्रकटन कथन और इस संबंध में प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर विश्वास किया । जैसा कि इसमें ऊपर पहले ही कहा गया है, प्रस्तुत मामले में मृतक के शव की बरामदगी के संबंध में अभिलिखित बोबी (अभियुक्त सं. 3/इस अपील में अपीलार्थी) का कोई संस्वीकृति कथन नहीं है ।

35. परिणामतः, यह अपील मंजूर की जाती है ।

36. विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 395, 365, 364, 201, 380, 302 के अधीन दोषसिद्ध करते हुए तारीख 18 दिसंबर, 2000 को पारित निर्णय और उच्च न्यायालय द्वारा इसकी अभिपुष्टि करते हुए तारीख 25 अगस्त, 2008 को पारित आक्षेपित निर्णय अपास्त किए जाते हैं । अपीलार्थी को उस पर लगाए गए सभी आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है । अभियुक्त के जमानत बंधपत्र उन्मोचित हो जाएंगे ।

37. लंबित आवेदन, यदि कोई है (हैं), का निपटारा हो जाएगा ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

[2023] 1 उम. नि. प. 128

नईम अहमद

बनाम

राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली)

[2023 की दांडिक अपील सं. 257]

30 जनवरी, 2023

न्यायमूर्ति अजय रस्तोगी और न्यायमूर्ति बेला एम. त्रिवेदी

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 375, 376 और 90 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114क] – बलात्संग – उपधारणा – तथ्य के भ्रम के अधीन सम्मति – दोषसिद्धि – विवाहित अभियोक्त्री और विवाहित अभियुक्त के बीच मित्रतापूर्ण संबंध स्थापित हो जाना – अभियुक्त द्वारा उससे विवाह करने का वचन देते हुए उससे कई वर्षों तक लैंगिक संबंध बनाया जाना – अभियोक्त्री द्वारा अपने पति से विवाह-विच्छेद करके अभियुक्त के साथ रहना आरंभ किया जाना और अभियुक्त के साथ लैंगिक संबंध के परिणामस्वरूप एक बालक का जन्म होना – बाद में अभियुक्त द्वारा अभियोक्त्री से विवाह करने से इनकार कर देना – अभियुक्त द्वारा मिथ्या वचन देकर और तथ्य के भ्रम के अधीन लैंगिक संबंध बनाने की सम्मति अभिप्राप्त करने का अभिकथन करते हुए अभियोक्त्री द्वारा शिकायत दर्ज कराया जाना – अभियुक्त को बलात्संग के अपराध के लिए दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया जाना – संधार्यता – जहां अभियोक्त्री पहले से विवाहित थी और उसके तीन बालक भी थे और अपने पति से विवाह-विच्छेद करके अभियुक्त के पहले से विवाहित होने के तथ्य का पता चलने के पश्चात् भी लगभग पांच वर्षों तक उसके साथ रहती रही, वहां यह नहीं कहा जा सकता कि अभियोक्त्री द्वारा लैंगिक संबंध बनाने की सम्मति तथ्य के भ्रम के अधीन दी गई हो जिससे कि अभियुक्त को बलात्संग के अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जा सके इसलिए उसे दोषमुक्त करना उचित होगा ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 375 और 376 – बलात्संग – विवाहित

अभियोक्त्री और विवाहित अभियुक्त के बीच मित्रतापूर्ण संबंध स्थापित हो जाना – अभियुक्त द्वारा उससे विवाह करने का वचन देते हुए उससे लैंगिक संबंध बनाया जाना – अभियुक्त द्वारा बाद में उससे विवाह करने से इनकार कर देना – मिथ्या वचन और वचन भंग करने के बीच फर्क – मिथ्या वचन की दशा में अभियुक्त का आरंभ से ही अभियोक्त्री के साथ विवाह करने का आशय नहीं होता है और केवल अपनी वासना की पूर्ति के लिए उससे विवाह करने का मिथ्या वचन देकर उससे छल और धोखा करेगा, तथापि, वचन भंग की दशा में इस संभाव्यता से इनकार नहीं किया जा सकता कि अभियुक्त द्वारा अभियोक्त्री के साथ लैंगिक संबंध बनाने से पूर्व उससे बाद में विवाह करने का वचन पूरी गंभीरता से दिया गया हो किंतु बाद में उसके समक्ष कुछ अनपेक्षित या उसके नियंत्रण से बाहर की परिस्थितियां आ गई होंगी जिनके कारण वह अपना वचन पूरा करने में असमर्थ रहा होगा इसलिए वचन भंग के हर मामले पर विवाह करने के मिथ्या वचन के मामले की तरह विचार करना और किसी व्यक्ति को धारा 376 के अधीन अपराध के लिए अभियोजित करना मूर्खता होगी तथा हर मामला न्यायालय के समक्ष उसके साबित तथ्यों पर निर्भर करेगा ।

इस अपील के तथ्य इस प्रकार हैं कि अभियोक्त्री वर्ष 2009 में अपने पति और तीन बालकों के साथ संजय एन्कलेव, उत्तम नगर, दिल्ली में एक किराए के मकान में रहती थी । अभियुक्त भी एक किराए के मकान में रहता था जो अभियोक्त्री के मकान के सामने स्थित था । तारीख 21 मार्च, 2015 को अभियोक्त्री ने अभियुक्त के विरुद्ध एक शिकायत, अन्य बातों के साथ-साथ, यह अभिकथन करते हुए दर्ज कराई कि अभियुक्त उसे यह कहकर प्रेरित कर रहा था कि उसके पति की पर्याप्त आय नहीं है और उसकी (अभियुक्त) एक अच्छी नौकरी है और वह अपनी हैसियत के अनुसार उसका भरण-पोषण करेगा । अभियुक्त ने उसे यह भी आश्वासन दिया कि वह उसके साथ विवाह (निकाह) कर लेगा । उसके पश्चात्, अभियुक्त उसके साथ अयुक्त मैथुन करने के आशय से उसे विभिन्न स्थानों पर बुलाता रहता था, जिसके परिणामस्वरूप वह वर्ष 2011 में गर्भवती हो गई । उसने यह भी अभिकथन किया कि अभियुक्त ने उसे इस बात के लिए प्रेरित किया कि बालक के जन्म के

पश्चात् वह उससे विवाह कर लेगा । उसने उसे यह भी आश्वासन दिया था कि वह विवाहित नहीं है और विवाह के पश्चात् वह उसे अपने मूल निवास स्थान पर ले जाएगा । वर्ष 2012 में अभियुक्त उसे फुसलाकर कापसहेड़ा बार्डर स्थित नत्थू मल बिल्डिंग में एक अन्य किराए के परिसर में ले गया और उसके साथ अयुक्त संबंध बनाना जारी रखा । कुछ समय पश्चात् अभियुक्त ने उक्त किराए के परिसर को यह मिथ्या बहाना बनाकर खाली कर दिया कि उसके माता-पिता गंभीर रूप से बीमार हैं और उसे अपने मूल निवास स्थान जाना है । उसने अभियोक्त्री को अवयस्क बालक नमन के साथ एक आश्रय गृह में आश्रय लेने के लिए कहा । उसने उसे अपने पति से तलाक लेने के लिए भी मजबूर किया । अभियोक्त्री ने शिकायत में यह भी अभिकथन किया कि अभियुक्त ने उससे यह झूठ बोला था कि उसे अपने मूल निवास स्थान जाना है, किंतु वास्तव में वह वहां नहीं गया था और इस बात का उसे तब पता चला जब वह उस काल सेंटर में गई जहां अभियुक्त काम करता था । जब उसने उसके कार्य-स्थल पर शोर-शराबा किया, तो उसने उसे आश्वासन दिया कि वह शीघ्र ही उससे विवाह कर लेगा । वर्ष 2012 में वह अभियुक्त के मूल निवास स्थान पर गई और पता चला कि वह पहले से विवाहित है और बच्चे भी हैं । अभियुक्त के माता-पिता ने उसे वहां रखने के लिए इनकार कर दिया । उसके पश्चात् भी अभियुक्त उससे विवाह करने का आश्वासन देता रहा किंतु विवाह नहीं किया । इसलिए शिकायत फाइल की गई । उक्त शिकायत को अभियुक्त के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन अपराध के लिए पुलिस थाना बिंदापुर, जिला दक्षिण-पश्चिम, दिल्ली में तारीख 21 मार्च, 2015 को 2000 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 412 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया । अभियोजन पक्ष द्वारा ग्यारह साक्षियों की परीक्षा कराने के पश्चात् अपराध में आलिप्त करने वाले साक्ष्य को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन स्पष्टीकरण के प्रयोजन के लिए अभियुक्त के ध्यान में लाया गया, तथापि, अभियुक्त ने उसके विरुद्ध लगाए गए अभिकथनों से इनकार किया और यह भी कथन किया कि उसके अभियोक्त्री के साथ सहमतिजन्य शारीरिक संबंध थे और उसे जानकारी थी कि वह एक विवाहित व्यक्ति है और बच्चे भी हैं और वह उसके मकान पर उसकी पत्नी से भी मिली थी । उसने यह भी कथन

किया कि वह अभियोक्त्री को नियमित रूप से आर्थिक सहायता प्रदान कर रहा था और जब उसने उसकी 1.5 लाख से 2 लाख रुपए की मांग को पूरा करने से इनकार कर दिया, तो उसने उसके विरुद्ध एक मिथ्या मामला दर्ज करा दिया । सेशन न्यायालय द्वारा अभिलेख पर के साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् अपीलार्थी-अभियुक्त को दोषसिद्ध किया गया और पचास हजार रूपए के जुर्माने सहित दस वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया । उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल की गई अपील में उच्च न्यायालय द्वारा दंडादेश और जुर्माने को कम करके उपांतरित किया गया । अभियुक्त द्वारा अपनी दोषसिद्ध और दंडादेश से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – दांडिक विधिशास्त्र के मूलभूत सिद्धांतों का आधार यह है कि अभियोजन पक्ष को अभियुक्त की दोषिता को विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत करके युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करना होता है, तथापि, भारतीय समाज के लोकाचार और संस्कृति पर विचार करते हुए और 'बलात्संग' जैसे सामाजिक अपराध के बढ़ते ग्राफ को ध्यान में रखते हुए न्यायालयों को भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 114क में यथा अंतर्विष्ट कानूनी उपधारणा करने की अनुज्ञा दी गई है । धारा 114क के अनुसार, बलात्संग से संबंधित कतिपय मामलों में जहां सम्मति न हो, वहां उपधारणा की जा सकती है । उक्त उपबंध के अनुसार, यदि अभियुक्त द्वारा मैथुन करना साबित हो जाता है और इस बारे में प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या मैथुन उस स्त्री की सम्मति के बिना किया गया है, जिससे बलात्संग किया जाना अभिकथित है, और यदि वह स्त्री न्यायालय के समक्ष अपने साक्ष्य में यह कथन करती है कि उसने अपनी सम्मति नहीं दी थी, तो न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि उसने सम्मति नहीं दी थी । इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि किसी व्यक्ति द्वारा दी गई सम्मति तब भारतीय दंड संहिता की किसी धारा द्वारा आशयित सम्मति नहीं होगी, यदि वह सम्मति किसी व्यक्ति ने क्षति, भय के अधीन या भारतीय दंड संहिता की धारा 90 में यथा अनुध्यात तथ्य के भ्रम के अधीन दी गई हो । इसके अतिरिक्त, धारा 375 में भी कतिपय कृत्यों का वर्णन किया गया है जो यदि अभियुक्त

द्वारा उस धारा में वर्णित परिस्थितियों में किए जाते हैं, तो 'बलात्संग' के रूप में किया गया कहा जा सकता है, चाहे अभियोक्त्री की सम्मति से ही क्यों न किया गया हो । इस न्यायालय की राय में, जब अभियुक्त को 'बलात्संग' के अपराध के लिए आरोपित किया जाता है, तब भारतीय दंड संहिता की धारा 90 में अंतर्विष्ट "तथ्य का भ्रम" अभिव्यक्ति का मूल्यांकन भारतीय दंड संहिता की धारा 375 में अंतर्विष्ट खंडों, विशिष्ट रूप से, इसके तीसरे, चौथे और पांचवें खंड को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए । उक्त तीन खंडों में वर्णित परिस्थितियां भारतीय दंड संहिता की धारा 90 में यथा अनुध्यात "तथ्य का भ्रम" अभिव्यक्ति से अधिक व्यापक हैं । धारा 375 में सात परिस्थितियां वर्णित हैं जिनके अधीन यह कहा जा सकता है कि 'बलात्संग' किया गया है । तीसरे खंड के अनुसार, जब किसी स्त्री की सम्मति उसे या ऐसे किसी व्यक्ति को, जिससे वह हितबद्ध है, मृत्यु या उपहति के भय में डालकर अभिप्राप्त की गई हो, तब अभियोक्त्री की सम्मति के बावजूद बलात्संग किया गया कहा जा सकता है । चौथे खंड के अनुसार, उस स्त्री की सम्मति से, जबकि वह पुरुष यह जानता है कि वह उस स्त्री का पति नहीं है और उस स्त्री ने सम्मति इसलिए दी है कि वह विश्वास करती है कि वह ऐसा पुरुष है जिससे वह विधिपूर्वक विवाहित है या विवाहित होने का विश्वास करती है ; और पांचवें खंड के अनुसार उस स्त्री की सम्मति से, जबकि ऐसी सम्मति देने के समय अभियोक्त्री विकृतचित्त या मत्तता के कारण या उस पुरुष द्वारा व्यक्तिगत रूप में या किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से कोई संज्ञा शून्यकारी या अस्वाथ्यकर पदार्थ दिए जाने के कारण उस बात की, जिसके बारे में वह सम्मति देती है, प्रकृति और परिणामों को समझने में असमर्थ है । इस प्रकार, अभियोक्त्री की सम्मति धारा 90 में अनुध्यात अनुसार तथ्य के भ्रम के अधीन दिए जाने के अतिरिक्त यदि उसकी सम्मति भारतीय दंड संहिता की धारा 375 में वर्णित किसी परिस्थिति के अधीन दी गई है, तो उसे 'सम्मति' नहीं माना जाएगा । इस संबंध में विधि की प्रतिपादना इस न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों से स्पष्ट होती है, तथापि, ऐसी विधि का या ऐसे विनिश्चयों का उपयोजन प्रत्येक मामले में विधिक साक्ष्य के रूप में ज्ञात साबित तथ्यों पर निर्भर करेगा । इन निर्णयों में अधिकथित विनिश्चयाधार

या इस न्यायालय द्वारा घोषित विधि प्रस्तुत मामलों का विनिश्चय करने के लिए न्यायालयों को न्यायिक विचार के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत प्रदान करते हैं, किंतु विधि को लागू करते हुए न्यायालयों को अपने समक्ष साक्ष्य और उन परिस्थितियों पर भी विचार करना चाहिए जिनके अधीन अभियुक्तों द्वारा अभिकथित अपराध कारित किए जाते हैं । प्रस्तुत मामले में, कानूनी उपबंधों और विभिन्न निर्णयों में इस न्यायालय द्वारा किए गए उनके निर्वचनों को ध्यान में रखते हुए कोई भी अपीलार्थी-अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन अपराध का दोषी अभिनिर्धारित करने के लिए प्रेरित हो सकता है, जैसा कि सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा किया गया है, तथापि, अभिलेख पर के साक्ष्य की सूक्ष्मता से संवीक्षा करने पर हमारा यह निष्कर्ष है कि निचले न्यायालयों द्वारा अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन दोषी अभिनिर्धारित करने में त्रुटि की गई है । प्रत्यर्थी की ओर से उठाया गया मुख्य विवाद यह है कि अभियोक्त्री ने लैंगिक संबंध के लिए अपनी सम्मति तथ्य के भ्रम के अधीन दी थी क्योंकि अभियुक्त ने उसके साथ विवाह करने का एक मिथ्या वचन दिया था और बाद में उसने विवाह नहीं किया और इसलिए ऐसी सम्मति विधि की दृष्टि से सम्मति नहीं थी और मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 375 के दूसरे खंड के अंतर्गत आता है । इस संबंध में यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि एक मिथ्या वचन देने और अभियुक्त द्वारा वचन का भंग करने के बीच फर्क है । मिथ्या वचन की दशा में, अभियुक्त का आरंभ से ही अभियोक्त्री के साथ विवाह करने का कोई आशय नहीं होता है और उसने केवल अपनी हवस को पूरा करने की दृष्टि से उससे विवाह करने का एक मिथ्या वचन देकर धोखा और छल किया होगा, जबकि वचन भंग की दशा में, इस बात की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि अभियुक्त ने अभियोक्त्री से विवाह करने का वचन पूरी गंभीरता से दिया होगा और बाद में उसके समक्ष कुछ अनपेक्षित या उसके नियंत्रण से बाहर की परिस्थितियां आ गई होंगी जिनके कारण वह अपना वचन पूरा करने में असमर्थ रहा होगा । अत: वचन भंग के हर मामले पर विवाह करने के मिथ्या वचन के मामले की तरह विचार करना और किसी व्यक्ति को धारा 376 के

अधीन अपराध के लिए अभियोजित करना मूर्खता होगी । जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, हर मामला न्यायालय के समक्ष उसके साबित तथ्यों पर निर्भर करेगा । प्रस्तुत मामले में, यह नहीं कहा जा सकता कि अभियोक्त्री ने, जो स्वयं एक विवाहित महिला थी और जिसके तीन बच्चे थे, अपीलार्थी के साथ लैंगिक संबंध बनाने के लिए सम्मति देते समय अपीलार्थी द्वारा दिए गए अभिकथित मिथ्या वचन या तथ्य के भ्रम के अधीन कार्य किया था । निर्विवाद रूप से, अभियोक्त्री ने वर्ष 2015 में शिकायत देने तक कम से कम लगभग पांच वर्षों तक उसके साथ ऐसे संबंध बनाए रखे । यदि उसके द्वारा न्यायालय के समक्ष दिए गए अपने अभिसाक्ष्य में किए गए अभिकथनों के प्रत्यक्ष महत्व पर विचार किया जाए, तब भी ऐसे अभिकथनों का अर्थान्वयन अपीलार्थी द्वारा 'बलात्संग' करने के रूप में करने से इस मामले को असामान्य रूप से खींचना होगा । अभियोक्त्री एक विवाहित स्त्री थी और तीन बच्चों की माता थी, वह उस कृत्य की नैतिकता या अनैतिकता के महत्व और परिणामों को समझने के लिए पर्याप्त परिपक्व और बुद्धिमान थी । अन्यथा भी, यदि अभियुक्त के साथ ऐसे संबंध के दौरान उसके संपूर्ण आचरण को ध्यानपूर्वक देखा जाए तो यह प्रतीत होता है कि उसने अभियुक्त, जिसको वह पसंद करने लगी थी, के साथ संबंध बनाकर अपने पति और बच्चों को धोखा दिया था । वह अपने पति के साथ अपने विवाह के अस्तित्व में रहने के दौरान अभियुक्त के साथ एक बेहतर जीवन जीने के लिए चली गई थी । वर्ष 2011 में अभियुक्त से गर्भवती हो जाने और अभियुक्त के साथ संबंध से एक लड़के के जन्म तक उसे अभियुक्त द्वारा विवाह का मिथ्या वचन या धोखा देने की कोई शिकायत नहीं थी । वह वर्ष 2012 में अभियुक्त के मूल निवास स्थान पर भी गई थी और उसे पता चला था कि वह एक विवाहित व्यक्ति है जिसके बच्चे भी हैं, फिर भी वह एक दूसरे मकान में अभियुक्त के साथ बिना किसी शिकायत के रहती रही । उसने वर्ष 2014 में पारस्परिक सम्मति से अपने पति से तलाक भी ले लिया और जिसके पश्चात् उसने अपने तीनों बच्चों को अपने पति के पास ही छोड़ दिया । वर्तमान शिकायत वर्ष 2015 में फाइल की गई थी जब उनके बीच अवश्य कोई विवाद पैदा हो गया होगा । अभियुक्त ने दंड प्रक्रिया

संहिता की धारा 313 के अधीन अभिलिखित अपने आगे के कथन में यह कहा था कि अभियोक्त्री ने शिकायत इसलिए दर्ज कराई थी क्योंकि उसने उसकी भारी-भरकम रकम का संदाय करने की मांग को पूरा करने से इनकार कर दिया था । इस प्रकार, इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तनिक संदेह के बिना यह कहा जा सकता है कि अभियोक्त्री ने अपीलार्थी के साथ लैंगिक संबंध बनाने के लिए अपनी सम्मति तथ्य के भ्रम के अधीन नहीं दी थी जिससे अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 375 के अर्थांतर्गत बलात्संग कारित करने का दोषी अभिनिर्धारित किया जा सके । मामले की इस दृष्टि से, अभियुक्त उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किए जाने योग्य है । निस्संदेह, निचले न्यायालयों द्वारा प्रतिकर का संदाय करने के लिए दिए गए निदेश अपरिवर्तित रहेंगे क्योंकि अपीलार्थी ने बालक का उत्तरदायित्व लेना स्वीकार किया है और अभियोक्त्री को प्रतिकर की रकम का संदाय भी कर दिया है । ((पैरा 10, 11, 12, 18, 20, 21 और 22)

इस प्रक्रम पर, यह उल्लेख किया जा सकता है कि सुनवाई के दौरान इस न्यायालय के ध्यान में लाया गया था कि अभियोक्त्री का अभिसाक्ष्य विचारण न्यायालय द्वारा अंग्रेज़ी भाषा में अभिलिखित किया गया था यद्यपि उसने अपना अभिसाक्ष्य देशी भाषा में दिया था । इस न्यायालय को इस बात से अवगत कराया गया है कि कुछ विचारण न्यायालयों में साक्षियों के अभिसाक्ष्य उनकी भाषा में दर्ज नहीं किए जा रहे हैं और केवल अंग्रेज़ी भाषा में अभिलिखित किए जा रहे हैं, जैसा पीठासीन अधिकारी द्वारा अनुवाद किया जाए । इस न्यायालय की राय में, साक्षी का साक्ष्य दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 277 के अधीन अपेक्षा अनुसार न्यायालय की भाषा में लिखा जाना चाहिए । यदि साक्षी न्यायालय की भाषा में साक्ष्य देता है तो उसे केवल उसी भाषा में लिखा जाना चाहिए । यदि साक्षी किसी अन्य भाषा में साक्ष्य देता है, तो उसे, यदि साध्य हो तो, उसी भाषा में लिखा जाए और यदि ऐसा करना साध्य न हो तो साक्ष्य का न्यायालय की भाषा में सही अनुवाद तैयार किया जाए । जब साक्षी ने साक्ष्य अंग्रेजी में दिया हो और उसे उसी भाषा में

लिखा गया हो और न्यायालय की भाषा में उसके अनुवाद की किसी पक्षकार द्वारा अपेक्षा न की गई हो, तो न्यायालय ऐसे अनुवाद से अभिमुक्ति दे सकता है । यदि साक्षी न्यायालय की भाषा से भिन्न भाषा में साक्ष्य देता है तो उसका न्यायालय की भाषा में सही अनुवाद यथासाध्य शीघ्र तैयार किया जाना चाहिए । साक्षी का साक्ष्य यथासाध्य न्यायालय की भाषा में अभिलिखित किया जाना चाहिए और फिर अभिलेख का भाग बनाने के लिए उसका अनुवाद न्यायालय की भाषा में कराया जाए । तथापि, साक्षी के साक्ष्य को केवल अंग्रेजी भाषा में अनुवाद रूप में अभिलिखित करना, यद्यपि साक्षी ने न्यायालय की भाषा, या अपनी देशी भाषा में साक्ष्य दिया है, अनुज्ञेय नहीं है । इसलिए साक्ष्य का सार और अर्थ तथा न्यायालय में किसी साक्षी के हाव-भाव का सर्वोत्तम रीति में मूल्यांकन केवल तब किया जा सकता है जब साक्ष्य साक्षी की भाषा में अभिलिखित किया गया हो । अन्यथा भी, जब यह प्रश्न उद्भूत होता है कि साक्षी ने अपने साक्ष्य में हू-ब-हू क्या कहा था, तब साक्षी के मूल अभिसाक्ष्य पर विचार किया जाना चाहिए न कि पीठासीन न्यायाधीश द्वारा तैयार किए गए अंग्रेजी में अनुवादित ज्ञापन पर । अत: यह निदेश दिया जाता है कि सभी न्यायालय साक्षियों के साक्ष्य अभिलिखित करते समय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 277 के उपबंधों का सम्यक् रूप से अनुपालन करेंगे । (पैरा 23, 24 और 25)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2019] (2019) 18 एस. सी. सी. 191
डा. धुवराम मुरलीधर सोनार बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य** ; 6, 17

[2013] (2013) 9 एस. सी. सी. 293
प्रशांत भारती बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र दिल्ली)** ; 6

[2013] (2013) 7 एस. सी. सी. 675
दीपक गुलाटी बनाम **हरियाणा राज्य** ; 16

[2005] (2005) 1 एस. सी. सी. 88
दिलीप सिंह उर्फ **दिलीप कुमार** बनाम
बिहार राज्य ; 6, 15

[2003] (2003) 4 एस. सी. सी. 46
उदय बनाम **कर्नाटक राज्य** । 14

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2023 की दांडिक अपील सं. 257.

2016 की दांडिक अपील सं. 46 में दिल्ली उच्च न्यायालय, नई दिल्ली द्वारा 30 सितंबर, 2016 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सुश्री इंदिरा जयसिंह, ज्येष्ठ अधिवक्ता (न्याय-मित्र), सर्वश्री प्रशांत सिंह, श्रीसत्य मोहंती, रविन्द्र सिंह, (सुश्री) रवीशा गुप्ता, (सुश्री) मंतिका हरियाणी, संजीव कौशिक, श्रेयस अवस्थी, देवव्रत सिंह, रोहिन भट्ट, (सुश्री) मुस्कान सुराना, (सुश्री) आशा शर्मा, राज किशोर चौधरी, शकील अहमद, अनुपम भाटी, रिज़वान अहमद, अमीर कलीम, विक्रमजीत सिंह रंगा, नकुल चौधरी और वसीम अख्तर खान

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री के. एल. जंजानी, केतनपाल, मोहम्मद अखील, (सुश्री) दीपाबाली दत्ता, टी. एस. सबारिश और गुरमीत सिंह मक्कड़

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति बेला एम. त्रिवेदी ने दिया ।

न्या. त्रिवेदी – इजाजत दी गई ।

2. अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा यह अपील 2016 की दांडिक अपील सं. 46 में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 30 सितंबर, 2016 को

पारित किए गए उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने अपील का निपटारा करते हुए 2015 के सेशन मामला सं. 67 में अपर सेशन न्यायाधीश, विशेष त्वरित न्यायालय, द्वारका न्यायालय, नई दिल्ली (जिसे इसमें इसके पश्चात् सेशन न्यायालय कहा गया है) द्वारा तारीख 27 नवंबर, 2015 को पारित किए गए निर्णय और आदेश को उपांतरित कर दिया है ।

3. सेशन न्यायालय ने अपीलार्थी-अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन अपराध के लिए दोषी अभिनिर्धारित करते हुए उसे 10 वर्ष का कठोर कारावास भुगतने और 50,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर एक वर्ष का अतिरिक्त कारावास भुगतने का दंडादेश दिया था । सेशन न्यायालय ने अपीलार्थी को अभियोक्त्री को 5,00,000/- रुपए के प्रतिकर का संदाय करने का भी निदेश दिया था जिससे वह अपना और अपने अवयस्क बालक का भरण-पोषण कर सके । अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील में उच्च न्यायालय ने सेशन न्यायालय द्वारा पारित किए गए दंडादेश का उपांतरण करते हुए मूल दंडादेश को कम करके सात वर्ष और जुर्माने को कम करके 5,000/- रुपए कर दिया और अभियोक्त्री को प्रतिकर का संदाय करने से संबंधित निदेश की पुष्टि की । यह बताया गया है कि अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के निदेशानुसार अभियोक्त्री को 5,00,000/- रुपए के प्रतिकर की रकम का संदाय कर दिया है ।

4. सेशन न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत अभियोजन पक्ष का यह पक्षकथन था कि अभियोक्त्री वर्ष 2009 में अपने पति और तीन बालकों के साथ सी-1/3/5, संजय एन्कलेव, उत्तम नगर, दिल्ली में एक किराए के मकान में रहती थी । अभियुक्त भी एक किराए के मकान में रहता था जो अभियोक्त्री के मकान के सामने स्थित था । तारीख 21 मार्च, 2015 को अभियोक्त्री ने अभियुक्त के विरुद्ध एक शिकायत, अन्य बातों के साथ-साथ, यह अभिकथन करते हुए दर्ज कराई कि अभियुक्त उसे यह कहकर प्रेरित कर रहा था कि उसके पति की पर्याप्त आय नहीं है और उसकी (अभियुक्त) एक अच्छी नौकरी है और वह अपनी हैसियत के अनुसार उसका भरणपोषण करेगा । अभियुक्त ने उसे यह भी आश्वासन

दिया कि वह उसके साथ विवाह (निकाह) कर लेगा । उसके पश्चात्, अभियुक्त उसके साथ अयुक्त मैथुन करने के आशय से उसे विभिन्न स्थानों पर बुलाता रहता था, जिसके परिणामस्वरूप वह वर्ष 2011 में गर्भवती हो गई । उसने यह भी अभिकथन किया कि अभियुक्त ने उसे इस बात के लिए प्रेरित किया कि बालक के जन्म के पश्चात् वह उससे विवाह कर लेगा । उसने उसे यह भी आश्वासन दिया था कि वह विवाहित नहीं है और विवाह के पश्चात् वह उसे अपने मूल निवास स्थान पर ले जाएगा । वर्ष 2012 में अभियुक्त उसे फुसलाकर कापसहेड़ा बार्डर स्थित नत्थू मल बिल्डिंग में एक अन्य किराए के परिसर में ले गया और उसके साथ अयुक्त संबंध बनाना जारी रखा । कुछ समय पश्चात् अभियुक्त ने उक्त किराए के परिसर को यह मिथ्या बहाना बनाकर खाली कर दिया कि उसके माता-पिता गंभीर रूप से बीमार हैं और उसे अपने मूल निवास स्थान जाना है । उसने अभियोक्त्री को अवयस्क बालक नमन के साथ एक आश्रय गृह में आश्रय लेने के लिए कहा । उसने उसे अपने पति से तलाक लेने के लिए भी मजबूर किया । अभियोक्त्री ने शिकायत में यह भी अभिकथन किया कि अभियुक्त ने उससे यह झूठ बोला था कि उसे अपने मूल निवास स्थान जाना है, किंतु वास्तव में वह वहां नहीं गया था और इस बात का उसे तब पता चला जब वह उस काल सेंटर में गई जहां अभियुक्त काम करता था । जब उसने उसके कार्यस्थल पर शोर-शराबा किया, तो उसने उसे आश्वासन दिया कि वह शीघ्र ही उससे विवाह कर लेगा । वर्ष 2012 में वह अभियुक्त के मूल निवास स्थान पर गई और पता चला कि वह पहले से विवाहित है और बच्चे भी हैं । अभियुक्त के माता-पिता ने उसे वहां रखने के लिए इनकार कर दिया । उसके पश्चात् भी अभियुक्त उससे विवाह करने का आश्वासन देता रहा किंतु विवाह नहीं किया । इसलिए शिकायत फाइल की गई । उक्त शिकायत को अभियुक्त के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन अपराध के लिए पुलिस थाना बिंदापुर, जिला दक्षिण-पश्चिम, दिल्ली में तारीख 21 मार्च, 2015 को 2000 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 412 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया ।

5. अभियोजन पक्ष द्वारा ग्यारह साक्षियों की परीक्षा कराने के पश्चात् अपराध में आलिप्त करने वाले साक्ष्य को दंड प्रक्रिया संहिता की

धारा 313 के अधीन स्पष्टीकरण के प्रयोजन के लिए अभियुक्त के ध्यान में लाया गया, तथापि, अभियुक्त ने उसके विरुद्ध लगाए गए अभिकथनों से इनकार किया और यह भी कथन किया कि उसके अभियोक्त्री के साथ सहमतिजन्य शारीरिक संबंध थे और उसे जानकारी थी कि वह एक विवाहित व्यक्ति है और बच्चे भी हैं और वह उसके मकान पर उसकी पत्नी से भी मिली थी । उसने यह भी कथन किया कि वह अभियोक्त्री को नियमित रूप से आर्थिक सहायता प्रदान कर रहा था और जब उसने उसकी 1.5 लाख से 2 लाख रुपए की मांग को पूरा करने से इनकार कर दिया, तो उसने उसके विरुद्ध एक मिथ्या मामला दर्ज करा दिया । सेशन न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् अपीलार्थी-अभियुक्त को इसमें ऊपर उल्लिखित अनुसार दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया ।

6. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय सही परिप्रेक्ष्य में साक्ष्य का मूल्यांकन करने में असफल रहे और अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन दोषसिद्ध किया, जिसके परिणामस्वरूप न्याय की घोर हानि हुई है । भारतीय दंड संहिता की धारा 90 के साथ पठित धारा 375 का प्रयोग करते हुए उन्होंने यह दलील दी कि अभियोक्त्री ने अपने साक्ष्य में यह स्वीकार किया है कि वह वर्ष 2009-2010 से अपीलार्थी के साथ लैंगिक संबंध के लिए एक सहमतिजन्य पक्षकार थी और यह संबंध वर्ष 2011 में बालक का जन्म होने के पश्चात् भी वर्ष 2015 में शिकायत फाइल किए जाने तक जारी थे, इसलिए तनिक संदेह के बिना यह कहा जा सकता है कि अपीलार्थी-अभियुक्त ने भारतीय दंड संहिता की धारा 90 के साथ पठित धारा 375 के दूसरे खंड के अर्थांतर्गत बलात्संग नहीं किया था । उनके अनुसार, अभियोक्त्री ने शिकायत नवंबर, 2011 में अभियोक्त्री द्वारा बालक को जन्म देने और वर्ष 2012 में उसके द्वारा अभियुक्त के मूल निवास स्थान पर जाने के पश्चात् मार्च, 2015 में दर्ज कराई थी, इस तथ्य से ही अभियुक्त के विरुद्ध मिथ्या अभिकथन करने और उससे धन ऐंठने के लिए विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने का उसका आशय प्रदर्शित होता है । उन्होंने आगे यह दलील दी कि अभियोक्त्री द्वारा

प्रस्तुत कहानी के अनुसार भी अपीलार्थी ने उसके साथ संबंध से जन्म लिए बालक की जिम्मेदारी से मुंह नहीं मोड़ा था और अभियोक्त्री ने बालक के जन्म के पश्चात् लगभग चार वर्ष तक अभियुक्त के साथ संबंध बनाए रखे थे । अभियुक्त द्वारा अभियोक्त्री की भारी-भरकम रकम की मांग को पूरा करने से इनकार करने पर ही उसने शिकायत दर्ज कराई थी । विद्वान् काउंसेल ने **दिलीप सिंह** उर्फ **दिलीप कुमार** बनाम **बिहार राज्य**[1], **प्रशांत भारती** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र दिल्ली)**[2] और **डा. धुवराम मुरलीधर सोनार** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य**[3] वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों का अपनी इस दलील पर जोर देने के लिए अवलंब लिया कि यदि पक्षकारों के बीच सहमतिजन्य लैंगिक संबंध काफी लंबे समय तक चलता रहता है, जो प्रस्तुत मामले में लगभग पांच वर्ष तक चला है, तो इसे धारा 90 के अधीन 'तथ्य के भ्रम' के अधीन जारी रहना नहीं कहा जा सकता और भारतीय दंड संहिता की धारा 375 के अधीन इसे 'बलात्संग' नहीं कहा जा सकता ।

7. तथापि, प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री के. एल. जंजानी ने यह दलील दी कि सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी-अभियुक्त के विरुद्ध समवर्ती रूप से तथ्य संबंधी निष्कर्षों को अभिलिखित करने के पश्चात् उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन दोषी अभिनिर्धारित किया था, इसलिए इस न्यायालय को इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए । उनके अनुसार, अन्यथा भी, अभियोजन पक्ष ने संदेह के परे यह सिद्ध किया था कि अपीलार्थी-अभियुक्त ने अभियोक्त्री को उसके साथ विवाह करने का मिथ्या वचन देकर उसके साथ लैंगिक संबंध बनाने के लिए फुसलाया था, तथापि, अभियोक्त्री के बच्चे के जन्म के पश्चात् उसने अपना वचन पूरा नहीं किया, जिससे स्पष्ट रूप से यह साबित होता है कि अपीलार्थी द्वारा उसकी सम्मति तथ्य के भ्रम के अधीन अभिप्राप्त की गई थी ।

8. चूंकि समन की तामीली के बावजूद अभियोक्त्री का किसी वकील

---

[1] (2005) 1 एस. सी. सी. 88.

[2] (2013) 9 एस. सी. सी. 293.

[3] (2019) 18 एस. सी. सी. 191.

द्वारा प्रतिनिधित्व नहीं किया जा रहा था, इसलिए इस न्यायालय ने उसकी ओर से सुश्री इंदिरा जयसिंह, ज्येष्ठ अधिवक्ता को न्याय-मित्र के रूप में न्यायालय की सहायता करने के लिए नियुक्त किया । उन्होंने अपनी लिखित दलीलों के अतिरिक्त यह भी दलील दी कि 'बलात्संग' और 'सहमतिजन्य मैथुन' के बीच स्पष्ट विभेद है और न्यायालय को सावधानीपूर्वक इस बात की परीक्षा करनी चाहिए कि क्या अभियुक्त ने विवाह करने का मिथ्या वचन असद्भाविक हेतु से दिया था या क्या यह अभियुक्त द्वारा केवल वचन भंग था । न्याय-मित्र के अनुसार, निचले न्यायालयों ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अभियोक्त्री के साक्ष्य का ठीक ही मूल्यांकन किया था कि अभियुक्त के साथ लैंगिक संबंध के लिए अभियोक्त्री की सम्मति भारतीय दंड संहिता की धारा 90 के अधीन तथ्य के भ्रम के अधीन थी और इसलिए अभियोक्त्री का मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 375 के द्वितीय खंड के अंतर्गत आता है । सुश्री इंदिरा जयसिंह ने अपनी दलीलों के समर्थन में इस न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों का भी अवलंब लिया ।

9. पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई दलीलों का बेहतर मूल्यांकन करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 90 और धारा 375 में अंतर्विष्ट सुसंगत उपबंधों को नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "90. सम्मति, जिसके संबंध में यह ज्ञात हो कि वह भय या भ्रम के अधीन दी गई है – कोई सम्मति ऐसी सम्मति नहीं है जैसी इस संहिता की किसी धारा से आशयित है, यदि वह सम्मति किसी व्यक्ति ने क्षति, भय के अधीन या तथ्य के भ्रम के अधीन दी हो, और यदि कार्य करने वाला व्यक्ति यह जानता हो या उसके पास विश्वास करने का कारण हो कि ऐसे भय या भ्रम के परिणामस्वरूप वह सम्मति दी गई थी ; अथवा
>
> उन्मत्त व्यक्ति की सम्मति– यदि वह सम्मति ऐसे व्यक्ति ने दी हो जो चित्तविकृति या मत्तता के कारण उस बात की, जिसके लिए वह अपनी सम्मति देता है, प्रकृति और परिणाम को समझने में असमर्थ हो ; अथवा
>
> शिशु की सम्मति – जब तक कि संदर्भ से तत्प्रतिकूल प्रतीत

न हो, यदि वह सम्मति ऐसे व्यक्ति ने दी हो जो बारह वर्ष से कम आयु का है ।

375. बलात्संग – यदि कोई पुरुष –

(क) किसी स्त्री की योनि, उसके मुंह, मूत्रमार्ग या गुदा में अपना लिंग किसी भी सीमा तक प्रवेश करता है या उससे ऐसा अपने या किसी व्यक्ति से कराता है ; या

(ख) किसी स्त्री की योनि, मूत्रमार्ग या गुदा में ऐसी कोई वस्तु या शरीर का कोई भाग, जो लिंग न हो, किसी भी सीमा तक अनुप्रविष्ट करता है या उससे ऐसा अपने या अन्य किसी व्यक्ति के साथ कराता है ; या

(ग) किसी स्त्री के शरीर के किसी भाग का इस प्रकार हस्तसाधन करता है जिससे कि उस स्त्री की योनि, गुदा, मूत्रमार्ग या शरीर के किसी भाग में प्रवेशन कारित किया जा सके या उससे ऐसा अपने या किसी अन्य व्यक्ति के साथ कराता है ; या

(घ) किसी स्त्री की योनि, मूत्रमार्ग, गुदा पर अपना मुंह लगाता है या उससे ऐसा अपने या किसी अन्य व्यक्ति के साथ कराता है,

उसके बारे में यह कहा जाएगा कि उसने 'बलात्संग' किया है, जहां ऐसा निम्नलिखित सात भांति की परिस्थितियों में से किसी के अधीन किया जाता है :–

पहला – उस स्त्री की इच्छा के विरुद्ध ।

दूसरा – उस स्त्री की सम्मति के बिना ।

तीसरा – उस स्त्री की सम्मति से, जबकि उसकी सम्मति उसे या ऐसे किसी व्यक्ति को, जिससे वह हितबद्ध है, मृत्यु या उपहति के भय में डालकर अभिप्राप्त की गई है ।

चौथा – उस स्त्री की सम्मति से, जबकि वह पुरुष यह जानता है कि वह उस स्त्री का पति नहीं है और उस स्त्री ने सम्मति इसलिए दी है कि वह विश्वास करती है कि वह ऐसा

पुरुष है जिससे वह विधिपूर्वक विवाहित है या विवाहित होने का विश्वास करती है ।

पांचवां– उस स्त्री की सम्मति से, जबकि ऐसी सम्मति देने के समय वह विकृतचित्त या मत्तता के कारण या उस पुरुष द्वारा व्यक्तिगत रूप में या किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से कोई संज्ञा शून्यकारी या अस्वास्थ्यकर पदार्थ दिए जाने के कारण उस बात की, जिसके बारे में वह सम्मति देती है, प्रकृति और परिणामों को समझने में समर्थ है ।

छठा – उस स्त्री की सम्मति से या बिना सम्मति से जबकि वह 16 वर्ष से कम आयु की है ।

सातवां – जब वह स्त्री सम्मति संसूचित करने में असमर्थ है ।

स्पष्टीकरण 1 – इस धारा के प्रयोजन के लिए, 'योनि' के अंतर्गत बृहत्त भगोष्ठ भी है ।

स्पष्टीकरण 2 – सम्मति से कोई स्पष्ट स्वैच्छिक सहमति अभिप्रेत है, जब स्त्री शब्दों, संकेतों या किसी प्रकार की मौखिक या अमौखिक संसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट लैंगिक कृत्य में भाग लेने की इच्छा व्यक्त करती है ;

परंतु ऐसी स्त्री के बारे में, जो प्रवेशन के कृत्य का शारीरिक रूप से विरोध नहीं करती है, मात्र इस तथ्य के कारण यह नहीं समझा जाएगा कि उसने लैंगिक क्रियाकलाप के प्रति सम्मति प्रदान की है ।

अपवाद 1 – किसी चिकित्सीय प्रक्रिया या हस्तक्षेप को बलात्संग नहीं माना जाएगा ।

अपवाद 2 – किसी पुरुष की अपनी स्वयं की पत्नी के साथ मैथुन या लैंगिक कृत्य, यदि पत्नी पंद्रह वर्ष से कम आयु की न हो, बलात्संग नहीं है ।"

10. यहां यह उल्लेख करना सुसंगत होगा कि दांडिक विधिशास्त्र के

मूलभूत सिद्धांतों का आधार यह है कि अभियोजन पक्ष को अभियुक्त की दोषिता को विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत करके युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करना होता है, तथापि, भारतीय समाज के लोकाचार और संस्कृति पर विचार करते हुए और 'बलात्संग' जैसे सामाजिक अपराध के बढ़ते ग्राफ को ध्यान में रखते हुए न्यायालयों को भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 114क में यथा अंतर्विष्ट कानूनी उपधारणा करने की अनुज्ञा दी गई है । धारा 114क के अनुसार, बलात्संग से संबंधित कतिपय मामलों में जहां सम्मति न हो, वहां उपधारणा की जा सकती है । उक्त उपबंध के अनुसार, यदि अभियुक्त द्वारा मैथुन करना साबित हो जाता है और इस बारे में प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या मैथुन उस स्त्री की सम्मति के बिना किया गया है, जिससे बलात्संग किया जाना अभिकथित है, और यदि वह स्त्री न्यायालय के समक्ष अपने साक्ष्य में यह कथन करती है कि उसने अपनी सम्मति नहीं दी थी, तो न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि उसने सम्मति नहीं दी थी ।

11. इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि किसी व्यक्ति द्वारा दी गई सम्मति तब भारतीय दंड संहिता की किसी धारा द्वारा आशयित सम्मति नहीं होगी, यदि वह सम्मति किसी व्यक्ति ने क्षति, भय के अधीन या भारतीय दंड संहिता की धारा 90 में यथाअनुध्यात तथ्य के भ्रम के अधीन दी गई हो । इसके अतिरिक्त, धारा 375 में भी कतिपय कृत्यों का वर्णन किया गया है जो यदि अभियुक्त द्वारा उस धारा में वर्णित परिस्थितियों में किए जाते हैं, तो 'बलात्संग' के रूप में किया गया कहा जा सकता है, चाहे अभियोक्त्री की सम्मति से ही क्यों न किया गया हो । हमारी राय में, जब अभियुक्त को 'बलात्संग' के अपराध के लिए आरोपित किया जाता है, तब भारतीय दंड संहिता की धारा 90 में अंतर्विष्ट "तथ्य का भ्रम" अभिव्यक्ति का मूल्यांकन भारतीय दंड संहिता की धारा 375 में अंतर्विष्ट खंडों, विशिष्ट रूप से, इसके तीसरे, चौथे और पांचवें खंड को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए । उक्त तीन खंडों में वर्णित परिस्थितियां भारतीय दंड संहिता की धारा 90 में यथा अनुध्यात "तथ्य का भ्रम" अभिव्यक्ति से अधिक व्यापक हैं । धारा 375 में सात परिस्थितियां वर्णित हैं जिनके अधीन यह कहा जा सकता है कि 'बलात्संग' किया गया है । तीसरे खंड के

अनुसार, जब किसी स्त्री की सम्मति उसे या ऐसे किसी व्यक्ति को, जिससे वह हितबद्ध है, मृत्यु या उपहति के भय में डालकर अभिप्राप्त की गई हो, तब अभियोक्त्री की सम्मति के बावजूद बलात्संग किया गया कहा जा सकता है । चौथे खंड के अनुसार, उस स्त्री की सम्मति से, जबकि वह पुरुष यह जानता है कि वह उस स्त्री का पति नहीं है और उस स्त्री ने सम्मति इसलिए दी है कि वह विश्वास करती है कि वह ऐसा पुरुष है जिससे वह विधिपूर्वक विवाहित है या विवाहित होने का विश्वास करती है ; और पांचवें खंड के अनुसार उस स्त्री की सम्मति से, जबकि ऐसी सम्मति देने के समय अभियोक्त्री विकृतचित्त या मत्तता के कारण या उस पुरुष द्वारा व्यक्तिगत रूप में या किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से कोई संज्ञा शून्यकारी या अस्वास्थ्यकर पदार्थ दिए जाने के कारण उस बात की, जिसके बारे में वह सम्मति देती है, प्रकृति और परिणामों को समझने में असमर्थ है । इस प्रकार, अभियोक्त्री की सम्मति धारा 90 में अनुध्यात अनुसार तथ्य के भ्रम के अधीन दिए जाने के अतिरिक्त यदि उसकी सम्मति भारतीय दंड संहिता की धारा 375 में वर्णित किसी परिस्थिति के अधीन दी गई है, तो उसे 'सम्मति' नहीं माना जाएगा ।

12. इस संबंध में विधि की प्रतिपादना इस न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों से स्पष्ट होती है, तथापि, ऐसी विधि का या ऐसे विनिश्चयों का उपयोजन प्रत्येक मामले में विधिक साक्ष्य के रूप में ज्ञात साबित तथ्यों पर निर्भर करेगा । इन निर्णयों में अधिकथित विनिश्चयाधार या इस न्यायालय द्वारा घोषित विधि प्रस्तुत मामलों का विनिश्चय करने के लिए न्यायालयों को न्यायिक विचार के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत प्रदान करते हैं, किंतु विधि को लागू करते हुए न्यायालयों को अपने समक्ष साक्ष्य और उन परिस्थितियों पर भी विचार करना चाहिए जिनके अधीन अभियुक्तों द्वारा अभिकथित अपराध कारित किए जाते हैं ।

13. धारा 90 और धारा 375 के संदर्भ में 'सम्मति' शब्द के विभिन्न आयामों और दृष्टिकोणों पर विचार करते हुए इस न्यायालय के कुछ विनिश्चयों के प्रतिनिर्देश करना इस अपील का विनिश्चय करने के लिए उपयोगी होगा ।

14. **उदय** बनाम **कर्नाटक राज्य**[1] वाले मामले में अभियोक्त्री, आयु लगभग 19 वर्ष, ने अभियुक्त, जिससे वह बहुत प्यार करती थी, के साथ मैथुन करने की अपनी सम्मति दी थी और अभियोजन पक्ष द्वारा यह अभिकथन किया गया था कि अभियोक्त्री अभियुक्त से लगातार मिलती रही क्योंकि अभियुक्त ने उसे किसी बाद की तारीख को उसके साथ विवाह करने का वचन दिया था । अभियोक्त्री गर्भवती हो गई और जब अभियुक्त ने उससे विवाह नहीं किया तो शिकायत दर्ज कराई गई । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि इन परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता है कि सम्मति भारतीय दंड संहिता की धारा 90 के अधीन तथ्य के भ्रम के अधीन दी गई थी, पैरा 21 और 23 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

> "21. अत: यह प्रतीत होता है कि न्यायिक राय की सहमति इस दृष्टिकोण के पक्ष में है कि अभियोक्त्री द्वारा किसी व्यक्ति के साथ, जिससे वह बहुत प्यार करती हो और जिसने उससे बाद में विवाह करने का वचन दिया हो, मैथुन करने के लिए दी गई सम्मति को तथ्य के भ्रम के अधीन दी गई सम्मति नहीं कहा जा सकता । मिथ्या वचन संहिता के अर्थांतर्गत एक तथ्य नहीं है । हम इस दृष्टिकोण से सहमत हैं, किंतु हमें यह कहना होगा कि यह अवधारण करने के लिए कोई नियमनिष्ठ सिद्धांत नहीं है कि क्या अभियोक्त्री द्वारा मैथुन के लिए दी गई सम्मति स्वैच्छिक है या नहीं, या क्या यह तथ्य के भ्रम के अधीन दी गई है या नहीं । अंततोगत्वा विश्लेषण के तौर पर, न्यायालयों द्वारा अधिकथित कसौटियां सम्मति के प्रश्न पर विचार करते समय अधिक से अधिक न्यायिक विचार के लिए मार्गदर्शन प्रदान करती हैं किंतु न्यायालय को किसी निष्कर्ष पर पहुंचने से पूर्व प्रत्येक मामले में अपने समक्ष साक्ष्य और परिवर्ती परिस्थितियों पर अवश्य विचार करना चाहिए क्योंकि हर मामले के अपने विशिष्ट तथ्य होते हैं जिनका सरोकार इस प्रश्न से हो सकता है कि क्या सम्मति स्वैच्छिक थी या नहीं, या किसी तथ्य के भ्रम के अधीन दी गई थी

---

[1] (2003) 4 एस. सी. सी. 46.

या नहीं । न्यायालय को साक्ष्य का विवेचन अवश्य इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए कि अपराध के प्रत्येक संघटक को साबित करने का भार अभियोजन पक्ष पर है, जिसमें सम्मति का अभाव भी उनमें से एक है ।

22. * * * *

23. उस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए जो न्यायालय को ऐसे मामलों में अवश्य अपनाना चाहिए, हम अब अभिलेख पर के साक्ष्य पर विचार करने के लिए अग्रसर होंगे । प्रस्तुत मामले में, अभियोक्त्री महाविद्यालय में पढ़ने वाली एक वयस्क लड़की थी । वह अपीलार्थी से बहुत प्यार करती थी । तथापि, वह इस तथ्य से पूरी तरह अवगत थी कि चूंकि वे भिन्न जाति के हैं इसलिए उनका विवाह संभव नहीं है । किसी भी स्थिति में उनके परिवार के सदस्यों द्वारा उनके विवाह के प्रस्ताव का पुरजोर विरोध करना अवश्यंभावी है । जब अपीलार्थी ने पहली बार उसके समक्ष प्रस्ताव रखा था तब उसने इस बात को माना था । उसके पास उस कृत्य के महत्व और नैतिक गुणवत्ता को समझने के लिए पर्याप्त बुद्धि थी जिसके लिए वह सम्मति दे रही थी । इसी कारण उसने इस बात को तब तक गुप्त रखा जब तक वह रख सकती थी । इसके बावजूद, उसने अपीलार्थी के प्रस्ताव का विरोध नहीं किया और वास्तव में उसे स्वीकार कर लिया । इस प्रकार, उसने प्रतिरोध और सम्मति के बीच विकल्प का प्रयोग स्वतंत्रतापूर्वक किया था । अभियोक्त्री इस कृत्य के परिणामों से अवश्य अवगत रही होगी, विशिष्ट रूप से जब वह जानती थी कि जाति भेद के कारण कतई उनका विवाह नहीं हो सकता था । ये सभी परिस्थितियां हमें इस निष्कर्ष की ओर ले जाती हैं कि उसने अपीलार्थी के साथ मैथुन के लिए अपनी सम्मति स्वतंत्रतापूर्वक, स्वेच्छया और भानपूर्वक दी थी और उसकी सम्मति किसी तथ्य के भ्रम का परिणाम नहीं था ।"

15. **दिलीप सिंह** उर्फ **दिलीप कुमार** बनाम **बिहार राज्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के और अन्य उच्च न्यायालयों के विभिन्न पूर्ववर्ती विनिश्चयों की चर्चा करने के पश्चात् इस न्यायालय ने

उदय (उपर्युक्त) वाले मामले में की गई मताभिव्यक्तियों को और स्पष्ट किया और निम्नलिखित मत व्यक्त किया :–

> "28. उपरोक्त लेखांश के पहले दो वाक्यों को स्पष्ट करने की आवश्यकता है । जबकि हम यह दोहराते हैं कि विवाह करने का कोई वचन किसी और बात के बिना धारा 90 के अर्थांतर्गत 'तथ्य का भ्रम' नहीं समझा जाएगा, किंतु यह स्पष्ट किए जाने की आवश्यकता है कि अभियुक्त द्वारा पीड़िता की सम्मति निकलवाने के लिए जानबूझकर किया गया प्रस्ताव, जिसके पीछे न विवाह करने का आशय हो और न ही इच्छा, ऐसी सम्मति को दूषित बना देता है । यदि तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध किया जाता है कि वचन देने की शुरुआत से ही अभियुक्त का वास्तव में उसके साथ विवाह करने का आशय नहीं था और उसके द्वारा विवाह करने का दिया गया वचन मात्र एक छलावा था, तो पीड़िता द्वारा प्रकट रूप से दी गई ऐसी सम्मति अभियुक्त को धारा 375 के दूसरे खंड की व्याप्ति से उसे दोषमुक्त करने के लिए कोई मायने नहीं रखेगी । जयंती रानी पांडा [1984 क्रिमिनल ला जर्नल 1535 = (1983) 2 सी. एच. एन. 290 (कलकत्ता)] वाले मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा वास्तव में इसी बात पर जोर दिया गया था जिसे अनुमोदन के साथ उदय [(2003) 4 एस. सी. सी. 46 = 2003 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 775 = (2003) 2 स्केल 329] वाले मामले में निर्दिष्ट किया गया था । कलकत्ता उच्च न्यायालय ने अंत में अपने इस पूर्व कथन को यह कहते हुए कि 'जब तक कि न्यायालय को यह आश्वस्त न किया जा सके कि आरंभ से ही अभियुक्त का आशय वास्तव में पीड़िता से विवाह करने का नहीं था' उचित रूप से विशेषित किया । (बल दिया गया है) । अगले पैरा में, उच्च न्यायालय ने चांसरी न्यायालय के श्रेष्ठ निर्णय को निर्दिष्ट किया जिसमें यह अधिकथित किया गया है कि कोई विशिष्ट कृत्य करने के पीछे प्रत्यर्थी के आशय का मिथ्या कथन तथ्य का मिथ्या कथन माना जाएगा और इसके आधार पर छल के लिए कार्यवाही की जा सकती है । जलाडु [आई. एल. आर. (1913) 36 मद्रास 453 = 15 क्रिमिनल ला जर्नल 24] वाले

मामले में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण (ऊपर उद्धृत पैरा द्वारा) भी यही है । 'एक मिथ्या वचन संहिता के अर्थांतर्गत तथ्य नहीं है', इस एकमात्र मताभिव्यक्ति करने से यह नहीं कहा जा सकता कि इस न्यायालय ने भिन्न प्रकार से विधि अधिकथित की है । पूर्वोक्त वाक्य की अनुगामी मताभिव्यक्तियां भी उतनी ही महत्वपूर्ण हैं । यह न्यायालय इस विशेषता को जोड़ते हुए पर्याप्त सतर्क था कि यह अवधारण करने के लिए कि क्या सम्मति तथ्य के भ्रम के अधीन दी गई थी या नहीं, कोई नियमनिष्ठ सिद्धांत प्रतिपादित नहीं किया जा सकता । उदय [(2003) 4 एस. सी. सी. 46 = 2003 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 775 = (2003) 2 स्केल 329] वाले मामले को पूर्ण रूप से पढ़ने पर हम नहीं समझते कि इस न्यायालय ने यह व्यापक प्रतिपादना अधिकथित की थी कि विवाह करने का कोई वचन कदापि तथ्य के भ्रम की कोटि में नहीं आ सकता । हमारी राय में, इस विनिश्चय का यह विनिश्चयाधार नहीं है । वास्तव में, उस मामले में यह एक विनिर्दिष्ट निष्कर्ष निकाला गया था कि आरंभ से ही अभियुक्त का विवाह करने का आशय होने की बात से इनकार नहीं किया जा सकता ।"

16. **दीपक गुलाटी** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने 'बलात्संग' और 'सहमतिजन्य मैथुन' में भेद करते हुए 'सम्मति' शब्द का एक और आयाम दिया तथा निम्नलिखित मत व्यक्त किया :–

"21. सम्मति अभिव्यक्त या विवक्षित, प्रपीड़क या दिशाभ्रमित हो सकती है, रजामंदी से या छल से अभिप्राप्त की जा सकती है । सम्मति तर्कपूर्ण विचार-विमर्श, सोच-विचार करके अच्छाई और बुराई दोनों के बीच के संतुलन का कार्य है । बलात्संग और सहमतिजन्य मैथुन के बीच स्पष्ट भेद है और इस तरह के मामले में न्यायालय को अवश्य अति सावधानीपूर्वक यह परीक्षा करनी चाहिए कि क्या अभियुक्त वास्तव में पीड़िता के साथ विवाह करना

---

[1] (2013) 7 एस. सी. सी. 675.

चाहता था या उसका असद्भावी हेतुक था, और इस आशय का मिथ्या वचन केवल अपनी हवस को पूरा करने के लिए दिया था क्योंकि यह बात छल या धोखे की परिधि के अंतर्गत आती है । वचन का मात्र भंग करने और एक मिथ्या वचन को पूरा न करने के बीच विभेद है । अत: न्यायालय को अवश्य इस बात की परीक्षा करनी चाहिए कि क्या अभियुक्त द्वारा आरंभ से ही विवाह का मिथ्या वचन दिया गया था ; और क्या इसमें अंतर्वलित सम्मति लैंगिक संबंधों की प्रकृति और परिणाम को पूरी तरह से समझने के पश्चात् दी गई थी या नहीं । ऐसा मामला हो सकता है जहां अभियोक्त्री न केवल अभियुक्त के दुर्व्यपदेशन के कारण बल्कि अभियुक्त के प्रति अपने प्यार और उत्तेजना के कारण मैथुन करने के लिए सहमत हुई हो, या जहां अभियुक्त का अभियोक्त्री के साथ विवाह करने का आशय होने के बावजूद अनपेक्षित परिस्थितियों या अपने नियंत्रण से बाहर की परिस्थितियों के कारण उससे विवाह करने में असमर्थ रहा हो । ऐसे मामलों पर अलग तरह से विचार किया जाना चाहिए । किसी अभियुक्त को बलात्संग के लिए केवल तब दोषसिद्ध किया जा सकता है यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अभियुक्त का आशय असद्भावी था और उसका गुप्त हेतुक था ।

22. * * * *

23. * * * *

24. अत: यह स्पष्ट है कि यह दर्शित करने के लिए अवश्य पर्याप्त साक्ष्य होना चाहिए कि सुसंगत समय पर अर्थात् आरंभिक प्रक्रम पर ही अभियुक्त का पीड़िता से विवाह करने के अपने वचन को पूरा करने का किसी प्रकार का कोई आशय नहीं था । निस्संदेह, ऐसी परिस्थितियां हो सकती हैं जब कोई व्यक्ति सच्चा आशय होते हुए भी विभिन्न अपरिहार्य परिस्थितियों के कारण पीड़िता से विवाह करने में असमर्थ हो जाता है । भविष्य की किसी अनिश्चित तारीख से संबंधित किए गए वचन को पूरा करने में उन कारणों से असफलता जो उपलब्ध साक्ष्य से पूरी तरह स्पष्ट न हों, सदैव

तथ्य के भ्रम की कोटि में नहीं आती है । 'तथ्य के भ्रम' के पद के अर्थांतर्गत आने के लिए, तथ्य की तात्कालिक प्रासंगिकता होनी चाहिए । ऐसी किसी स्थिति में लड़की के कार्य को पूरी तरह से क्षमा करने के लिए और संपूर्ण आपराधिक दायित्व दूसरे व्यक्ति पर डालने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 90 का सहारा तब तक नहीं लिया जा सकता जब तक न्यायालय इस बात से आश्वस्त न हो जाए कि आरंभ से ही अभियुक्त का कभी भी वास्तव में पीड़िता से विवाह करने का आशय नहीं था ।"

17. पुन: **डा. धुवराम मुरलीधर सोनार** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य** (उपुर्यक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 90 और धारा 375 के दूसरे खंड का निर्वचन करते हुए निम्नलिखित मत व्यक्त किया था :–

"23. अत: बलात्संग और सहमतिजन्य मैथुन के बीच स्पष्ट विभेद है । ऐसे मामलों में न्यायालय को अति सावधानीपूर्वक अवश्य यह परीक्षा करनी चाहिए कि क्या शिकायतकर्ता वास्तव में पीड़िता से विवाह करना चाहता था या नहीं या उसका असद्भावी हेतु था और इस आशय का मिथ्या वचन केवल अपनी हवस को पूरा करने के लिए दिया था, क्योंकि यह कृत्य छल और धोखे की परिधि के अंतर्गत आता है । किसी वचन के मात्र भंग और किसी मिथ्या वचन को पूरा न करने के बीच भी विभेद है । यदि अभियुक्त ने वचन अभियोक्त्री को विलुब्ध करके उससे यौन संबंध बनाने के एकमात्र आशय से नहीं दिया है तो उसका यह कृत्य बलात्संग की कोटि में नहीं आएगा । ऐसा मामला हो सकता है जहां अभियोक्त्री ने मैथुन के लिए सहमति अभियुक्त के प्रति अपने प्यार और वासना के कारण दी हो, न कि अभियुक्त द्वारा पैदा किए गए एकमात्र भ्रम के कारण, या जहां अभियुक्त अनपेक्षित परिस्थितियों या अपने नियंत्रण से बाहर की परिस्थितियों के कारण उसके साथ विवाह करने का आशय होने के बावजूद विवाह करने में असमर्थ रहा हो । ऐसे मामलों पर अलग तरह से विचार किया जाना चाहिए । यदि शिकायतकर्ता का कोई असद्भावी आशय था

और उसका गुप्त हेतु था, तो यह बलात्संग का स्पष्ट मामला है । पक्षकारों के बीच सोच-समझ कर सहमति से बनाए गए शारीरिक संबंध से भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन अपराध का गठन नहीं होगा ।"

18. अब, प्रस्तुत मामले में, कानूनी उपबंधों और विभिन्न निर्णयों में इस न्यायालय द्वारा किए गए उनके निर्वचनों को ध्यान में रखते हुए कोई भी अपीलार्थी-अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन अपराध का दोषी अभिनिर्धारित करने के लिए प्रेरित हो सकता है, जैसा कि सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा किया गया है, तथापि, अभिलेख पर के साक्ष्य की सूक्ष्मता से संवीक्षा करने पर हमारा यह निष्कर्ष है कि निचले न्यायालयों द्वारा अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन दोषी अभिनिर्धारित करने में त्रुटि की गई है ।

19. पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई दलीलों को ध्यान में रखते हुए अभिलेख की सम्यक् रूप से परीक्षा करने के पश्चात् निम्नलिखित तथ्य उभर कर सामने आए हैं :–

(i) अभियोक्त्री एक विवाहित स्त्री थी जिसके तीन बालक थे ।

(ii) अभियुक्त अभियोक्त्री के मकान के सामने स्थित एक किराए के मकान में रहता था ।

(iii) यद्यपि आरंभिक हिचकिचाहट के पश्चात् अभियोक्त्री अभियुक्त को पसंद करने लगी और दोनों का लैंगिक संबंध शुरू हो गया ।

(iv) अभियोक्त्री ने अभियुक्त के साथ लैंगिक संबंध से तारीख 28 अक्तूबर, 2011 को एक लड़के को जन्म दिया ।

(v) अभियोक्त्री वर्ष 2012 में अभियुक्त के मूल निवास स्थान गई और पता चला कि अभियुक्त विवाहित है और उसके बच्चे भी हैं ।

(vi) अभियोक्त्री फिर भी अभियुक्त के साथ एक अलग मकान में रहती रही ।

(vii) अभियोक्त्री और उसके पति ने पारस्परिक सम्मति से वर्ष 2014 में

विवाह-विच्छेद कर लिया और उसके पश्चात् अभियोक्त्री ने स्थायी रूप से अपने तीनों बच्चों को अपने पति के पास छोड़ दिया ।

(viii) अभियोक्त्री ने तारीख 21 मार्च, 2015 को यह अभिकथन करते हुए शिकायत दर्ज कराई कि उसने लैंगिक संबंध बनाने की सम्मति इसलिए दी थी क्योंकि अभियुक्त ने उसके साथ विवाह करने का वचन दिया था और बाद में विवाह नहीं किया ।

20. प्रत्यर्थी की ओर से उठाया गया मुख्य विवाद यह है कि अभियोक्त्री ने लैंगिक संबंध के लिए अपनी सम्मति तथ्य के भ्रम के अधीन दी थी क्योंकि अभियुक्त ने उसके साथ विवाह करने का एक मिथ्या वचन दिया था और बाद में उसने विवाह नहीं किया और इसलिए ऐसी सम्मति विधि की दृष्टि से सम्मति नहीं थी और मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 375 के दूसरे खंड के अंतर्गत आता है । इस संबंध में यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि एक मिथ्या वचन देने और अभियुक्त द्वारा वचन का भंग करने के बीच फर्क है । मिथ्या वचन की दशा में, अभियुक्त का आरंभ से ही अभियोक्त्री के साथ विवाह करने का कोई आशय नहीं होता है और उसने केवल अपनी हवस को पूरा करने की दृष्टि से उससे विवाह करने का एक मिथ्या वचन देकर धोखा और छल किया होगा, जबकि वचन भंग की दशा में, इस बात की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि अभियुक्त ने अभियोक्त्री से विवाह करने का वचन पूरी गंभीरता से दिया होगा और बाद में उसके समक्ष कुछ अनपेक्षित या उसके नियंत्रण से बाहर की परिस्थितियां आ गई होंगी जिनके कारण वह अपना वचन पूरा करने में असमर्थ रहा होगा । अत: वचन भंग के हर मामले पर विवाह करने के मिथ्या वचन के मामले की तरह विचार करना और किसी व्यक्ति को धारा 376 के अधीन अपराध के लिए अभियोजित करना मूर्खता होगी । जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, हर मामला न्यायालय के समक्ष उसके साबित तथ्यों पर निर्भर करेगा ।

21. प्रस्तुत मामले में यह नहीं कहा जा सकता कि अभियोक्त्री ने, जो स्वयं एक विवाहित महिला थी और जिसके तीन बच्चे थे, अपीलार्थी के साथ लैंगिक संबंध बनाने के लिए सम्मति देते समय अपीलार्थी द्वारा

दिए गए अभिकथित मिथ्या वचन या तथ्य के भ्रम के अधीन कार्य किया था । निर्विवाद रूप से, अभियोक्त्री ने वर्ष 2015 में शिकायत देने तक कम से कम लगभग पांच वर्षों तक उसके साथ ऐसे संबंध बनाए रखे । यदि उसके द्वारा न्यायालय के समक्ष दिए गए अपने अभिसाक्ष्य में किए गए अभिकथनों के प्रत्यक्ष महत्व पर विचार किया जाए, तब भी ऐसे अभिकथनों का अर्थान्वयन अपीलार्थी द्वारा 'बलात्संग' करने के रूप में करने से इस मामले को असामान्य रूप से खींचना होगा । अभियोक्त्री एक विवाहित स्त्री थी और तीन बच्चों की माता थी, वह उस कृत्य की नैतिकता या अनैतिकता के महत्व और परिणामों को समझने के लिए पर्याप्त परिपक्व और बुद्धिमान थी । अन्यथा भी, यदि अभियुक्त के साथ ऐसे संबंध के दौरान उसके संपूर्ण आचरण को ध्यानपूर्वक देखा जाए तो यह प्रतीत होता है कि उसने अभियुक्त, जिसको वह पसंद करने लगी थी, के साथ संबंध बनाकर अपने पति और बच्चों को धोखा दिया था । वह अपने पति के साथ अपने विवाह के अस्तित्व में रहने के दौरान अभियुक्त के साथ एक बेहतर जीवन जीने के लिए चली गई थी । वर्ष 2011 में अभियुक्त से गर्भवती हो जाने और अभियुक्त के साथ संबंध से एक लड़के के जन्म तक उसे अभियुक्त द्वारा विवाह का मिथ्या वचन या धोखा देने की कोई शिकायत नहीं थी । वह वर्ष 2012 में अभियुक्त के मूल निवास स्थान पर भी गई थी और उसे पता चला था कि वह एक विवाहित व्यक्ति है जिसके बच्चे भी हैं, फिर भी वह एक दूसरे मकान में अभियुक्त के साथ बिना किसी शिकायत के रहती रही । उसने वर्ष 2014 में पारस्परिक सम्मति से अपने पति से तलाक भी ले लिया और जिसके पश्चात् उसने अपने तीनों बच्चों को अपने पति के पास ही छोड़ दिया । वर्तमान शिकायत वर्ष 2015 में फाइल की गई थी जब उनके बीच अवश्य कोई विवाद पैदा हो गया होगा । अभियुक्त ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभिलिखित अपने आगे के कथन में यह कहा था कि अभियोक्त्री ने शिकायत इसलिए दर्ज कराई थी क्योंकि उसने उसकी भारी-भरकम रकम का संदाय करने की मांग को पूरा करने से इनकार कर दिया था । इस प्रकार, इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तनिक संदेह के बिना यह कहा जा सकता है कि अभियोक्त्री ने अपीलार्थी के साथ लैंगिक संबंध बनाने

के लिए अपनी सम्मति तथ्य के भ्रम के अधीन नहीं दी थी जिससे अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 375 के अर्थांतर्गत बलात्संग कारित करने का दोषी अभिनिर्धारित किया जा सके ।

22. मामले की इस दृष्टि से, अभियुक्त उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किए जाने योग्य है । निस्संदेह, निचले न्यायालयों द्वारा प्रतिकर का संदाय करने के लिए दिए गए निदेश अपरिवर्तित रहेंगे क्योंकि अपीलार्थी ने बालक का उत्तरदायित्व लेना स्वीकार किया है और अभियोक्त्री को प्रतिकर की रकम का संदाय भी कर दिया है ।

23. इस प्रक्रम पर, यह उल्लेख किया जा सकता है कि सुनवाई के दौरान इस न्यायालय के ध्यान में लाया गया था कि अभियोक्त्री का अभिसाक्ष्य विचारण न्यायालय द्वारा अंग्रेजी भाषा में अभिलिखित किया गया था यद्यपि उसने अपना अभिसाक्ष्य देशी भाषा में दिया था । इस संबंध में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 276 और 277 के प्रतिनिर्देश किए जाने की आवश्यकता है, जो निम्नलिखित हैं :–

> "276. सेशन न्यायालय के समक्ष विचारण में अभिलेख – (1) सेशन न्यायालय के समक्ष सभी विचारणों में प्रत्येक साक्षी का साक्ष्य, जैसे-जैसे उसकी परीक्षा होती जाती है, वैसे-वैसे या तो स्वयं पीठासीन न्यायाधीश द्वारा लिखा जाएगा या खुले न्यायालय में उसके द्वारा बोलकर लिखवाया जाएगा या उसके द्वारा इस निमित्त नियुक्त न्यायालय के किसी अधिकारी द्वारा उसके निदेशन और अधीक्षण में लिखा जाएगा ।
>
> (2) ऐसा साक्ष्य मामूली तौर पर वृत्तांत के रूप में लिखा जाएगा किंतु पीठासीन न्यायाधीश स्वविवेकानुसार ऐसे साक्ष्य के किसी भाग को प्रश्नोत्तर के रूप में लिख सकता है या लिखवा सकता है ।
>
> (3) ऐसे लिखे गए साक्ष्य पर पीठासीन न्यायाधीश हस्ताक्षर करेगा और वह अभिलेख का भाग होगा ।
>
> 277. साक्ष्य के अभिलेख की भाषा – प्रत्येक मामले में जहां साक्ष्य धारा 275 या धारा 276 के अधीन लिखा जाता है वहां –

(क) यदि साक्षी न्यायालय की भाषा में साक्ष्य देता है तो उसे उसी भाषा में लिखा जाएगा ;

(ख) यदि वह किसी अन्य भाषा में साक्ष्य देता है तो उसे, यदि साक्ष्य हो तो, उसी भाषा में लिखा जा सकेगा और यदि ऐसा करना साध्य न हो तो जैसे-जैसे साक्षी की परीक्षा होती जाती है, वैसे-वैसे साक्ष्य का न्यायालय की भाषा में सही अनुवाद तैयार किया जाएगा, उस पर मजिस्ट्रेट या पीठासीन न्यायाधीश द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे और वह अभिलेख का भाग होगा ;

(ग) उस दशा में जिसमें साक्ष्य खंड (ख) के अधीन न्यायालय की भाषा से भिन्न किसी भाषा में लिखा जाए, न्यायालय की भाषा में उसका सही अनुवाद यथासाध्य शीघ्र तैयार किया जाएगा, उस पर मजिस्ट्रेट या पीठासीन न्यायाधीश हस्ताक्षर करेगा और वह अभिलेख का भाग होगा :

परंतु जब खंड (ख) के अधीन साक्ष्य अंग्रेजी में लिखा जाता है और न्यायालय की भाषा में उसके अनुवाद की किसी पक्षकार द्वारा अपेक्षा की जाती है तो न्यायालय ऐसे अनुवाद से अभिमुक्ति दे सकता है ।"

24. हमें इस बात से अवगत कराया गया है कि कुछ विचारण न्यायालयों में साक्षियों के अभिसाक्ष्य उनकी भाषा में दर्ज नहीं किए जा रहे हैं और केवल अंग्रेजी भाषा में अभिलिखित किए जा रहे हैं, जैसा पीठासीन अधिकारी द्वारा अनुवाद किया जाए । हमारी राय में, साक्षी का साक्ष्य दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 277 के अधीन अपेक्षा अनुसार न्यायालय की भाषा में लिखा जाना चाहिए । यदि साक्षी न्यायालय की भाषा में साक्ष्य देता है तो उसे केवल उसी भाषा में लिखा जाना चाहिए । यदि साक्षी किसी अन्य भाषा में साक्ष्य देता है, तो उसे, यदि साध्य हो तो, उसी भाषा में लिखा जाए और यदि ऐसा करना साध्य न हो तो साक्ष्य का न्यायालय की भाषा में सही अनुवाद तैयार किया जाए । जब साक्षी ने साक्ष्य अंग्रेजी में दिया हो और उसे उसी भाषा में लिखा गया हो और न्यायालय की भाषा में उसके अनुवाद की किसी पक्षकार द्वारा

अपेक्षा न की गई हो, तो न्यायालय ऐसे अनुवाद से अभिमुक्ति दे सकता है । यदि साक्षी न्यायालय की भाषा से भिन्न भाषा में साक्ष्य देता है तो उसका न्यायालय की भाषा में सही अनुवाद यथासाध्य शीघ्र तैयार किया जाना चाहिए ।

25. साक्षी का साक्ष्य यथासाध्य न्यायालय की भाषा में अभिलिखित किया जाना चाहिए और फिर अभिलेख का भाग बनाने के लिए उसका अनुवाद न्यायालय की भाषा में कराया जाए । तथापि, साक्षी के साक्ष्य को केवल अंग्रेजी भाषा में अनुवाद रूप में अभिलिखित करना, यद्यपि साक्षी ने न्यायालय की भाषा, या अपनी देशी भाषा में साक्ष्य दिया है, अनुज्ञेय नहीं है । इसलिए साक्ष्य का सार और अर्थ तथा न्यायालय में किसी साक्षी के हाव-भाव का सर्वोत्तम रीति में मूल्यांकन केवल तब किया जा सकता है जब साक्ष्य साक्षी की भाषा में अभिलिखित किया गया हो । अन्यथा भी, जब यह प्रश्न उद्भूत होता है कि साक्षी ने अपने साक्ष्य में हू-ब-हू क्या कहा था, तब साक्षी के मूल अभिसाक्ष्य पर विचार किया जाना चाहिए न कि पीठासीन न्यायाधीश द्वारा तैयार किए गए अंग्रेजी में अनुवादित ज्ञापन पर । अत: यह निदेश दिया जाता है कि सभी न्यायालय साक्षियों के साक्ष्य अभिलिखित करते समय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 277 के उपबंधों का सम्यक् रूप से अनुपालन करेंगे ।

26. ऊपर उल्लिखित कारणों से, उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेशों को, अभियोक्त्री को दिए जाने वाले प्रतिकर की रकम के लिए निदेश के सिवाय, अपास्त किया जाता है । अपीलार्थी-अभियुक्त को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है और तुरंत रिहा किए जाने का निदेश दिया जाता है । तद्नुसार, यह अपील मंजूर की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

संसद् के अधिनियम

सूचना प्रदाता संरक्षण अधिनियम, 2011

(2014 का अधिनियम संख्यांक 17)

[9 मई, 2014]

किसी लोक सेवक के विरुद्ध भ्रष्टाचार के किसी अभिकथन पर या जानबूझकर शक्ति के दुरुपयोग अथवा जानबूझकर विवेकाधिकार के दुरुपयोग के प्रकटन से संबंधित शिकायतों को स्वीकार करने के लिए कोई तंत्र स्थापित करने तथा ऐसे प्रकटन की जांच करने या जांच कराने तथा ऐसी शिकायत करने वाले व्यक्ति के उत्पीड़न से पर्याप्त सुरक्षा का तथा उनसे संबंधित या आनुषंगिक विषयों के लिए उपबंध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के बासठवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम सूचना प्रदाता संरक्षण अधिनियम, 2011 है ।

(2) इसका विस्तार, जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे और इस अधिनियम के भिन्न-भिन्न उपबंधों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी और ऐसे किसी उपबंध में इस अधिनियम के प्रारंभ के प्रतिनिर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह उस उपबंध के प्रवृत्त होने के प्रतिनिर्देश है ।

2. इस अधिनियम के उपबंधों का विशेष संरक्षा ग्रुप को लागू न

होना – इस अधिनियम के उपबंध संघ के सशस्त्र बलों को, जो विशेष संरक्षा ग्रुप अधिनियम, 1988 (1988 का 34) के अधीन गठित विशेष संरक्षा ग्रुप है, लागू नहीं होंगे ।

3. परिभाषाएं – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "केन्द्रीय सतर्कता आयोग" से केन्द्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम, 2003 (2003 का 45) की धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन गठित आयोग अभिप्रेत है;

(ख) "सक्षम प्राधिकारी" से निम्नलिखित अभिप्रेत है, –

(i) संघ के मंत्रि-परिषद् के किसी सदस्य के संबंध में, प्रधानमंत्री;

(ii) मंत्री से भिन्न संसद् के किसी सदस्य के संबंध में, यथास्थिति, यदि ऐसा सदस्य राज्य सभा का सदस्य है तो राज्य सभा का सभापति या यदि ऐसा सदस्य लोक सभा का सदस्य है तो लोक सभा का अध्यक्ष;

(iii) किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र में, मंत्रि-परिषद् के किसी सदस्य के संबंध में, यथास्थिति, उस राज्य या संघ राज्यक्षेत्र का मुख्यमंत्री;

(iv) किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के किसी मंत्री से भिन्न, उस विधान परिषद् या विधान सभा के किसी सदस्य के संबंध में, यथास्थिति, यदि ऐसा सदस्य विधान परिषद् का सदस्य है तो विधान परिषद् का सभापति या यदि ऐसा सदस्य विधान सभा का सदस्य है तो विधान सभा का अध्यक्ष;

(v) निम्नलिखित के संबंध में उच्च न्यायालय, –

(अ) कोई न्यायाधीश (उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के सिवाय) जिसके अंतर्गत स्वयं या व्यक्तियों के किसी निकाय के किसी

सदस्य के रूप में किन्हीं न्यायनिर्णायक कृत्यों का निर्वहन करने के लिए विधि द्वारा सशक्त किया गया कोई व्यक्ति भी है; या

(आ) न्याय प्रशासन से संबंधित किसी कर्तव्य का पालन करने के लिए किसी न्यायालय द्वारा प्राधिकृत कोई व्यक्ति, जिसके अंतर्गत ऐसे न्यायालय द्वारा नियुक्त किया गया कोई समापक, रिसीवर या कमिश्नर भी है; या

(इ) कोई मध्यस्थ या अन्य व्यक्ति, जिसे कोई वाद या विषय किसी न्यायालय द्वारा या किसी सक्षम लोक प्राधिकारी द्वारा विनिश्चय या रिपोर्ट के लिए निर्दिष्ट किया गया है;

(vi) निम्नलिखित के संबंध में, केंद्रीय सतर्कता आयोग या कोई अन्य प्राधिकरण, जिसे केंद्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के अधीन इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे –

(अ) केंद्रीय सरकार की सेवा या वेतन में या किसी लोक कर्तव्य का पालन करने के लिए फीस या कमीशन के रूप में केंद्रीय सरकार द्वारा पारिश्रमिक पर या किसी केंद्रीय अधिनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित किसी सोसाइटी या स्थानीय प्राधिकारी या किसी निगम या केंद्रीय सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन या सहायता प्राप्त किसी प्राधिकरण या किसी निकाय या कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 617 में यथापरिभाषित केंद्रीय सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन किसी सरकारी कंपनी की सेवा या वेतन में कोई व्यक्ति (मंत्रियों, संसद् सदस्यों और संविधान के अनुच्छेद 33 के खंड (क) या खंड (ख) या खंड (ग) या खंड (घ) में निर्दिष्ट सदस्यों या व्यक्तियों के सिवाय); या

(आ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो ऐसा कोई पद धारण करता है, जिसके आधार पर उसे निर्वाचक नामावली तैयार, प्रकाशित, बनाए रखने या पुनरीक्षित करने या संसद् या राज्य विधान-मंडल के निर्वाचनों के संबंध में किसी निर्वाचन या किसी निर्वाचन के भाग का संचालन करने के लिए सशक्त किया गया है; या

(इ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो ऐसा कोई पद धारण करता है, जिसके आधार पर उसे किसी लोक कर्तव्य का पालन करने के लिए प्राधिकृत किया गया है या उससे अपेक्षा की गई है (मंत्रियों और संसद् सदस्यों के सिवाय); या

(ई) ऐसा कोई व्यक्ति, जो केंद्रीय सरकार से या किसी केंद्रीय अधिनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित किसी निगम से कोई वित्तीय सहायता प्राप्त कर रही या प्राप्त करने वाली कृषि, उद्योग, व्यवसाय या बैंककारी में लगी किसी रजिस्ट्रीकृत सहकारी सोसाइटी का या कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 617 में यथापरिभाषित केंद्रीय सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन या उससे सहायता प्राप्त किसी प्राधिकरण या निकाय या किसी सरकारी कंपनी का अध्यक्ष, सचिव या अन्य पदधारी है; या

(उ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो किसी केंद्रीय सेवा आयोग या बोर्ड का, चाहे जो भी नाम हो, अध्यक्ष, सदस्य या कर्मचारी है या ऐसे आयोग या बोर्ड द्वारा उस आयोग या बोर्ड की ओर से किसी परीक्षा का संचालन या कोई चयन करने के लिए नियुक्त की गई किसी चयन समिति का सदस्य है; या

(ऊ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो किसी केंद्रीय अधिनियम द्वारा स्थापित या केंद्रीय सरकार द्वारा

स्थापित या उसके नियंत्रणाधीन या वित्तपोषित किसी विश्वविद्यालय का कुलपति या उसके शासी निकाय का सदस्य, आचार्य, सह-आचार्य, सहायक आचार्य, रीडर, प्राध्यापक या कोई अन्य अध्यापक या कर्मचारी, चाहे जो भी पदनाम हो, है या ऐसा कोई व्यक्ति, जिसकी सेवाओं का ऐसे विश्वविद्यालय या किसी ऐसे लोक प्राधिकरण द्वारा परीक्षाएं आयोजित या संचालित करने के संबंध में उपभोग किया गया है; या

(ए) ऐसा कोई व्यक्ति, जो ऐसी किसी शैक्षिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या अन्य संस्था जिसे किसी भी रीति में स्थापित किया गया है, का कोई पदधारी या कर्मचारी है जो केंद्रीय सरकार या किसी स्थानीय या अन्य लोक प्राधिकरण से कोई वित्तीय सहायता प्राप्त कर रही है या जिसने प्राप्त की है;

(vii) निम्नलिखित के संबंध में, राज्य सतर्कता आयोग, यदि कोई है, या राज्य सरकार का कोई अधिकारी या कोई अन्य प्राधिकारी, जिसे राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के अधीन इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे -

(अ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो केंद्रीय सरकार की सेवा या वेतन में या किसी लोक कर्तव्य का पालन करने के लिए फीस या कमीशन के रूप में केंद्रीय सरकार द्वारा पारिश्रमिक पर या किसी प्रांतीय या राज्य अधिनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित किसी सोसाइटी या स्थानीय प्राधिकारी या किसी निगम या राज्य सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन या उससे सहायता प्राप्त किसी प्राधिकरण या किसी निकाय या कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 617 में यथापरिभाषित राज्य सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन किसी सरकारी कंपनी की सेवा या वेतन में कोई व्यक्ति (मंत्रियों, राज्य की विधान परिषद् या विधान

सभा के सदस्यों के सिवाय); या

(आ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो ऐसा कोई पद धारण करता है, जिसके आधार पर उसे निर्वाचक नामावली तैयार, प्रकाशित, बनाए रखने या पुनरीक्षित करने या राज्य में नगरपालिका या पंचायतों या अन्य स्थानीय निकाय के संबंध में किसी निर्वाचन या किसी निर्वाचन के भाग का संचालन करने के लिए सशक्त किया गया है; या

(इ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो ऐसा कोई पद धारण करता है, जिसके आधार पर उसे राज्य सरकार के कार्यकलापों के संबंध में किसी लोक कर्तव्य का पालन करने के लिए प्राधिकृत किया गया है या उससे अपेक्षा की गई है (मंत्रियों और राज्य की विधान परिषद् या विधान सभा के सदस्यों के सिवाय); या

(ई) ऐसा कोई व्यक्ति, जो राज्य सरकार से या किसी प्रांतीय या राज्य अधिनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित किसी निगम से कोई वित्तीय सहायता प्राप्त कर रही या प्राप्त करने वाली कृषि, उद्योग, व्यवसाय या बैंककारी में लगी किसी रजिस्ट्रीकृत सहकारी सोसाइटी का या कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 617 में यथापरिभाषित राज्य सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन या उससे सहायता प्राप्त किसी प्राधिकरण या निकाय या किसी सरकारी कंपनी का अध्यक्ष, सचिव या अन्य पदधारी है; या

(उ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो किसी राज्य सेवा आयोग या बोर्ड का, चाहे जो भी नाम हो, अध्यक्ष, सदस्य या कर्मचारी है या ऐसे आयोग या बोर्ड द्वारा उस आयोग या बोर्ड की ओर से किसी परीक्षा का संचालन या कोई चयन करने के लिए नियुक्त की गई

किसी चयन समिति का सदस्य है; या

(ऊ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो किसी प्रांतीय या राज्य अधिनियम द्वारा स्थापित या राज्य सरकार द्वारा स्थापित या उसके नियंत्रणाधीन या वित्तपोषित किसी विश्वविद्यालय का कुलपति या उसके शासी निकाय का सदस्य, आचार्य, सह-आचार्य, सहायक आचार्य, रीडर, प्राध्यापक या कोई अन्य अध्यापक या कर्मचारी, चाहे जो भी पदनाम हो, है या ऐसा कोई व्यक्ति, जिसकी सेवाओं का ऐसे विश्वविद्यालय या किसी ऐसे लोक प्राधिकरण द्वारा परीक्षाएं आयोजित या संचालित करने के संबंध में उपभोग किया गया है; या

(ए) ऐसा कोई व्यक्ति, जो ऐसी किसी शैक्षिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या अन्य संस्था जिसे किसी भी रीति में स्थापित किया गया है, का कोई पदधारी या कर्मचारी है, जो राज्य सरकार या किसी स्थानीय या अन्य लोक प्राधिकरण से कोई वित्तीय सहायता प्राप्त कर रही है या जिसने प्राप्त की है;

(viii) संविधान के अनुच्छेद 33 के खंड (क) या खंड (ख) या खंड (ग) या खंड (घ) में निर्दिष्ट सदस्यों या व्यक्तियों के संबंध में, ऐसा कोई प्राधिकारी या ऐसे प्राधिकारी, जिसकी उनके संबंध में अधिकारिता है, जिसे, यथास्थिति, केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के अधीन इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे;

(ग) "शिकायतकर्ता" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो इस अधिनियम के अधीन प्रकटन के संबंध में कोई शिकायत करता है;

(घ) "प्रकटन" से, –

(i) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 45) के अधीन किसी अपराध को करने के प्रयत्न या अपराध किए जाने के संबंध में कोई शिकायत अभिप्रेत है;

(ii) जानबूझकर शक्ति के दुरुपयोग या जानबूझकर विवेकाधिकार के दुरुपयोग के संबंध में, जिसके कारण सरकार को प्रमाण्य सदोष होती है या लोक सेवक या किसी तृतीय पक्षकार को प्रमाण्य सदोष अभिलाभ उद्भूत होता है, कोई शिकायत अभिप्रेत है;

(iii) किसी लोक सेवक द्वारा किसी दांडिक अपराध को करने के प्रयत्न या अपराध किए जाने के संबंध में कोई शिकायत अभिप्रेत है,

जो लोक सेवक के विरुद्ध लिखित में या इलेक्ट्रानिक मेल द्वारा या इलेक्ट्रानिक मेल संदेश द्वारा की जाती है और जिसमें धारा 4 की उपधारा (2) में निर्दिष्ट लोक हित प्रकटन सम्मिलित है;

(ङ) "इलेक्ट्रानिक मेल" या "इलेक्ट्रानिक मेल संदेश" से किसी कम्प्यूटर, कम्प्यूटर प्रणाली, कम्प्यूटर संसाधन या संचार यंत्र पर, कोई संदेश या सृजित या पारेषित या प्राप्त सूचना अभिप्रेत है, जिसमें पाठ, आकृति, श्रव्य, दृश्य तथा किसी अन्य इलेक्ट्रानिक अभिलेख के ऐसे संलग्नक सम्मिलित हैं, जो संदेश के साथ प्रेषित किए जाएं;

(च) "सरकारी कंपनी" से कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 617 में निर्दिष्ट कोई कंपनी अभिप्रेत है;

(छ) "अधिसूचना" से, यथास्थिति, भारत के राजपत्र या किसी राज्य के राजपत्र में प्रकाशित कोई अधिसूचना अभिप्रेत है;

(ज) "लोक प्राधिकारी" से सक्षम प्राधिकारी की अधिकारिता के अंतर्गत आने वाला कोई प्राधिकारी, निकाय या संस्था अभिप्रेत है;

(झ) "लोक सेवक" का वही अर्थ होगा, जो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) की धारा 2 के खंड (ग) में है, किंतु इसके अंतर्गत उच्चतम न्यायालय का कोई न्यायाधीश या किसी उच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश नहीं होगा;

(ञ) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन, यथास्थिति, केंद्रीय

सरकार या राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है;

(ट) "विनियम" से इस अधिनियम के अधीन सक्षम प्राधिकारी द्वारा बनाए गए विनियम अभिप्रेत हैं ।

अध्याय 2

लोक हित प्रकटन

4. लोक हित प्रकटन की आवश्यकता – (1) शासकीय गुप्त बात अधिनियम, 1923 (1923 का 19) के उपबंधों में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, कोई लोक सेवक या किसी गैर-सरकारी संगठन सहित कोई अन्य व्यक्ति सक्षम प्राधिकारी के समक्ष कोई लोक हित प्रकटन कर सकेगा ।

(2) इस अधिनियम के अधीन किए गए किसी प्रकटन को इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए लोक हित प्रकटन माना जाएगा और उसे सक्षम प्राधिकारी के समक्ष किया जाएगा तथा प्रकटन करने वाली शिकायत को सक्षम प्राधिकारी की ओर से ऐसे प्राधिकारी द्वारा, जो सक्षम प्राधिकारी द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाए, प्राप्त किया जाएगा ।

(3) प्रत्येक प्रकटन सद्भावपूर्वक किया जाएगा और प्रकटन करने वाला व्यक्ति एक व्यक्तिगत घोषणा करते हुए यह कथन करेगा कि युक्तियुक्त रूप से उसका यह विश्वास है कि उसके द्वारा प्रकट की गई जानकारी और उसमें अन्तर्विष्ट अभिकथन सारभूत रूप से सत्य है ।

(4) प्रत्येक प्रकटन ऐसी प्रक्रिया के अनुसार जिसे विहित किया जाए, लिखित में या इलेक्ट्रानिक मेल या इलेक्ट्रानिक मेल संदेश द्वारा किया जाएगा और उसमें सभी विशिष्टियां होंगी तथा उसके साथ समर्थनकारी दस्तावेज या अन्य सामग्री, यदि कोई हो, संलग्न होगी ।

(5) सक्षम प्राधिकारी, यदि उचित समझता है तो प्रकटन करने वाले व्यक्ति से और अधिक जानकारी या विशिष्टियां मंगा सकेगा ।

(6) यदि प्रकटन में लोक हित प्रकटन करने वाले शिकायतकर्ता

लोक सेवक की पहचान उपदर्शित नहीं की गई है या शिकायतकर्ता लोक सेवक की पहचान गलत या मिथ्या पाई जाती है तब सक्षम प्राधिकारी द्वारा लोक हित अथवा प्रकटन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी ।

अध्याय 3

लोक हित प्रकटन के संबंध में जांच

5. लोक हित प्रकटन के प्राप्त होने पर सक्षम प्राधिकारी की शक्तियां और कृत्य – (1) धारा 4 के अधीन किसी लोक हित प्रकटन के प्राप्त होने पर सक्षम प्राधिकारी इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, –

(क) शिकायतकर्ता या लोक सेवक से यह अभिनिश्चित करेगा कि क्या वह, वही व्यक्ति या लोक सेवक है या नहीं जिसने प्रकटन किया है;

(ख) शिकायतकर्ता की पहचान को तब तक छिपाएगा जब तक कि स्वयं शिकायतकर्ता ने अपनी पहचान किसी अन्य कार्यालय या प्राधिकारी को लोक हित प्रकटन करते समय या अपनी शिकायत में या अन्यथा प्रकटन न की हो ।

(2) सक्षम प्राधिकारी शिकायत प्राप्त करने और शिकायतकर्ता की पहचान छिपाने के पश्चात् सर्वप्रथम यह अभिनिश्चित करने के लिए कि प्रकटन का अन्वेषण करने के लिए आगे कार्यवाही करने का कोई आधार है या नहीं, सावधानीपूर्वक जांच, ऐसी रीति में और ऐसे समय के भीतर करेगा जो विहित किया जाए ।

(3) यदि सक्षम प्राधिकारी की, या तो सावधानीपूर्वक जांच के परिणामस्वरूप या किसी जांच के बिना प्रकटन के आधार पर ही यह राय है कि प्रकटन का अन्वेषण किए जाने की आवश्यकता है तो वह संगठन या प्राधिकरण के विभागाध्यक्ष संबंधित बोर्ड या निगम या संबंधित कार्यालय से ऐसे समय के भीतर, जो उसके द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाए, टिप्पणी या स्पष्टीकरण या रिपोर्ट मांगेगा ।

(4) उपधारा (3) में निर्दिष्ट की गई टिप्पणियों या स्पष्टीकरणों या

रिपोर्ट को मांगते समय सक्षम प्राधिकारी, शिकायतकर्ता या लोक सेवक की पहचान प्रकट नहीं करेगा और संबंधित संगठन या संबंधित कार्यालय के विभागाध्यक्ष को यह निदेश करेगा कि वह शिकायतकर्ता या लोक सेवक की पहचान प्रकट न करे :

परंतु यदि सक्षम प्राधिकारी की यह राय है कि लोक प्रकटन के आधार पर उपधारा (3) के अधीन उनसे टिप्पणी या स्पष्टीकरण या रिपोर्ट मांगने के प्रयोजन के लिए संगठन या प्राधिकरण, बोर्ड या संबंधित निगम या संबंधित कार्यालय के विभागाध्यक्ष को शिकायतकर्ता या लोक सेवक की पहचान प्रकट करना आवश्यक हो गया है तो सक्षम प्राधिकारी, शिकायतकर्ता या लोक सेवक की पूर्व लिखित सहमति से संगठन या प्राधिकरण या बोर्ड या संबंधित निगम या संबंधित कार्यालय के ऐसे विभागाध्यक्ष को शिकायतकर्ता या लोक सेवक की पहचान उक्त प्रयोजन के लिए प्रकट कर सकेगा :

परंतु यह और कि यदि शिकायतकर्ता या लोक सेवक, विभागाध्यक्ष को अपना नाम प्रकट किए जाने से सहमत नहीं होता है तो उस मामले में, यथास्थिति, शिकायतकर्ता या लोक सेवक अपनी शिकायत के समर्थन में सभी दस्तावेजी साक्ष्य सक्षम प्राधिकारी को उपलब्ध कराएगा ।

(5) संगठन या संबंधित कार्यालय का विभागाध्यक्ष ऐसे शिकायतकर्ता या लोक सेवक की, जिसने प्रकटन किया है, पहचान प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रकट नहीं करेगा ।

(6) यदि जांच करने के पश्चात् सक्षम प्राधिकारी की यह राय है कि –

(क) प्रकटन में अंतर्विष्ट तथ्य और अभिकथन तुच्छ या तंग करने वाले हैं; या

(ख) जांच के संबंध में कार्यवाही करने के पर्याप्त आधार नहीं हैं,

तो वह मामले को बंद कर देगा ।

(7) उपधारा (3) में निर्दिष्ट टिप्पणियों या स्पष्टीकरणों या रिपोर्ट

के प्राप्त होने के पश्चात् यदि सक्षम प्राधिकारी की यह राय है कि ऐसी टिप्पणियों या स्पष्टीकरणों या रिपोर्ट से यह प्रकट होता है कि या तो जानबूझकर शक्ति का दुरुपयोग या जानबूझकर विवेकाधिकार का दुरुपयोग किया गया है या भ्रष्टाचार के अभिकथन सिद्ध हो गए हैं तो वह लोक प्राधिकारी को निम्नलिखित एक या अधिक उपाय करने की सिफारिश करेगा, अर्थात् :–

(i) संबंधित लोक सेवक के विरुद्ध कार्यवाहियां आरंभ करना;

(ii) यथास्थिति, भ्रष्ट आचरण या पद के दुरुपयोग या विवेकाधिकार के दुरुपयोग के परिणामस्वरूप सरकार को हुई हानि के प्रतितोष के लिए समुचित प्रशासनिक कदम उठाना;

(iii) मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, यदि आवश्यक हो, तो तत्समय प्रवृत्त सुसंगत विधियों के अधीन दांडिक कार्यवाहियों को आरंभ करने के लिए समुचित प्राधिकारी या अभिकरण को सिफारिश करेगा;

(iv) दोष निवारक उपाय करने की सिफारिश करेगा;

(v) खंड (i) से (iv) के अधीन न आने वाला ऐसा कोई अन्य उपाय जो इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए आवश्यक हो ।

(8) वह लोक प्राधिकारी, जिसे उपधारा (7) के अधीन कोई सिफारिश की जाती है, उस सिफारिश की प्राप्ति के तीन मास के भीतर या तीन मास से अनधिक की ऐसी विस्तारित अवधि के भीतर, जो सक्षम प्राधिकारी, लोक प्राधिकारी द्वारा किए गए अनुरोध पर अनुज्ञात करे, उस सिफारिश पर कोई विनिश्चय करेगा :

परंतु यदि लोक प्राधिकारी सक्षम प्राधिकारी की सिफारिश से सहमत नहीं होता है तो वह ऐसी असहमति के कारणों को अभिलिखित करेगा ।

(9) सक्षम प्राधिकारी, जांच करने के पश्चात्, शिकायतकर्ता या लोक सेवक को शिकायत पर की गई कार्रवाई और उसके अंतिम निष्कर्ष के बारे में सूचित करेगा :

परंतु ऐसे किसी मामले में, जहां सक्षम प्राधिकारी जांच करने के

पश्चात् मामले को बंद करने का विनिश्चय करता है, वहां वह मामले को बंद करने का आदेश पारित करने से पूर्व, यदि शिकायतकर्ता ऐसी वांछा करे तो शिकायतकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान करेगा ।

6. सक्षम प्राधिकारी द्वारा जांच न किए जाने वाले विषय – (1) यदि किसी प्रकटन में विनिर्दिष्ट विषय या उठाए गए किसी विवाद्यक का अवधारण प्रकटन में विनिर्दिष्ट विषयों या उठाए गए विवाद्यक पर विचार करने के पश्चात् किसी ऐसे न्यायालय या अधिकरण द्वारा किया गया है, जो कि ऐसे विवाद्यक का अवधारण करने के लिए प्राधिकृत है, तब सक्षम प्राधिकारी प्रकटन के संबंध में उस सीमा तक विचार नहीं करेगा जिस सीमा तक ऐसे प्रकटन में ऐसे विवाद्यक पर पुनः विचार करने की मांग की गई हो ।

(2) सक्षम प्राधिकारी ऐसे किसी प्रकटन को ग्रहण नहीं करेगा या उसके संबंध में जांच नहीं करेगा –

(क) जिसकी बाबत लोक सेवक (जांच) अधिनियम, 1850 (1850 का 37) के अधीन औपचारिक और लोक जांच किए जाने का आदेश किया गया है; या

(ख) ऐसे किसी विषय की बाबत जिसे जांच आयोग अधिनियम, 1952 (1952 का 60) के अधीन जांच के लिए निर्दिष्ट किया गया है ।

(3) सक्षम प्राधिकारी ऐसे किसी प्रकटन का अन्वेषण नहीं करेगा जिसमें ऐसा अभिकथन अंतर्ग्रस्त हो जिसके संबंध में शिकायत करने की तारीख से सात वर्ष के पश्चात् कार्रवाई किए जाने का अभिकथन किया गया है ।

(4) इस अधिनियम में किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि सक्षम प्राधिकारी को इस अधिनियम के अधीन किसी कर्मचारी द्वारा अपने कर्तव्य का निर्वहन करते हुए यदि कोई सद्भाविक कार्रवाई या सद्भाविक विवेकाधिकार (जिसके अंतर्गत प्रशासनिक और कानूनी विवेकाधिकार भी है) का प्रयोग किया है उसके विरुद्ध जांच करने के लिए सशक्त किया गया है ।

अध्याय 4

सक्षम प्राधिकारी की शक्तियां

7. सक्षम प्राधिकारी की शक्तियां – (1) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन सक्षम प्राधिकारी को प्रदत्त की गई शक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, सक्षम प्राधिकारी, जांच के प्रयोजन के लिए, किसी लोक सेवक या किसी अन्य व्यक्ति को जो कि उनकी राय में जानकारी देने या जांच के लिए सुसंगत दस्तावेजों को प्रस्तुत करने या जांच में सहायता के लिए समर्थ है तो वह उसे उक्त प्रयोजन के लिए ऐसी जानकारी देने या ऐसे दस्तावेज, प्रस्तुत करने की अपेक्षा कर सकेगा, जो आवश्यक हो ।

(2) निम्नलिखित विषयों की बाबत किसी ऐसी जांच (जिसके अन्तर्गत आरम्भिक जांच भी है) के प्रयोजन के लिए सक्षम प्राधिकारी को वे सभी शक्तियां होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन किसी वाद का विचारण करते समय किसी सिविल न्यायालय की होती हैं, अर्थात् :–

(क) किसी साक्षी को समन करना और हाजिर कराना तथा शपथ पर उसकी परीक्षा करना;

(ख) किसी दस्तावेज का प्रकटीकरण और पेश किए जाने की अपेक्षा करना;

(ग) शपथपत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना;

(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रति की मांग करना;

(ङ) साक्षियों या दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कोई कमीशन निकालना;

(च) ऐसे अन्य विषय, जो विहित किए जाएं ।

(3) सक्षम प्राधिकारी, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 195 और अध्याय 26 के प्रयोजन के लिए सिविल न्यायालय

समझा जाएगा और सक्षम प्राधिकारी के समक्ष प्रत्येक कार्यवाही धारा 193 और धारा 228 के अर्थान्तर्गत तथा भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 196 के प्रयोजनों के लिए न्यायिक कार्यवाही समझी जाएगी ।

(4) धारा 8 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, सरकारी या किसी भी लोक सेवक द्वारा अभिप्राप्त या उसको दी गई जानकारी की गोपनीयता बनाए रखने या अन्य निर्बन्धन की किसी बाध्यता का दावा, चाहे शासकीय गुप्त बात अधिनियम, 1923 (1923 का 19) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अधिरोपित हो, सक्षम प्राधिकारी या लिखित रूप में उसके द्वारा प्राधिकृत किसी व्यक्ति या अभिकरण के समक्ष कार्यवाहियों में किसी लोक सेवक द्वारा नहीं किया जाएगा और सरकारी या कोई भी लोक सेवक किसी ऐसी जांच के संबंध में दस्तावेज पेश करने या साक्ष्य देने की बाबत ऐसे किसी विशेषाधिकार का हकदार नहीं होगा जो किसी अधिनियमिति द्वारा या उसके अधीन बनाए गए किन्हीं नियमों द्वारा अनुज्ञात है :

परंतु सक्षम प्राधिकारी, सिविल न्यायालय की ऐसी शक्तियों का प्रयोग करते समय यह सुनिश्चित करने के लिए यथा आवश्यक कदम उठाएगा कि शिकायत करने वाले व्यक्ति की पहचान प्रकट नहीं की गई है या उसे जोखिम में नहीं डाला गया है ।

8. कतिपय मामलों की प्रकटन से छूट – (1) किसी व्यक्ति से इस अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंधों के आधार पर ऐसी कोई सूचना देने या ऐसा कोई उत्तर देने या कोई दस्तावेज या जानकारी पेश करने या इस अधिनियम के अधीन जांच में कोई अन्य सहायता देने की अपेक्षा नहीं की जाएगी या उसे प्राधिकृत नहीं किया जाएगा, यदि ऐसे प्रश्न या दस्तावेज या जानकारी से भारत की प्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्य के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या नैतिकता के हित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है या न्यायालय का अवमान, मानहानि या किसी अपराध के उद्दीपन के संबंध में, जिसमें –

(क) संघ सरकार के मंत्रिमंडल या मंत्रिमंडल की किसी समिति की कार्यवाहियों का प्रकटन अंतर्वलित हो;

(ख) राज्य सरकार के मंत्रिमंडल या उस मंत्रिमंडल की किसी समिति की कार्यवाहियों का प्रकटन अंतर्वलित हो,

और इस उपधारा के प्रयोजन के लिए, यथास्थिति, भारत सरकार के सचिव या राज्य सरकार के सचिव या केन्द्रीय या राज्य सरकार द्वारा इस प्रकार प्राधिकृत किसी प्राधिकारी द्वारा यह प्रमाणित करने के लिए जारी कोई प्रमाणपत्र, कि कोई जानकारी, उत्तर या किसी दस्तावेज का भाग खंड (क) या खंड (ख) में विनिर्दिष्ट प्रकृति का है, आबद्धकर और निश्चायक होगा ।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों के अधीन रहते हुए किसी व्यक्ति को, इस अधिनियम के अधीन जांच के प्रयोजनों के लिए कोई ऐसा साक्ष्य देने या कोई ऐसा दस्तावेज पेश करने के लिए विवश नहीं किया जाएगा, जिसके लिए उसे किसी न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों में देने या पेश करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता ।

9. समुचित तंत्र पर सक्षम प्राधिकारी का अधीक्षण – (1) प्रत्येक लोक प्राधिकारी, धारा 5 की उपधारा (3) के अधीन उसे भेजे गए प्रकटनों के संबंध में विचार करने या जांच करने के प्रयोजनों के लिए एक समुचित तंत्र सृजित करेगा ।

(2) सक्षम प्राधिकारी, प्रकटनों पर विचार करने या जांच करने के प्रयोजनों के लिए उपधारा (1) के अधीन सृजित तंत्र के कार्यकरण का अधीक्षण करेगा और समय-समय पर इसके उचित कार्यकरण के लिए ऐसे निदेश देगा, जो वह आवश्यक समझे ।

10. सक्षम प्राधिकारी द्वारा कतिपय मामलों में पुलिस प्राधिकारी आदि की सहायता लेना – संबंधित संगठन से सावधानीपूर्वक जांच करने या जानकारी अभिप्राप्त करने के प्रयोजन के लिए सक्षम प्राधिकारी, दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन या पुलिस प्राधिकारी या किसी अन्य प्राधिकारी, जिसे आवश्यक समझा जाए, से सक्षम प्राधिकारी द्वारा प्राप्त प्रकटन के अनुसरण में विहित समय के भीतर जांच पूरी करने के लिए

सभी प्रकार की सहायता प्राप्त करने के लिए प्राधिकृत होगा ।

अध्याय 5

प्रकटन करने वाले व्यक्तियों का संरक्षण

11. उत्पीड़न के विरुद्ध रक्षोपाय – (1) केन्द्रीय सरकार यह सुनिश्चित करेगी कि कोई व्यक्ति या लोक सेवक, जिसने इस अधिनियम के अधीन प्रकटन किया है, मात्र इस आधार पर किन्हीं कार्यवाहियों के आरंभ द्वारा या अन्यथा उत्पीड़ित न किया जाए, कि ऐसे व्यक्ति या लोक सेवक ने इस अधिनियम के अधीन जांच में कोई प्रकटन किया था या जांच में सहायता दी थी ।

(2) यदि किसी व्यक्ति को इस आधार पर उत्पीड़ित किया जा रहा है या उत्पीड़ित किए जाने की संभावना है कि उसने इस अधिनियम के अधीन कोई शिकायत फाइल की थी या प्रकटन किया था या जांच में सहायता की थी, तो वह मामले में प्रतितोष के लिए सक्षम प्राधिकारी के समक्ष आवेदन फाइल कर सकेगा और ऐसा प्राधिकारी ऐसी कार्यवाही करेगा, जो वह ठीक समझे और ऐसे व्यक्ति को उत्पीड़ित होने से संरक्षित करने या उसे उत्पीड़न से बचाने के लिए, यथास्थिति, संबद्ध लोक सेवक या लोक प्राधिकारी को उपयुक्त निदेश दे सकेगा :

परंतु सक्षम प्राधिकारी, लोक प्राधिकारी या लोक सेवक को कोई ऐसा निदेश देने से पूर्व, शिकायतकर्ता और, यथास्थिति, लोक प्राधिकारी या लोक सेवक को सुनवाई का अवसर प्रदान करेगा :

परंतु यह और कि ऐसी किसी सुनवाई में यह साबित करने का भार लोक प्राधिकारी पर होगा कि लोक प्राधिकारी की ओर से अभिकथित कार्रवाई उत्पीड़न नहीं है ।

(3) सक्षम प्राधिकारी द्वारा उपधारा (2) के अधीन दिया गया प्रत्येक निदेश उस लोक सेवक या लोक प्राधिकारी के विरुद्ध आबद्धकर होगा, जिसके विरुद्ध उत्पीड़न का अभिकथन साबित हो गया है ।

(4) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी अन्य बात के होते हुए भी किसी लोक सेवक के संबंध में उपधारा (2) के

अधीन निदेश देने की शक्ति में यथापूर्व स्थिति बनाए रखने के लिए प्रकटन करने वाले लोक सेवक के प्रत्यावर्तन के निदेश देने की शक्ति होगी ।

(5) ऐसा कोई व्यक्ति, जो उपधारा (2) के अधीन सक्षम प्राधिकारी के निदेश का जानबूझकर अनुपालन नहीं करता है, ऐसी शास्ति के लिए, जो तीस हजार रुपए तक की हो सकेगी, दायी होगा ।

12. साक्षियों और अन्य व्यक्तियों का संरक्षण – (1) यदि सक्षम प्राधिकारी की शिकायतकर्ता या साक्षियों के आवेदन पर या एकत्रित की गई जानकारी के आधार पर यह राय है कि या तो शिकायतकर्ता या लोक सेवक या साक्षी या इस अधिनियम के अधीन जांच के लिए सहायता देने वाले किसी व्यक्ति को संरक्षण की आवश्यकता है तो सक्षम प्राधिकारी संबद्ध सरकारी प्राधिकारी (पुलिस सहित) को समुचित निदेश जारी करेगा, जो ऐसे शिकायतकर्ता या लोक सेवक या संबद्ध व्यक्तियों के संरक्षण के लिए अपने अभिकरणों के माध्यम से आवश्यक कदम उठाएगा ।

13. शिकायतकर्ता की पहचान का संरक्षण – (1) सक्षम प्राधिकारी तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के होते हुए भी, इस अधिनियम के अधीन जांच के प्रयोजनों के लिए तब तक शिकायतकर्ता की पहचान और उसके द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों या जानकारी को इस अधिनियम के अधीन यथा अपेक्षित छिपाएगा, जब तक स्वयं सक्षम प्राधिकारी द्वारा अन्यथा इस प्रकार विनिश्चय नहीं किया जाता या न्यायालय के आदेश के आधार पर इसका प्रकट किया जाना या पेश किया जाना आवश्यक नहीं हो जाता ।

14. अंतरिम आदेश पारित करने की शक्ति – (1) सक्षम प्राधिकारी, शिकायतकर्ता या लोक सेवक द्वारा प्रकटन करने के पश्चात् किसी भी समय, यदि उसकी यह राय है कि उक्त प्रयोजन के लिए किसी जांच के जारी रहने के दौरान किसी भ्रष्ट आचरण को रोकना आवश्यक है तो ऐसे अंतरिम आदेश पारित कर सकेगा, जो वह ऐसे आचरण को तत्काल रोकने के लिए ठीक समझे ।

अध्याय 6

अपराध और शास्तियां

15. अपूर्ण या गलत या भ्रामक टिप्पणियां या स्पष्टीकरण या रिपोर्ट देने के लिए शास्ति – जहां सक्षम प्राधिकारी की, संगठन या संबंधित पदधारी द्वारा प्रस्तुत की गई शिकायत पर रिपोर्ट या स्पष्टीकरण या धारा 5 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट रिपोर्ट की परीक्षा करते समय, यह राय है कि संगठन या संबंधित पदधारी ने, किसी युक्तियुक्त कारण के बिना विनिर्दिष्ट समय के भीतर रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की है या असद्भाव से रिपोर्ट प्रस्तुत करने से इंकार किया है या जानते हुए अपूर्ण, गलत या भ्रामक या मिथ्या रिपोर्ट दी है या ऐसे अभिलेख या सूचना को नष्ट किया है, जो प्रकटन की विषयवस्तु थी या रिपोर्ट प्रस्तुत करने में किसी रीति में बाधा पहुंचाई है, तो वह, –

(क) जहां संगठन या संबंधित पदधारी ने किसी युक्तियुक्त कारण के बिना विनिर्दिष्ट समय के भीतर रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की है या असद्भाव से रिपोर्ट प्रस्तुत करने से इंकार किया है वहां ऐसी शास्ति अधिरोपित करेगा, जो रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने तक प्रत्येक दिन के लिए दो सौ पचास रुपए तक की हो सकेगी, तथापि, ऐसी शास्ति की कुल रकम पचास हजार रुपए से अधिक नहीं होगी;

(ख) जहां संगठन या संबंधित पदधारी ने, जानते हुए अपूर्ण, गलत या भ्रामक या मिथ्या रिपोर्ट दी है या ऐसे अभिलेख या सूचना को नष्ट किया है, जो प्रकटन की विषयवस्तु थी या रिपोर्ट प्रस्तुत करने में किसी रीति में बाधा पहुंचाई है, वहां ऐसी शास्ति अधिरोपित कर सकेगा, जो पचास हजार रुपए तक की हो सकेगी :

परंतु किसी व्यक्ति पर तब तक कोई शास्ति अधिरोपित नहीं की जाएगी, जब तक उसे सुनवाई का अवसर नहीं दे दिया गया हो ।

16. शिकायतकर्ता की पहचान प्रकट करने के लिए शास्ति – कोई व्यक्ति, जो उपेक्षापूर्वक या असद्भाव से किसी शिकायतकर्ता की पहचान प्रकट करता है, इस अधिनियम के अन्य उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसी अवधि के कारावास से, जो तीन वर्ष तक की हो सकेगी, और

जुर्माने से भी, जो पचास हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

17. मिथ्या या तुच्छ प्रकटन के लिए दंड – कोई व्यक्ति, जो असद्भाव से और जानते हुए कोई प्रकटन करता है कि यह गलत या मिथ्या या भ्रामक था तो वह ऐसी अवधि के कारावास से, दो वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से भी जो तीस हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

18. कतिपय मामलों में विभागाध्यक्ष के लिए दंड – (1) जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध सरकार के किसी विभाग द्वारा किया जाता है, वहां विभागाध्यक्ष को तब तक अपराध का दोषी माना जाएगा और उसके विरुद्ध कार्रवाई की जाने और तद्नुसार दंडित किए जाने का दायी होगा, जब तक वह यह साबित नहीं कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था या कि उसने ऐसे अपराध के किए जाने का निवारण करने के लिए सभी सम्यक् तत्परता बरती थी ।

(2) उपधारा (1) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध सरकार के किसी विभाग द्वारा किया जाता है और यह साबित हो जाता है कि अपराध किसी अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उसके द्वारा किया गया समझा जाता है तो ऐसा अधिकारी भी उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और अपने विरुद्ध कार्रवाई किए जाने और तद्नुसार दंडित किए जाने का दायी होगा ।

19. कंपनियों द्वारा अपराध – (1) जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध, किसी कंपनी द्वारा किया गया है, वहां ऐसा प्रत्येक व्यक्ति जो उस अपराध के किए जाने के समय उस कंपनी के कारबार के संचालन के लिए उस कंपनी का भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था और साथ ही वह कंपनी भी, ऐसे अपराध के दोषी समझे जाएंगे और अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और तद्नुसार दंडित किए जाने के दायी होंगे :

परंतु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को दंड का दायी नहीं बनाएगी यदि वह यह साबित कर देता है कि अपराध उसकी

जानकारी के बिना किया गया था या उसने ऐसे अपराध के किए जाने का निवारण करने के लिए सब सम्यक् तत्परता बरती थी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध, किसी कंपनी द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि वह अपराध कंपनी के किसी निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उस अपराध का किया जाना उसकी किसी उपेक्षा के कारण माना जा सकता है, वहां ऐसा निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी भी उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और तद्नुसार दंडित किए जाने का दायी होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए –

(क) "कंपनी" से कोई निगमित निकाय अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत फर्म या व्यष्टियों का अन्य संगम भी है; और

(ख) फर्म के संबंध में, "निदेशक" से उस फर्म का भागीदार अभिप्रेत है ।

20. उच्च न्यायालय को अपील – धारा 14 या धारा 15 या धारा 16 के अधीन शास्ति अधिरोपित करने से संबंधित सक्षम प्राधिकारी के किसी आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति, उस आदेश की तारीख से, जिसके विरुद्ध अपील की जानी है, साठ दिन की अवधि के भीतर उच्च न्यायालय को अपील कर सकेगा :

परंतु उच्च न्यायालय, साठ दिन की उक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात् अपील ग्रहण कर सकेगा, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि अपीलार्थी को समय के भीतर अपील करने से पर्याप्त कारण से निवारित किया गया था ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए "उच्च न्यायालय" से ऐसा उच्च न्यायालय अभिप्रेत है जिसकी अधिकारिता के भीतर वाद हेतुक उद्भूत हुआ है ।

21. अधिकारिता का वर्जन – किसी सिविल न्यायालय को, किसी

ऐसे विषय की बाबत अधिकारिता नहीं होगी जिसको इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन सक्षम प्राधिकारी अवधारित करने के लिए सशक्त है, और इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन प्रदत्त किसी शक्ति के अनुसरण में की गई या की जाने वाली किसी कार्रवाई की बाबत किसी न्यायालय या अन्य प्राधिकारी द्वारा कोई व्यादेश मंजूर नहीं किया जाएगा ।

22. न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया जाना – कोई भी न्यायालय सक्षम प्राधिकारी या उसके द्वारा प्राधिकृत किसी अधिकारी या व्यक्ति द्वारा की गई शिकायत के सिवाय इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों या विनियमों के अधीन दंडनीय किसी अपराध का संज्ञान नहीं लेगा ।

(2) मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट या मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय से निम्नतर कोई न्यायालय इस अधिनियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध का विचारण नहीं करेगा ।

अध्याय 7

प्रकीर्ण

23. प्रकटीकरणों पर रिपोर्ट – (1) सक्षम प्राधिकारी, ऐसी रीति में जो विहित की जाए, अपने क्रियाकलापों को करने के बारे में एक समेकित वार्षिक रिपोर्ट तैयार करेगा और उसे, यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार को अग्रेषित करेगा ।

(2) यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार उपधारा (1) के अधीन वार्षिक रिपोर्ट प्राप्त होने पर, उसकी एक प्रति, यथास्थिति, संसद् या राज्य विधान-मंडल के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगी :

परंतु जहां तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में सक्षम प्राधिकारी द्वारा ऐसी वार्षिक रिपोर्ट के तैयार करने के बारे में उपबंध किया गया है वहां सक्षम प्राधिकारी द्वारा उक्त वार्षिक रिपोर्ट में उस अधिनियम के अधीन क्रियाकलापों को करने के बारे में पृथक् भाग अंतर्विष्ट किया जाएगा ।

24. सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण – इस अधिनियम सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात की बाबत कोई वाद या अन्य विधिक कार्यवाहियां सक्षम प्राधिकारी या उसकी ओर से कार्य कर रहे किसी अधिकारी, कर्मचारी, अभिकरण या किसी व्यक्ति के विरुद्ध नहीं होंगी ।

25. केन्द्रीय सरकार की नियम बनाने की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के प्रयोजन के लिए नियम बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :

(क) धारा 4 की उपधारा (4) के अधीन लिखित रूप में या समुचित इलेक्ट्रानिक साधनों द्वारा प्रकटीकरण की प्रक्रिया;

(ख) वह रीति, जिसमें और वह समय, जिसके भीतर धारा 5 की उपधारा (2) के अधीन सक्षम प्राधिकारी द्वारा सावधानीपूर्वक जांच की जाएगी;

(ग) ऐसे अतिरिक्त विषय, जिनकी बाबत सक्षम प्राधिकारी, धारा 7 की उपधारा (2) के खंड (च) के अधीन सिविल न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग कर सकेगा;

(घ) धारा 23 की उपधारा (1) के अधीन वार्षिक रिपोर्ट का प्ररूप;

(ङ) कोई अन्य विषय, जो विहित किया जाना अपेक्षित है या विहित किया जाए ।

26. राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्ति – राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के प्रयोजन के लिए नियम बना सकेगी ।

27. विनियम बनाने की शक्ति – सक्षम प्राधिकारी, यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के पूर्व अनुमोदन से, राजपत्र में

अधिसूचना द्वारा, ऐसे सभी विषयों के लिए, जिनके लिए इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने के प्रयोजनों के लिए उपबंध करना समीचीन है, उपबंध करने के लिए ऐसे विनियम बना सकेगा जो अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों से असंगत न हों ।

28. अधिसूचनाओं और नियमों का संसद् के समक्ष रखा जाना – इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी प्रत्येक अधिसूचना और बनाया गया प्रत्येक नियम और सक्षम प्राधिकारी द्वारा बनाया गया प्रत्येक विनियम, जारी की जाने या बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखी जाएगी या रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस अधिसूचना या उस नियम या विनियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगी/होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह अधिसूचना या नियम अथवा विनियम नहीं बनाई, बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगी/जाएगा । तथापि, अधिसूचना या नियम अथवा विनियम के ऐसे परिवर्तन या बातिलकरण से उसके अधीन पहले गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

29. राज्य सरकार द्वारा जारी अधिसूचना और बनाए गए नियमों का राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखा जाना – इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार द्वारा जारी प्रत्येक अधिसूचना और राज्य सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम तथा सक्षम प्राधिकारी द्वारा बनाया गया प्रत्येक विनियम जारी किए जाने या बनाए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखी जाएगी/रखा जाएगा ।

30. कठिनाइयां दूर करने की शक्ति – (1) यदि इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो केन्द्रीय सरकार ऐसे आदेश द्वारा, जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न

हो, उस कठिनाई को दूर कर सकेगी :

परंतु ऐसा कोई आदेश इस अधिनियम के प्रारंभ से तीन वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

(2) इस धारा के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

31. निरसन और व्यावृत्ति – (1) तारीख 29 अप्रैल, 2004 के समसंख्यांक संकल्प द्वारा यथा संशोधित, भारत सरकार, कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन (कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग) का संकल्प संख्यांक 371/12/2002-एवीडी-III, तारीख 21 अप्रैल, 2004 द्वारा निरसित किया जाता है ।

(2) ऐसे निरसन के होते हुए भी उक्त संकल्प के अधीन की गई कोई बात या कार्रवाई इस अधिनियम के अधीन की गई समझी जाएगी ।

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रयार्थ उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम एवं प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पृष्ठ सं.	पुस्तक की मूल मुद्रित कीमत (रुपयों में)	विशेष छूट के पश्चात् पुस्तक की कीमत (रुपयों में)
1.	विधि शास्त्र – डा. शिवदत्त शर्मा – 2004	501	580	145
2.	निर्णय लेखन – न्या. भगवती प्रसाद बेरी – 2019	190	175	–
3.	भारत का सांविधानिक इतिहास - (103वां संविधान संशोधन तक) - श्री चन्द्रशेखर मिश्र	340	325	–
4.	भारतीय संविधान के प्रमुख तत्व - डा. प्रद्युम्न कुमार त्रिपाठी	906	750	–

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. निर्वाचन विधि निर्देशिका (भाग-1 तथा भाग-2)	नवीनतम संस्करण, 2024	कीमत रु. 2,500
2. भारत का संविधान (पाकेट एडीशन)	2024	कीमत रु. 325

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
Website : www.lawmin.nic.in
Email : am.vsp-molj@gov.in

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं - **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका** और **उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः सिविल और दांडिक के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2,100/-, ₹ 1,300/- और ₹ 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को ऑन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in